एस धम्मो सनंतनो, भाग 1

प्रवचन-क्रम

1. आत्मक्रांति का प्रथम सूत्रः अवैर..2
2. अस्तित्व की विरलतम घटनाः सदगुरु..23
3. ध्यानाच्छादित अंतर्लोक में राग को राह नहीं...............................41
4. अकंप चैतन्य ही ध्यान..58
5. बुद्धपुरुष स्वयं प्रमाण है ईश्वर का..77
6. ‘आज’ के गर्भाशय से ‘कल’ का जन्म..93
7. जागकर जीना अमृत में जीना है...111
8. प्रेम है महामृत्यु...128
9. यात्री, यात्रा, गंतव्यः तुम्हीं...145 10..देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है 162

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
पहला प्रवचन

आत्मक्रांति का प्रथम सूत्रः अवैर

मनो पुब्बड्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा,
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं" व वहतो पदं।। 1।।

मनो पुब्बड्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा,
ततो नं सुखमन्वेति छाया" व अनपायिनी।। 2।।

अक्कोचि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति।। 3।।

अक्कोचि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति।। 4।।

नहि वेरेन वेरामि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो।। 5।।

परे च न विजानन्ति मयमेत्था यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा।। 6।।

गौतम बुद्ध ऐसे हैं जैसे हिमाच्छादित हिमालय। पर्वत तो और भी हैं, हिमाच्छादित पर्वत और भी हैं, पर हिमालय अतुलनीय है। उसकी कोई उपमा नहीं है। हिमालय बस हिमालय जैसा है। गौतम बुद्ध बस गौतम बुद्ध जैसे। पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में वैसा महिमापूर्ण नाम दूसरा नहीं। गौतम बुद्ध ने जितने हृदयों की वीणा को बजाया है, उतना किसी और ने नहीं। गौतम बुद्ध के माध्यम से जितने लोग जागे और जितने लोगों ने परम-भगवत्ता उपलब्ध की है, उतनी किसी और के माध्यम से नहीं।
गौतम बुद्ध की वाणी अनूठी है। और विशेषकर उन्हें, जो सोच-विचार, चिंतन-मनन, विमर्श के आदी हैं।
हृदय से भरे हुए लोग सुगमता से परमात्मा की तरफ चले जाते हैं। लेकिन हृदय से भरे हुए लोग कहां हैं? और हृदय से भरने का कोई उपाय भी तो नहीं है। हो तो हो, न हो तो न हो। ऐसी आकस्मिक, नैसर्गिक बात पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। बुद्ध ने उनको चेताया जिनको चेताना सर्वाधिक कठिन है--विचार से भरे लोग, बुद्धिवादी, चिंतन-मननशील।
प्रेम और भाव से भरे लोग तो परमात्मा की तरफ सरलता से झुक जाते हैं; उन्हें झुकाना नहीं पड़ता। उनसे कोई न भी कहे, तो भी वे पहुंच जाते हैं; उन्हें पहुंचाना नहीं पड़ता। लेकिन वे तो बहुत थोड़े हैं, और उनकी संख्या रोज थोड़ी होती गयी है। उंगलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग हैं।
मनुष्य का विकास मस्तिष्क की तरफ हुआ है। मनुष्य मस्तिष्क से भरा है। इसलिए जहां जीसस हार जाएं, जहां कृष्ण की पकड़ न बैठे, वहां भी बुद्ध नहीं हारते हैं; वहां भी बुद्ध प्राणों के अंतरतम में पहुंच जाते हैं।
बुद्ध का धर्म बुद्धि का धर्म कहा गया है। बुद्धि पर उसका आदि तो है, अंत नहीं। शुरुआत बुद्धि से है। प्रारंभ बुद्धि से है। क्योंकि मनुष्य वहां खड़ा है। लेकिन अंत, अंत उसका बुद्धि में नहीं है। अंत तो परम अतिक्रमण है, जहां सब विचार खो जाते हैं, सब बुद्धिमत्ता विसर्जित हो जाती है; जहां केवल साक्षी, मात्र साक्षी शेष रह जाता है। लेकिन बुद्ध का प्रभाव उन लोगों में तत्क्षण अनुभव होता है जो सोच-विचार में कुशल हैं। बुद्ध के साथ मनुष्य-जाति का एक नया अध्याय शुरू हुआ। पच्चीस सौ वर्ष पहले बुद्ध ने वह कहा जो आज भी सार्थक मालूम पड़ेगा, और जो आने वाली सदियों

तक सार्थक रहेगा। बुद्ध ने विश्लेषण दिया, एनालिसिस दी। और जैसा सूक्ष्म विश्लेषण उन्होंने किया, कभी किसी ने न किया था, और फिर दुबारा कोई न कर पाया। उन्होंने जीवन की समस्या के उत्तर शास्त्र से नहीं दिए, विश्लेषण की प्रक्रिया से दिए।
बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो, तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आएगी, तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की मांग बुद्ध की नहीं है। बुद्ध यह नहीं कहते कि जो मैं कहता हूं, भरोसा कर लो। बुद्ध कहते हैं, सोचो, विचारो, विश्लेषण करो; खोजो, पाओ अपने अनुभव से, तो भरोसा कर लेना।
दुनिया के सारे धर्मों ने भरोसे को पहले रखा है, सिर्फ बुद्ध को छोड़कर। दुनिया के सारे धर्मों में श्रद्धा प्राथमिक है, फिर ही कदम उठेगा। बुद्ध ने कहा, अनुभव प्राथमिक है, श्रद्धा आनुसांगिक है। अनुभव होगा, तो श्रद्धा होगी। अनुभव होगा, तो आस्था होगी।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, आस्था की कोई जरूरत नहीं है; अनुभव के साथ अपने
से आ जाएगी, तुम्हें लानी नहीं है। और तुम्हारी लायी हुई आस्था का मूल्य भी क्या हो सकता है? तुम्हारी लायी आस्था के पीछे भी छिपे होंगे तुम्हारे संदेह।
तुम आरोपित भी कर लोगे विश्वास को, तो भी विश्वास के पीछे अविश्वास खड़ा होगा। तुम कितनी ही दृढ़ता से भरोसा करना चाहो, लेकिन तुम्हारी दृढ़ता कंपती रहेगी और तुम जानते रहोगे कि जो तुम्हारे अनुभव में नहीं उतरा है, उसे तुम चाहो भी तो भी कैसे मान सकते हो? मान भी लो, तो भी कैसे मान सकते हो? तुम्हारा ईश्वर कोरा शब्दजाल होगा, जब तक अनुभव की किरण न उतरी हो। तुम्हारे मोक्ष की धारणा मात्र शाब्दिक होगी, जब तक मुक्ति का थोड़ा स्वाद तुम्हें न लगा हो।
बुद्ध ने कहाः मुझ पर भरोसा मत करना। मैं जो कहता हूं, उस पर इसलिए भरोसा मत करना कि मैं कहता हूं। सोचना, विचारना, जीना। तुम्हारे अनुभव की कसौटी पर सही हो जाए, तो ही सही है। मेरे कहने से क्या सही होगा!
बुद्ध के अंतिम वचन हैंः अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद बनना। और तुम्हारी रोशनी में तुम्हें जो दिखायी पड़ेगा, फिर तुम करोगे भी क्या-- आस्था न करोगे तो करोगे क्या? आस्था सहज होगी। उसकी बात ही उठानी व्यर्थ है।
बुद्ध का धर्म विश्लेषण का धर्म है। लेकिन विश्लेषण से शुरू होता है, समाप्त नहीं होता वहां। समाप्त तो परम संश्लेषण पर होता है। बुद्ध का धर्म संदेह का धर्म है। लेकिन संदेह से यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं होती। समाप्त तो परम श्रद्धा पर होती है।
इसलिए बुद्ध को समझने में बड़ी भूल हुई। क्योंकि बुद्ध संदेह की भाषा बोलते हैं। तो लोगों ने समझा, यह संदेहवादी है। हिंदू तक न समझ पाए, जो जमीन पर सबसे ज्यादा पुरानी कौम है। बुद्ध निश्चित ही बड़े अनूठे रहे होंगे, तभी तो हिंदू तक समझने से चूक गए। हिंदुओं तक को यह आदमी खतरनाक लगा, घबड़ाने वाला लगा। हिंदुओं को भी लगा कि यह तो सारे आधार गिरा देगा धर्म के। और यही आदमी है, जिसने धर्म के आधार पहली दफा ढंग से रखे। श्रद्धा पर भी कोई आधार रखा जा सकता है! अनुभव पर ही आधार रखा जा सकता है। अनुभव की छाया की तरह श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा अनुभव की सुगंध है। और अनुभव के बिना श्रद्धा अंधी है। और जिस श्रद्धा के पास आंख न हों, उससे तुम सत्य तक पहुंच पाओगे?
बुद्ध ने बड़ा दुस्साहस किया। बुद्ध जैसे व्यक्ति पर भरोसा करना एकदम सुगम होता है। उसके उठने-बैठने में प्रामाणिकता होती है। उसके शब्द-शब्द में वजन होता है। उसके होने का पूरा ढंग स्वयंसिद्ध होता है। उस पर श्रद्धा आसान हो जाती है। लेकिन बुद्ध ने कहा, तुम मुझे अपनी बैसाखी मत बनाना। तुम अगर लंगड़े हो, और मेरी बैसाखी के सहारे चल लिए--कितनी दूर चलोगे? मंजिल तक न पहुंच पाओगे। आज मैं साथ हूं, कल मैं साथ न रहूंगा, फिर तुम्हें अपने ही पैरों पर चलना है। मेरी रोशनी से मत चलना, क्योंकि थोड़ी

देर को संग-साथ हो गया है अंधेरे जंगल में। तुम मेरी रोशनी में थोड़ी देर रोशन हो लोगे; फिर हमारे रास्ते अलग हो जाएंगे। मेरी रोशनी मेरे साथ होगी, तुम्हारा अंधेरा तुम्हारे साथ होगा। अपनी रोशनी पैदा करो। अप्प दीपो भव! यह बुद्ध का धम्मपद, कैसे वह रोशनी पैदा हो सकती है अनुभव की, उसका विश्लेषण है। श्रद्धा की कोई मांग नहीं है। श्रद्धा की कोई आवश्यकता भी नहीं है। इसलिए बुद्ध को लोगों ने नास्तिक कहा। क्योंकि बुद्ध ने यह भी नहीं कहा कि तुम परमात्मा पर श्रद्धा करो।
तुम कैसे करोगे श्रद्धा? तुम्हें पता होता तो तुम श्रद्धा करते ही। तुम्हें पता नहीं है। इस अज्ञान में तुम कैसे श्रद्धा करोगे? और अज्ञान में तुम जो श्रद्धा बांध भी लोगे, वह तुम्हारी अज्ञान की ईंटों से बना हुआ भवन होगा; उसे तुम परमात्मा का मंदिर कैसे कहोगे? वह तुमने भय में बना लिया होगा। मौत डराती होगी, इसलिए सहारा पकड़ लिया होगा। यहां जिंदगी हाथ से जाती मालूम होती होगी, इसलिए स्वर्ग की कल्पनाएं कर ली होंगी। लेकिन इन कल्पनाओं से, भय पर खड़ी हुई इन धारणाओं से, कहीं कोई मुक्त हुआ है! इससे ही तो आदमी पंगु है। इससे ही तो आदमी पक्षाघात में दबा है। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर की बात नहीं की।
एच.जी.वेल्स ने बुद्ध के संबंध में कहा है कि पृथ्वी पर इस जैसा ईश्वरीय व्यक्ति और इस जैसा ईश्वर-विरोधी व्यक्ति एक साथ पाना कठिन है--सो गॉड लाइक एंड सो गॉडलेस! अगर तुम ईश्वरीय प्रतिभाओं को खोजने निकलो तो तुम बुद्ध से ज्यादा ईश्वरीय प्रतिभा कहां पाओगे? सो गॉडलेस! और फिर भी इतना ईश्वर-शून्य! ईश्वर की बात ही नहीं की। इस शब्द को ही गंदा माना। इस शब्द का उच्चार नहीं किया। इससे यह मत समझ लेना कि ईश्वर-विरोधी थे बुद्ध। उच्चार नहीं किया, क्योंकि उस परम शब्द का उच्चार किया नहीं जा सकता। उपनिषद कहते हैं, ईश्वर के संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता; लेकिन इतना तो कह ही देते हैं। बुद्ध ने इतना भी न कहा। वे परम उपनिषद हैं। उनके पार उपनिषद नहीं जाता। जहां उपनिषद समाप्त होते हैं, वहां बुद्ध शुरू होते हैं। आखिर इतना तो कह ही दिया, रोक न सके अपने को, कि ईश्वर निर्गुण है। तो निर्गुण उसका गुण बना दिया। कहा कि ईश्वर निराकार है, तो निराकार उसका आकार हो गया। लेकिन बिना कहे न रह सके। उपनिषद के ऋषि भी बोल गए! मौन में ही सम्हालना था उस संपदा को; बोलकर गंवा दी। बंधी मुट्ठी लाख की थी, खुली दो कौड़ी की हो गयी। वह बात ऐसी थी कि कहनी नहीं थी। क्योंकि तुम जो कुछ भी कहोगे, वह गलत होगा। यह कहना भी कि परमात्मा निराकार है, गलत है, क्योंकि निराकार भी एक धारणा है। वह भी आकार से ही जुड़ी है। आकार के विपरीत होगी, तो भी आकार से संबंधित है।
निराकार का क्या अर्थ होता है? जब भी अर्थ खोजने जाओगे, आकार का उपयोग करना पड़ेगा। निर्गुण का क्या अर्थ होता है? जब भी कोई परिभाषा पूछेगा, गुण को परिभाषा में लाना पड़ेगा। ऐसी निर्गुणता भी बड़ी नपुंसक है, जिसकी परिभाषा में गुण लाना पड़ता है! और ऐसे निराकार में क्या निराकार होगा, जिसको समझाने के लिए आकार लाना पड़ता है!
बुद्ध से ज्यादा कोई भी नहीं बोला; और बुद्ध से ज्यादा चुप भी कोई नहीं है। कितना बुद्ध बोले हैं! अन्वेषक खोज करते हैं तो वे कहते हैं, एक आदमी इतना बोला, यह संभव कैसे है! उन्हें डर लगता है कि इसमें बहुत कुछ प्रक्षिप्त है, दूसरों ने डाल दिया है। कुछ भी प्रक्षिप्त नहीं है। जितना बुद्ध बोले, पूरा संगृहीत ही नहीं हुआ है। खूब बोले। और फिर भी उनसे ज्यादा चुप कोई भी नहीं है। क्योंकि जहां-जहां नहीं बोलना था, वहां नहीं बोले। ईश्वर के संबंध में एक शब्द न कहा। इस खतरे को भी मोल लिया कि लोग नास्तिक समझेंगे। और आज तक लोग नास्तिक समझे जा रहे हैं। और इससे बड़ा कोई आस्तिक कभी हुआ नहीं।
बुद्ध महा आस्तिक हैं। अगर परमात्मा के संबंध में कुछ कहना संभव नहीं है, तो फिर बुद्ध ने ही कुछ कहा--चुप रह कर; इशारा किया।
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक विट्गिंस्टीन ने अपनी बड़ी अनूठी किताब ट्रेक्टेटस में लिखा है कि जिस संबंध में कुछ कहा न जा सके, उस संबंध में

बिल्कुल चुप रह जाना उचित है। दैट व्हिच कैन नॉट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड।
जो नहीं कहा जा सकता, कहना ही मत, कहना ही नहीं चाहिए।
अगर विट्गिंस्टीन बुद्ध को देखता तो समझता। अगर विट्गिंस्टीन के वचन
को बुद्ध ने समझा होता तो वे मुस्कुराते और उन्होंने स्वीकृति दी होती।
विट्गिंस्टीन को भी पश्चिम में लोग नास्तिक समझे। नास्तिक नहीं है। पर जो कही नहीं जा सकती बात, अच्छा है न ही कही जाए। कहने से बिगड़ जाती है। कहने से गलत हो जाती है।
लाओत्से तक, कहता तो है प्रथम वचन में अपने ताओ-तेह-किंग में कि सत्य कहा नहीं जा सकता, और जो भी कहा जाए वह असत्य हो जाता है; लेकिन फिर भी सत्य के संबंध में बहुत सी बातें कही हैं। बुद्ध ने नहीं कहीं। तुम कहोगे, फिर बुद्ध कहते क्या रहे? बुद्ध ने स्वास्थ्य के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहा, केवल बीमारी का विश्लेषण किया और निदान किया; औषधि की व्यवस्था की। बुद्ध ने कहा, मैं एक वैद्य हूं; मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं। मैं तुम्हारी बीमारी का विश्लेषण करूंगा, निदान करूंगा, औषधि सुझा दूंगा; और जब तुम ठीक हो जाओगे, तभी तुम जानोगे कि स्वास्थ्य क्या है। मैं उस संबंध में कुछ भी न कहूंगा।
स्वास्थ्य जाना जाता है, कहा नहीं जा सकता। बीमारी मिटायी जा सकती है, बीमारी समझायी जा सकती है, बीमारी बनायी जा सकती है, बीमारी का इलाज हो सकता है--सही हो सकता है, गलत हो सकता है--बीमारी के साथ बहुत कुछ हो सकता है। स्वास्थ्य? जब बीमारी नहीं होती तब जो शेष रह जाता है, वही। उस तरफ केवल इशारे हो सकते हैं, मौन। इंगित हो सकते हैं--वे भी प्रत्यक्ष नहीं, बड़े परोक्ष।
बुद्ध के धर्म को शून्यवादी कहा गया है। शून्यवादी उनका धर्म है। लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि शून्य पर उनकी बात पूरी हो जाती है। नहीं, बस शुरू होती है।
बुद्ध एक ऐसे उत्तुंग शिखर हैं, जिसका आखिरी शिखर हमें दिखायी नहीं पड़ता। बस थोड़ी दूर तक हमारी आंखें जाती हैं, हमारी आंखों की सीमा है। थोड़ी दूर तक हमारी गर्दन उठती है, हमारी गर्दन के झुकने की सामर्थ्य है। और बुद्ध खोते चले जाते हैं--दूर... हिमाच्छादित शिखर हैं। बादलों के पार! उनका प्रारंभ तो दिखायी पड़ता है, उनका अंत दिखायी नहीं पड़ता। यही उनकी महिमा है। और प्रारंभ को जिन्होंने अंत समझ लिया, वे भूल में पड़ गए। प्रारंभ से शुरू करना; लेकिन जैसे-जैसे तुम शिखर पर उठने लगोगे, और आगे, और आगे दिखायी पड़ने लगा, और आगे दिखायी पड़ने लगेगा।
बहुत लोग बोले हैं। बहुत लोगों ने मनुष्य के रोग का विश्लेषण किया है; लेकिन ऐसा सचोट नहीं। बड़े सुंदर ढंग से लोगों ने बातें कही हैं, बड़े गहरे प्रतीक उपाय में लाए हैं। पर बुद्ध, बुद्ध के कहने का ढंग ही और है। अंदाजे-बयां और! जिसने एक बार सुना, पकड़ा गया। जिसने एक बार आंख से आंख मिला ली, फिर भटक न पाया। जिसको बुद्ध की थोड़ी सी भी झलक मिल गयी, उसका जीवन रूपांतरित हुआ।
आज से पच्चीस सौ वर्ष पूर्व, जिस दिन बुद्ध का जन्म हुआ, घर में उत्सव मनाया जाता था। सम्राट के घर बेटा पैदा हुआ था, पूरी राजधानी सजी थी। रातभर लोगों ने दीए जलाए, नाचे। उत्सव का क्षण था! बूढ़े सम्राट के घर बेटा पैदा हुआ था। बड़े दिन की प्रतीक्षा पूरी हुई थी। बड़ी पुरानी अभिलाषा थी पूरे राज्य की। मालिक बूढ़ा होता जाता था और नए मालिक की कोई खबर न थी। इसलिए बुद्ध को सिद्धार्थ नाम दिया। सिद्धार्थ का अर्थ होता है, अभिलाषा का पूरा हो जाना।
पहले ही दिन, जब द्वार पर बैंड-बाजे बजते थे, शहनाई बजती थी, फूल बरसाए जाते थे महल में, चारों तरफ प्रसाद बंटता था, हिमालय से भागा हुआ एक वृद्ध तपस्वी द्वार पर खड़ा हुआ आकर। उसका नाम था असिता। सम्राट भी उसे सम्मान करता था। और कभी असिता राजधानी नहीं आया था। जब कभी जाना था तो शुद्धोदन को, सम्राट को, स्वयं उसके दर्शन करने जाना होता था। ऐसे बचपन के साथी थे। फिर शुद्धोदन सम्राट हो गया, बाजार की दुनिया में उलझ गया। असिता महातपस्वी हो गया। उसकी ख्याति दूर-दिगंत तक फैल गयी। असिता को द्वार पर

आए देखकर शुद्धोदन ने कहा, आप, और यहां! क्या हुआ? कैसे आना हुआ? कोई मुसीबत है? कोई अड़चन है? कहें। असिता ने कहा, नहीं, कोई मुसीबत नहीं, कोई अड़चन नहीं। तुम्हारे घर बेटा पैदा हुआ, उसके दर्शन को आया हूं।
शुद्धोदन तो समझ न पाया। सौभाग्य की घड़ी थी यह कि असिता जैसा तपस्वी
और बेटे के दर्शन को आया। भागा गया अंतःगृह में। नवजात शिशु को लेकर बाहर आ गया। असिता झुका, और उसने शिशु के चरणों में सिर रख दिया। और कहते हैं, शिशु ने अपने पैर उसकी जटाओं में उलझा दिए। फिर तब से आदमी की जटाओं में बुद्ध के पैर उलझे हैं। फिर आदमी छुटकारा नहीं पा सका। और असिता हंसने लगा, और रोने भी लगा। और शुद्धोदन ने पूछा कि इस शुभ घड़ी में आप रोते क्यों हैं?
असिता ने कहा, यह तुम्हारे घर जो बेटा पैदा हुआ है, यह कोई साधारण आत्मा नहीं है; असाधारण है। कई सदियां बीत जाती हैं। यह तुम्हारे लिए ही सिद्धार्थ नहीं है; यह अनंत-अनंत लोगों के लिए सिद्धार्थ है। अनेकों की अभिलाषाएं इससे पूरी होंगी। हंसता हूं, कि इसके दर्शन मिल गए। हंसता हूं, प्रसन्न हूं, कि इसने मुझ बूढ़े की जटाओं में अपने पैर उलझा दिए। यह सौभाग्य का क्षण है! रोता इसलिए हूं कि जब यह कली खिलेगी, फूल बनेगी, जब दिग-दिगंत में इसकी सुवास उठेगी, और इसकी सुवास की छाया में करोड़ों लोग राहत लेंगे, तब मैं न रहूंगा। यह मेरा शरीर छूटने के करीब आ गया।
और एक बड़ी अनूठी बात असिता ने कही है, वह यह कि अब तक आवागमन से छूटने
की आकांक्षा थी, वह पूरी भी हो गयी; आज पछतावा होता है। एक जन्म अगर और मिलता तो इस बुद्धपुरुष के चरणों में बैठने की, इसकी वाणी सुनने की, इसकी सुगंध को पीने की, इसके नशे में डूबने की सुविधा हो जाती। आज पछताता हूं, लेकिन मैं मुक्त हो चुका हूं। यह मेरा आखिरी अवतरण है; अब इसके बाद देह न धर सकूंगा। अब तक सदा ही चेष्टा की थी कि कब छुटकारा हो इस शरीर से, कब आवागमन से... आज पछताता हूं कि अगर थोड़ी देर और रुक गया होता... ।
इसे तुम थोड़ा समझो।
बुद्ध के फूल के खिलने के समय, असिता चाहता है, कि अगर मोक्ष भी दांव
पर लगता हो तो कोई हर्जा नहीं। तब से पच्चीस सौ साल बीत गए। बहुत प्रज्ञा- पुरुष हुए। लेकिन बुद्ध अतुलनीय हैं। और उनकी अतुलनीयता इसमें है कि उन्होंने इस सदी के लिए धर्म दिया, और आने वाले भविष्य के लिए धर्म दिया। कृष्ण की बात कितनी ही समझाकर कही जाए, इस सदी के लिए मौजूं नहीं बैठती। फासला बड़ा हो गया है। बड़ा अंतराल पड़ गया है। कृष्ण ने जिनसे कहा था उनके मनों में, और जिनके मन आज उसे सुनेंगे, बड़ा अंतर है। बुद्ध की कुछ बात ऐसी है, कि ऐसा लगता है अभी-अभी उन्होंने कही। बुद्ध की बात को समसामयिक बनाने की जरूरत नहीं है; वह समसामयिक है, वह कंटेम्प्रेरी है। कृष्ण पर बोलो, तो कृष्ण को खींचकर लाना पड़ता है बीसवीं सदी में; बुद्ध को नहीं लाना पड़ता। बुद्ध जैसे खड़े ही हैं, बीसवीं सदी में ही खड़े हैं। और ऐसा अनेक सदियों तक रहेगा। क्योंकि मनुष्य ने जो होने का ढंग अंगीकार कर लिया है, बुद्धि का, वह अब ठहरने को है; वह अब जाने को नहीं है। और उसके साथ ही बुद्ध का मार्ग ठहरने को है।
धम्मपद उनका विश्लेषण है। उन्होंने जो जीवन की समस्याओं की गहरी छानबीन की है, उसका विश्लेषण है। एक-एक शब्द को गौर से समझने की कोशिश करना। क्योंकि ये कोई सिद्धांत नहीं हैं जिन पर तुम श्रद्धा कर लो। ये तो निष्पत्तियां हैं, प्रयोग की। अगर तुम भी इनके साथ विचार करोगे तो ही इन्हें पकड़ पाओगे। यह आंख बंद करके स्वीकार कर लेने का सवाल नहीं है; यह तो बड़े सोच-विचार, मनन का सवाल है।
साधारणतः आदमी की जिंदगी क्या है? कुछ सपने! कुछ टूटे-फूटे सपने! कुछ अभी भी साबित, भविष्य की आशा में अटके! आदमी की जिंदगी क्या है? अतीत के खंडहर, भविष्य की कल्पनाएं! आदमी का पूरा होना क्या है? चले जाते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, काम करते हैं--कुछ पक्का पता नहीं, क्यों? कुछ साफ जाहिर नहीं, कहां जा रहे हैं? बहुत जल्दी में भी जा रहे हैं। बड़ी पहुंचने की तीव्र उत्कंठा है, लेकिन कुछ पक्का नहीं, कहां पहुंचना चाहते हैं? किस तरफ जाते हो?

कल मैं एक गीत पढ़ता था साहिर काः
न कोई जादा न कोई मंजिल न रोशनी का सुराग
भटक रही है खलाओं में जिंदगी मेरी
न कोई रास्ता; न कोई मंजिल; रोशनी का सुराग भी नहीं; कोई एक किरण भी नहीं। और पूरी जिंदगी अंधेरी घाटियों में, शून्य में भटक रही है।
भटक रही है खलाओं में जिंदगी मेरी
ऐसी ही मनुष्य की दशा है सदा से। बहुत सी झूठी मंजिलें भी तुम बना लेते हो। राहत के लिए कुछ तो चाहिए! सत्य बहुत कड़वा है। और अगर सत्य के साथ तुम खड़े हो जाओ, तो खड़े होना भी मुश्किल मालूम होगा।
सिगमंड फ्रायड ने कहा है कि आदमी बिना झूठ के जी नहीं सकता। झूठ सहारा है। तो हम झूठी मंजिलें बना लेते हैं। असली मंजिल का तो कोई पता नहीं। बिना मंजिल के जीना असंभव। कैसे जीओगे बिना मंजिल के? अगर यह पक्का ही हो जाए कि पता ही नहीं कहां जा रहे हैं, तो पैर कैसे उठेंगे? यात्रा कैसे होगी? तो हम कल्पित मंजिल बना लेते हैं, एक झूठी मंजिल बना लेते हैं। उससे राहत मिल जाती है, लगता है कहीं जा रहे हैं। कोई रास्ता नहीं है; क्योंकि झूठी मंजिलों के कहीं कोई रास्ते होते हैं! जब मंजिल ही झूठी है, तो रास्ता कैसे हो सकता है? तो फिर हम रास्ता भी बना लेते हैं। रास्ता बना लेते हैं, मंजिल बना लेते हैं--सब कल्पित, सब मन के जाल, सब सपने! और ऐसे अपने को भर लेते हैं। और लगता है शून्य भर गया, जिंदगी बड़ी भरी-पूरी है।
कोई कुछ दिन हुए चल बसा। एक मित्र ने आकर कहा कि आपको पता चला, फलां- फलां व्यक्ति चल बसे? बड़ी भरी-पूरी जिंदगी थी! मैंने पूछा, रुको। चल बसे, ठीक; उसमें तो कुछ किया नहीं जा सकता। लेकिन भरी-पूरी जिंदगी थी, यह तुमसे किसने कहा? शायद उन्होंने सोचकर कहा भी नहीं था। थोड़े झिझके; कहा, मैं तो ऐसे ही कह रहा था। कहने की बात थी। पर मैंने कहा, कहा तब तुम भी सोचते होओगे कि बड़ी भरी-पूरी जिंदगी थी। मैं उनको जानता हूं। और अगर तुम मुझसे पूछो तो कुछ भी नहीं हुआ, क्योंकि वे मरे हुए ही थे। अब मरा हुआ मर जाए, इसमें कौन सी बड़ी घटना हो गयी। जिंदा वे कभी थे नहीं। क्योंकि जिंदगी तो सत्य के साथ ही उपलब्ध होती है, और कोई जिंदगी नहीं है। लेकिन जो झूठ के साथ जी रहा है, वह भी सोचता है, जिंदगी भरी-पूरी है।
कितने झूठ तुमने बना रखे हैं! लड़का बड़ा होगा, शादी होगी, बच्चे होंगे,
धन कमाएगा, यश पाएगा, और तुम मर रहे हो! और तुम्हारे बाप भी ऐसे ही मरे, कि तुम बड़े होओगे, कि शादी होगी, कि धन कमाओगे। और तुम्हारा लड़का भी ऐसे ही मरेगा। जिंदगी बड़ी भरी-पूरी जा रही है!
बाप बेटे के लिए मर जाता है। बेटा अपने बेटे के लिए मर जाता है। ऐसा एक-दूसरे पर मरते चले जाते हैं। कोई जीता नहीं। मरना इतना आसान, जीना इतना कठिन!
लोग सोचते हैं, मौत बड़ी दुस्तर है। गलत सोचते हैं। मौत में क्या दुस्तरता है? क्षण में मर जाते हो। जिंदगी दुस्तर है। सत्तर साल जीना होता है। और बिना झूठ के तुम जीना नहीं जानते हो, तो तुम हजार तरह के झूठ खड़े कर लेते हो--यश, पद, प्रतिष्ठा, सफलता, धन। जब इनसे चुक जाते हो तो धर्म, मोक्ष, स्वर्ग, परमात्मा, आत्मा, ध्यान, समाधि। पर तुम कुछ न कुछ... ताकि अपने को भरे रखो। और ध्यान रखना, बुद्ध का सारा जोर झूठ से खाली हो जाने पर है। सत्य से भरना थोड़े ही पड़ता है। झूठ से खाली हुए तो जो शेष रह जाता है, वही सत्य है। गयी बीमारी, जो बचा वही स्वास्थ्य है।
लेकिन कितने ही लोगों ने जगाने की कोशिश की है, तुम जागते नहीं। आदमी
का झूठ को पैदा करने का अभ्यास इतना गहरा है कि वह बुद्ध के आसपास भी-- बुद्ध भी मौजूद हों जगाने को तो उनके आसपास भी--अपनी नींद की सुविधा जुटा लेता है। बुद्ध जगाते हैं; तुम उनके जगाने की चेष्टा को भी नशा बना लेते हो। तुम हर चीज में से शराब निकाल लेते हो। ऐसी कोई चीज नहीं है जिसमें से तुम शराब न निकाल लो। इसलिए तो बुद्ध आते हैं, चले जाते हैं; बुद्धपुरुष पैदा होते हैं, विदा हो जाते हैं; तुम अपनी जगह अडिग खड़े रहते हो, तुम अपने झूठ से हटते नहीं। शायद, बुद्धपुरुषों ने जो कहा उसको भी तुम अपने झूठ में सम्मिलित कर लेते हो।

क्या है तुम्हारे झूठ का राज? अहंकार। अहंकार सरासर झूठ है। ऐसी कोई चीज कहीं है नहीं। तुम हो नहीं, सिर्फ एक भ्रांति हो; है तो पूर्ण। सारा अस्तित्व इकट्ठा है। यह भ्रांति है कि तुम अलग हो।
कल ही एक मित्र से मैंने कहा कि अब जागो। तो उन्होंने कहा कि कोशिश बहुत करता हूं, मन निंदा से भी भर जाता है अपने प्रति; अपराधी भी मालूम होता हूं; बेईमान भी मालूम पड़ता हूं--क्योंकि जो करना चाहिए मालूम है, समझ में आता है, और नहीं कर रहा हूं। तो मैंने उनसे कहा, तुम एक ही कृपा करो, यह करने का ख्याल छोड़ दो। क्योंकि उसने पैदा किया, वही श्वास ले रहा है, तुम करना भी उसी पर छोड़ दो। उन्होंने कहा कि जन्म उसने दिया, इतना तक तो मैं मान सकता हूं; लेकिन बाकी और काम वही कर रहा है, यह नहीं मान सकता। यह तो मैं मान ही नहीं सकता कि बेईमानी भी वही कर रहा है।
अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। हमें भी लगेगा कि बेचारा, धार्मिक बात तो
कह रहा है यह व्यक्ति, कि बेईमानी कैसे परमात्मा पर छोड़ दूं? लेकिन नहीं, सवाल यह नहीं है। अहंकार... ! यह कोई परमात्मा को बचाने की चेष्टा नहीं है कि परमात्मा पर बेईमानी कैसे सौंप दूं; यह भी अहंकार को बचाने की चेष्टा है। ध्यान रखना कि जब बेईमानी तुम करोगे, तो ईमानदारी भी तुम ही करोगे। लेकिन जब जन्म भी तुम्हारा अपना नहीं है और मौत भी तुम्हारी अपनी नहीं है, तो दोनों के बीच में तुम्हारा अपना कुछ कैसे हो सकता है? जब दोनों छोर पराए हैं, जब जन्म के पहले कोई और के हाथ में तुम हो, मौत के बाद किसी और के हाथ में, तो यह बीच की थोड़ी सी जो घड़ियां हैं, इनमें तुम अपने को सोच लेते हो अपने हाथ में, वहीं भ्रांति हो जाती है। वही अहंकार तुम्हें जगने नहीं देता। वही अहंकार सोने की नयी तरकीबें, व्यवस्थाएं खोज लेता है।

इसलिए बुद्धपुरुष आते हैं। उनके तीर ठीक तरकस से तुम्हारे हृदय की तरफ निकलते हैं। पर तुम बचा जाते हो।
हजारों खिज्र पैदा कर चुकी है नस्ल आदम की
आदमी ने कितने बुद्धपुरुष पैदा किए! हजारों खिज्र--पैगंबर, तीर्थंकर! हजारों खिज्र पैदा पर चुकी है नस्ल आदम की
ये सब तस्लीम लेकिन आदमी अब तक भटकता है
यह सब तस्लीम, यह सब स्वीकार कि हजारों बुद्धपुरुष हुए हैं। पर इससे क्या फर्क पड़ता है? आदमी अब तक भटकता है। आदमी भटकना चाहता है। कहता तो आदमी यही है कि भटकना नहीं चाहता। कहते तो तुम मेरे पास यही हो, शांत होना चाहते हैं, सत्य होना चाहते हैं, सरल होना चाहते हैं। लेकिन सच में तुम होना चाहते हो? या कि सरलता के नाम पर तुम नयी जटिलता खोज रहे हो? या सत्य के नाम पर तुमने नए झूठों की तलाश शुरू की है? या शांति के नाम पर अब तुमने एक नया रोग पाला? अब तुम शांति के नाम पर अशांत होने को उत्सुक हुए हो? साधारण आदमी अशांत होता है सिर्फ; शांति की तो कम से कम चिंता नहीं होती। अब तुम शांति के लिए भी चिंतित हुए। पुरानी अशांति तो बरकरार, अब तुम और धन करोगे उसमें, गुणनफल करोगे। अब तुम कहोगे कि शांति भी चाहिए। अब एक नयी अशांति जुड़ी, कि शांति नहीं है। झूठ तो तुम थे; अब तुम कहते हो, सत्य खोजेंगे। अब तुम सत्य के नाम पर कुछ नए झूठ ईजाद करोगे--स्वर्ग के, मोक्ष के, नर्क के, परमात्मा के, आकाश के।
मंदिरों में जाओ, स्वर्गों के नक्शे टंगे हैं--पहला स्वर्ग, दूसरा स्वर्ग; पहला खंड, दूसरा खंड, तीसरा खंड, सच खंड तक; नक्शे टंगे हुए हैं। आदमी की मूढ़ता की कोई सीमा है, कोई अंत है! अपने घर का नक्शा भी तुमसे बनेगा नहीं। अपना भी नक्शा तुम बना न सकोगे कि तुम क्या हो, कहां हो, कौन हो; तुमने स्वर्ग के नक्शे बना लिए!
एक दुकान पर एक शिकारी कुछ सामान खरीद रहा था। अफ्रीका जा रहा था शिकार करने। कहीं जंगल में भटक न जाए, इसलिए उसने एक यंत्र खरीदाः दिशासूचक यंत्र, कॅम्पास। और तो सब ठीक था, उसने खोलकर देखा, लेकिन कॅम्पास में पीछे एक आईना भी लगा था। यह उसकी समझ में न आया। क्योंकि यह कोई कॅम्पास है या किसी स्त्री का साज-शृंगार का सामान? इसमें आईना किसलिए लगा है? यह दिशासूचक यंत्र है, इसमें आईने की क्या जरूरत? उसने

दुकानदार से पूछा कि और सब तो ठीक है, लेकिन यह मेरी समझ में नहीं आया कि इसमें आईना क्यों लगा है? दुकानदार ने कहा, यह इसलिए कि जब तुम भटक जाओ, तो कॅम्पास तो बताएगा स्थान; आईने में तुम देख लेना ताकि पता चल जाए--कौन भटक गया है? कहां भटक गए हो यह तो कॅम्पास से पता चल जाएगा; लेकिन कौन भटक गया है... !
अपना पता नहीं है, स्वर्ग के नक्शे बना दिए हैं! विवाद चल रहे हैं लोगों के--कितने नर्क होते हैं? हिंदू कहते हैं, तीन। जैन कहते हैं, सात। बुद्ध ने बड़ी मजाक की है, उन्होंने कहा, सात सौ। यह मजाक की है, क्योंकि बुद्ध को जरा भी उत्सुकता नहीं है इस तरह की मूढ़ताओं में। लेकिन मजाक भी नहीं समझ पाते लोग। बुद्ध के मानने वाले हैं जो कहते हैं कि नहीं, सात सौ ही होते हैं, इसीलिए कहे। मैं तुमसे कहता हूं, सात हजार।
आदमी सत्य से भी झूठ खोज लेता है। इसलिए आदमी भटकता है।
बुद्ध बड़े शुद्ध खोजी हैं। उनकी खोज बड़ी निर्दोष। घर छोड़ा तो जितने गुरु उपलब्ध थे, सबके पास गए। गुरु उनसे थक गए; क्योंकि असली शिष्य आ जाए तभी पता चलता है कि गुरु गुरु है या नहीं। झूठे शिष्य हों साथ, तो पता ही नहीं चलता।
लोग मुझसे पूछते हैं आकर, कि असली गुरु का कैसे पता चले? मैं उनको कहता हूं, तुम फिक्र न करो। अगर तुम असली शिष्य हो, पता चल जाएगा। नकली गुरु तुमसे बचेगा, भागेगा, कि यह चला आ रहा है असली शिष्य, यह झंझट खड़ी करेगा। तुम गुरु की फिक्र ही छोड़ दो। असली शिष्य अगर तुम हो, तो नकली गुरु तुम्हारे पास टिकेगा ही नहीं। तुम टिके रहना, वही भाग जाएगा।
जिब्रान की कहानी है कि एक आदमी गांव-गांव कहता फिरता था कि मुझे स्वर्ग का पता है, जिनको आना हो मेरे साथ आ जाओ। कोई आता नहीं था, क्योंकि लोगों को हजार दूसरे काम हैं, कोई स्वर्ग जाने की इतनी जल्दी वैसे भी किसी को नहीं है। लोग स्वर्गीय तो मजबूरी में होते हैं। जब हाथ-पैर ही नहीं चलते और लोग मरघट पर पहुंचा आते हैं, तब स्वर्गीय होते हैं। कोई स्वर्गीय होने को राजी नहीं था। लोग कहते, आपकी बात सुनते हैं, जंचती है; जब जरूरत होगी तब उपयोग करेंगे, मगर अभी कृपा करें, अभी... अभी हमें जाना नहीं।
एक गांव में ऐसा हुआ... उस आदमी का खूब धंधा चलता था। क्योंकि जिनको स्वर्ग नहीं जाना, उनको बचने के लिए भी गुरु को कुछ गुरु-दक्षिणा देनी पड़ती थी। वह आ जाए गांव में और समझाए, तो उसकी कुछ सेवा भी करनी पड़ती, पैर भी पड़ने पड़ते। वे कहते, तुम बिल्कुल ठीक हो, मगर अभी हम साधारणजन, अभी संसार में उलझे हैं; जब कभी सुलझेंगे, जरूर आपकी बात का ख्याल करेंगे। रख लेते हैं सम्हालकर हृदय में। तो गुरु का धंधा भी चलता था। न कभी कोई झंझट आयी थी, न कुछ!
एक गांव में उपद्रव हो गया। एक असली शिष्य मिल गया। उसने कहा, अच्छा, तुम्हें पता है! पक्का पता है? बिल्कुल पक्का पता है। क्योंकि अभी तक कोई झंझट आयी नहीं थी। उसने कहा, अच्छा, मैं चलता हूं। कितने दिन लगेंगे पहुंचने में? तब जरा गुरु घबड़ाया कि यह जरा उपद्रवी मालूम पड़ता है। पैर छुओ, बात ठीक है। साथ चलने की बात! मगर अब सबके सामने मना भी नहीं कर सका। उसने कहा, देखेंगे, भटकाएंगे साल दो साल, भाग जाएगा अपने आप। छह साल बीत गए। वह उनके पीछे ही पड़ा है। वह कहता है कि कब आएगा? अभी तक आया नहीं। एक दिन उस गुरु ने कहा, तेरे हाथ जोड़ता हूं, भैया! तू जब तक न मिला था हमको भी पता था; अब तेरे कारण हमारा भी... ! असली शिष्य मिल जाए, तो फिर गुरु अपने आप... ।
दुनिया में नकली गुरु हैं, क्योंकि नकली शिष्यों की बड़ी संख्या है। नकली गुरु तो बाइप्राडक्ट हैं। वे सीधे पैदा नहीं होते। नकली शिष्य उन्हें पैदा कर लेता है।
बुद्ध सभी गुरुओं के पास गए। गुरु घबड़ा गए। क्योंकि यह व्यक्ति निश्चित प्रामाणिक था। जो उन्होंने कहा, वह इसने इतनी पूर्णता से किया कि उनको भी दया आने लगी, कि यह तो हमने भी नहीं किया है! कोई करता ही नहीं था, तब तक बात ठीक थी। इस पर दया आने लगी। इससे यह भी न कह सकते थे कि तुमने पूरा नहीं किया, इसलिए उपलब्ध नहीं हो रहा है। इसने पूरा-पूरा किया। उसमें

तो रत्ती भर कमी नहीं रखी। गुरुओं ने हाथ जोड़कर कहा कि बस, हम यहां तक तुम्हें बता सकते थे, इसके आगे हमें खुद भी पता नहीं है।
सारे गुरुओं को बुद्ध ने चुका डाला। एक गुरु साबित न हुआ। तब सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा कि खुद खोजें। और इसीलिए बुद्ध की बातों में बड़ी ताजगी है, क्योंकि उन्होंने खुद खोजा। किसी गुरु से नहीं पाया था। किसी से सुनकर नहीं दोहराया था। फिर खुद खोज पर निकले--नितांत अकेले, बिना किसी सहारे के। शास्त्र धोखा दे गए, गुरु धोखा दे गए, सब पीछे हट गए, अकेला रह गया खोजी।
ऐसा ही होता है। जब तुम्हारी खोज असली होगी, तुम पाओगे शास्त्र काम नहीं देते। शास्त्र तभी तक काम देते हैं जब तक तुम उनका भजन-पाठ करते हो। बस तभी तक। अगर तुमने यात्रा शुरू की, तुम तत्क्षण पाओगे शास्त्र में हजार गलतियां हैं। होनी ही चाहिए। क्योंकि हजारों साल तक हजारों लोग उसे दोहराते रहे हैं, बनाते रहे हैं। उसमें बहुत कुछ छूट गया है, बहुत कुछ जुड़ गया है। लेकिन यह तो पता तुम्हें तभी चलेगा जब तुम यात्रा करोगे।
एक तुम नक्शा लिए घर में बैठे हो, उसकी तुम पूजा करते हो--तो कैसे पता चलेगा? यात्रा पर निकलो तब तुम्हें पता चलेगा--अरे, इस नक्शे में नदी बतायी है, यहां कोई नदी नहीं है! इस नक्शे में पहाड़ बताया है, यहां कोई पहाड़ नहीं है! इस नक्शे में कहा है बाएं मुड़ना, बाएं मुड़ो तो गड्ढा है। यात्रा होती नहीं। दाएं मुड़ो तो ही हो सकती है।
जब तुम यात्रा पर निकलोगे तभी परीक्षा होती है तुम्हारे नक्शों की। उसके बिना कोई परीक्षा नहीं। जो भी यात्रा पर गए, उन्होंने शास्त्र को सदा कम पाया। जो भी यात्रा पर गए, उन्होंने गुरुओं को कम पाया। जो भी यात्रा पर गए, उन्हें एक बात अनिवार्यरूपेण पता चली कि प्रत्येक को अपना मार्ग स्वयं ही खोजना पड़ता है। दूसरे से सहारा मिल जाए, बहुत। पर कोई दूसरा तुम्हें मार्ग नहीं दे सकता। क्योंकि दूसरा जिस मार्ग पर चला था, तुम उस पर कभी भी न चलोगे। वह उसके लिए था। वह उसका था। वह उसके स्वभाव में अनुकूल बैठता था।
और प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है।
बुद्ध ने यह घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। इसलिए एक ही राजपथ पर सभी नहीं जा सकते, सबकी अपनी पगडंडी होगी। इसलिए सदगुरु तुम्हें रास्ता नहीं देता, केवल रास्ते को समझने की परख देता है। सदगुरु तुम्हें विस्तार के नक्शे नहीं देता, केवल रोशनी देता है, ताकि तुम खुद विस्तार देख सको, नक्शे तय कर सको। क्योंकि नक्शे रोज बदल रहे हैं।
जिंदगी कोई थिर बात नहीं है, जड़ नहीं है। जिंदगी प्रवाह है। जो कल था
वह आज नहीं है, जो आज है वह कल नहीं होगा।
सदगुरु तुम्हें प्रकाश देता है, रोशनी देता है, दीया देता है हाथ में
कि यह दीया ले लो, अब तुम खुद खोजो और निकल जाओ। और ध्यान रखना, खुद खोजने से जो मिलता है, वही मिलता है। जो दूसरा दे दे, वह मिला हुआ है ही नहीं। दूसरे का दिया छीना जा सकता है। खुद का खोजा भर नहीं छीना जा सकता। और जो छिन जाए वह कोई अध्यात्म है? जो छीना न जा सके, वही।
पहली गाथाः
"मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है; मन उनका प्रधान है, वे मनोमय हैं। यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता है या कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी का चक्का खींचने वाले बैलों के पैर का।"
छोटा सूत्र, पर बड़ा दूरगामी। ध्यान रखना, बुद्ध किसी शास्त्र को नहीं दोहरा रहे हैं। बुद्ध से शास्त्र पैदा हो रहा है।
"मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है।"
कोई भी वृत्ति उठती है... राह पर तुम खड़े हो, एक सुंदर कार निकली। क्या हुआ तुम्हारे मन में? एक छाप पड़ी। एक काली कार निकली, एक प्रतिबिंब गूंजा। कार के निकलने से वासना पैदा नहीं होती--अगर तुम देखते रहो और तुम्हारा देखना ऐसा ही तटस्थ हो जैसे कैमरे की आंख होती है। कैमरे के सामने से भी कार निकल जाए, वह फोटो भी उतार देगा, तो भी कार खरीदने नहीं जाएगा। और न सोचेगा कि कार खरीदनी है। अगर तुम वहां खड़े हो और कैमरे जैसी तुम्हारी आंख

है--तुमने सिर्फ देखा, काली कार गुजर गयी। चित्र बना, गया। एक छाया आयी, गयी--कुछ भी कठिनाई नहीं है।
लेकिन जब यह काली छाया कार की तुम्हारे भीतर से निकल रही है, तब तुम्हारे मन में एक कामना जगी--ऐसी कार मेरे पास हो! मन में एक विकार उठा। एक लहर उठी--जैसे पानी में किसी ने कंकड़ फेंका और लहर उठी। कार तो जा चुकी, अब लहर तुम्हारे साथ है। अब यह लहर तुम्हें चलाएगी।
तुम धन कमाने में लगोगे, या तुम चोरी करने में लगोगे, या किसी की जेब काटोगे। अब तुम कुछ करोगे। अब वृत्ति ने तुम्हें पकड़ा। अब वृत्ति तुम्हारी कभी क्रोध करवाएगी, अगर कोई बाधा डालेगा। अगर कोई मार्ग में आएगा तो तुम हिंसा करने को उतारू हो जाओगे, मरने-मारने को उतारू हो जाओगे। अगर कोई सहारा देगा तो तुम मित्र हो जाओगे, कोई बाधा देगा तो शत्रु हो जाओगे। अब तुम्हारी रातें इसी सपने से भर जाएंगी। बस यह कार तुम्हारे आसपास घूमने लगेगी। जब तक यह न हो जाए, तुम्हें चैन न मिलेगा।
और मजा यह है कि वर्षों की मेहनत के बाद जिस दिन यह तुम्हारी हो जाएगी, तुम अचानक पाओगे, कार तो अपनी हो गयी, लेकिन अब? इन वर्षों की बेचैनी का अभ्यास हो गया। अब बेचैनी नहीं छोड़ती। कार तो अपनी हो गयी, लेकिन बेचैनी नहीं जाती, क्योंकि बेचैनी का अभ्यास हो गया।
अब तुम इस बेचैनी के लिए नया कोई यात्रा-पथ खोजोगे। बड़ा मकान बनाना है! हीरे-जवाहरात खरीदने हैं! अब तुम कुछ और करोगे, क्योंकि अब बेचैनी तुम्हारी आदत हो गयी। और अब इस बेचैनी का तुम क्या करोगे? सालों तक बेचैनी को सम्हाला, कार तो मिल गयी; लेकिन अब कार का मिलना न मिलना बराबर है। अब यह बेचैनी पकड़ गयी।
इसीलिए तो धनी बहुत लोग हो जाते हैं और धनी नहीं हो पाते। क्योंकि जब
वे धनी होते हैं, तब तक बेचैनी का अभ्यास हो गया उनका। जब तक धनी हुए तब तक चैन से न रह सके, सोचा कि जब धनी हो जाएंगे तब चैन से रह लेंगे। लेकिन चैन कोई इतनी आसान बात है! अगर बेचैनी का अभ्यास घना हो गया, तो धनी तो तुम हो जाओगे, बेचैनी कहां जाएगी? तब और धनी होने की दौड़ लगती है। और मन कहता है और धनी हो जाएं, फिर... । लेकिन सारा जाल मन का है।
बुद्ध ने अपनी एक-एक वृत्ति को जांचा और पाया कि वृत्ति मन के सरोवर में उठी लहर है। वृत्ति का मतलब ही लहर होता है। वह मन का कंप जाना है। अगर मन निष्कंप रह पाए तो कोई वृत्ति पैदा नहीं होती। अगर मन कंप गया, तो वृत्ति पैदा हो जाती है। फिर कोई फर्क नहीं पड़ता कि किस चीज से कंपता है। आज से ढाई हजार साल पहले बुद्ध के समय में कार तो नहीं थी, तो कई नासमझ सोचते हैं कि तब बड़ी शांति थी; क्योंकि कार नहीं थी, तो कार की तो चिंता पैदा नहीं हो सकती थी। हवाई जहाज नहीं था, तो हवाई जहाज खरीदना है इसकी चिंता तो पैदा नहीं हो सकती थी। लेकिन तुम गलती में हो। चिंताएं इतनी ही थीं। क्योंकि किसी के पास शानदार बैलगाड़ी थी, बग्घी थी, वह चिंता पैदा करवाती थी। किसी के पास शानदार घोड़ा था, वह चिंता पैदा करवाता था।
चिंता के लिए विषय से कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम लहर सरोवर में उठाने के लिए एक कंकड़ फेंको या कोहिनूर हीरा फेंको, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोहिनूर हीरा भी वृत्ति उठाता है, साधारण कंकड़ भी उतनी ही वृत्ति उठाता है, उतनी ही लहर उठाता है। पानी फिकर नहीं करता कि तुमने कोहिनूर फेंका कि कंकड़ फेंका। कुछ फेंका, बस इतना काफी है। मन ने कुछ भी फेंका और उपद्रव शुरू हुआ।
"मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है; मन उनका प्रधान है; वे मनोमय हैं। यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता है या कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी का चक्का खींचने वाले बैलों के पैर का।"
बुद्ध ने एक सूत्र पायाः जीवन में दुख है। हम भी जीवन में दुखी हैं।
और जब हमें दुख पकड़ता है तो हम पूछते हैं, किसने दुख पैदा किया? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है--पत्नी, पति, बेटा, बाप, मित्र, समाज? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है--आर्थिक-व्यवस्था, सामाजिक-ढांचा? कौन मेरा दुख पैदा कर रहा है? मार्क्स से पूछो तो वह कहता है, दुख पैदा हो रहा है क्योंकि समाज का आर्थिक ढांचा गलत है। गरीबी है, अमीरी है, इसलिए दुख पैदा हो रहा है।

फ्रायड से पूछो तो वह कहता है, दुख इसलिए पैदा हो रहा है कि मनुष्य को अगर उसकी वृत्तियों के प्रति पूरा खुला छोड़ दिया जाए, तो वह जंगली जानवर जैसा हो जाता है। दुख पैदा होगा उससे। सभ्यता नष्ट हो जाएगी। अगर उसे समझाया- बुझाया जाए, तैयार किया जाए, परिष्कृत किया जाए, तो दमन हो जाता है। दमन होने से दुख पैदा होता है।
इसलिए फ्रायड ने कहा, दुख कभी भी न मिटेगा। अगर आदमी को बिल्कुल खुला छोड़ दो, तो मार-काट हो जाएगी; क्योंकि आदमी के भीतर हजार तरह की जानवरी वृत्तियां हैं। अगर दबाओ, ढंग का बनाओ, सज्जन बनाओ, तो दमन हो जाता है। दमन होता है, तो दुख होता रहता है, वृत्तियां पूरी नहीं हो पातीं। पूरी करो तो मुसीबत, न पूरी करो तो मुसीबत।
तो फ्रायड ने तो अंत में कहा कि आदमी जैसा है, कभी सुखी हो ही नहीं सकता। सुख असंभव है।
फ्रायड और मार्क्स, इनका विश्लेषण ही अगर अकेला विश्लेषण होता तो पक्का है कि आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता। क्योंकि रूस में गरीब-अमीर मिट गए, लेकिन दुख नहीं मिटा। गरीब-अमीर मिट गए, तो दूसरे वर्ग खड़े हो गए। कोई पद पर है, कोई पद पर नहीं है। कोई कम्युनिस्ट पार्टी में है, कोई कम्युनिस्ट पार्टी में नहीं है। जो पद पर है, वह इतना शक्तिशाली हो गया है जितना धनी पुराने दिनों में कभी भी न था। और जो पद पर नहीं है, वह इतना निर्बल हो गया है जितना भूखा, भिखमंगा, गरीब कभी नहीं था। धनी के हाथ में इतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी रूस में पदाधिकारी के हाथ में है। संघर्ष वहीं का वहीं खड़ा है। भेद वहीं का वहीं खड़ा है। वर्ग नए बन गए, पुराने मिटे तो। कुछ ऐसा लगता है, आदमी बीमारी बदलता जाता है। क्रांतियों के नाम से केवल बीमारी बदलती है, कुछ भी बदलता नहीं। ऊपर के ढंग बदलते हैं, भीतर का रोग जारी रहता है।
सब क्रांतियां व्यर्थ हो गयी हैं; सिर्फ बुद्ध की एक क्रांति अभी भी सार्थकता रखती है।
बुद्ध कहते हैं, तुम्हारे मन में ही कारण है। बाहर खोजने गए, पहला कदम
ही गलत पड़ गया। अब तुम ठीक कभी न हो पाओगे। तुम्हारे मन में ही दुख का कारण है। जब भी तुम किसी को दुख देना चाहते हो, तुम दुख पाओगे। जब भी तुम दुख देने की आकांक्षा से भरे किसी विचार के पीछे जाते हो, तुम दुख के बीज बो रहे हो। दूसरे को दुख मिलेगा या नहीं मिलेगा, तुम्हें दुख जरूर मिलेगा। तुम अगर आज दुख पा रहे हो, तो बुद्ध कहते हैं, कल बोए बीजों का फल है। और अगर कल तुम चाहते हो दुख न पाओ, तो आज कृपा करना, आज बीज मत बोना।
"यदि कोई दोषयुक्त मन से बोलता है, सोचता है, व्यवहार करता है, या वैसे कर्म करता है, तो दुख उसका अनुसरण वैसे ही करता है जैसे गाड़ी जाती है तो बैलों के पीछे चाक चले आते हैं।"
तुम्हारे मन में अगर किसी को भी दुख देने का जरा सा भी भाव है, तो तुम अपने लिए बीज बो रहे हो। क्योंकि तुम्हारे मन में जो दुख देने का बीज है, वह तुम्हारे ही मन की भूमि में गिरेगा, किसी दूसरे के मन की भूमि में नहीं गिर सकता। बीज तो तुम्हारे भीतर है, वृक्ष भी तुम्हारे भीतर ही होगा। फल भी तुम्हीं भोगोगे।
अगर बहुत गौर से देखा जाए, तो जब तुम दूसरे को दुख देना चाहते हो, तब तुमने अपने को दुख देना शुरू कर ही दिया। तुम दुखी होने शुरू हो ही गए। तुम क्रोधित हो, किसी पर क्रोध करके उसे नष्ट करना चाहते हो; उसे तुम करोगे या नहीं, यह दूसरी बात है, लेकिन तुमने अपने को नष्ट करना शुरू कर दिया। बुद्ध कहते थे, क्रोध से बड़ी कोई मूढ़ता नहीं है। दूसरे के कसूर के लिए तुम अपने को दंड देते हो। एक आदमी ने तुम्हें गाली दी, कसूर उसका होगा, अब क्रोधित तुम हो रहे हो--दंड तुम अपने को दे रहे हो, कसूर उसका था। इससे ज्यादा मूढ़ता और क्या हो सकती है? उसने गाली दी, उसकी समस्या है; तुम क्यों बीच में आते हो? तुम गाली मत लो। लेने पर निर्भर है। लेना आवश्यक नहीं है। आप मुझे गाली दे सकते हैं, लेकिन लेने पर थोड़े ही मजबूर कर सकते हैं। देना आपके बस में है, लेना मेरे बस में है। उस मालकियत को मुझसे कोई कभी नहीं छीन सकता। मैं कह सकता हूं कि नहीं लेता, फिर तुम क्या करोगे? तुम्हारी

गाली तुम्हीं पर लौट जाएगी। तुमने गाली देने के लिए जो तैयारी में दुख भोगा, वह भोगा; अब गाली लौटेगी तब तुम जो दुख भोगोगे, वह भोगोगे।
जब हम किसी चीज को अपने मन के भीतर ले लेते हैं, तभी वह सक्रिय हो जाती है। और दूसरे से लेने की कोई जरूरत नहीं है; तुम अपने भीतर ही इतने दुख के बीज पैदा करते रहते हो। अकारण!
मैं कलकत्ते में एक मित्र के घर मेहमान होता था। उनके पास सबसे बढ़िया कोठी है कलकत्ते में। थी कहना चाहिए, अब नहीं है। अब एक दूसरी कोठी खड़ी हो गयी, पड़ोस में ही खड़ी हो गयी। जब मैं उनके घर मेहमान होता था, तो वे हमेशा अपने मकान में मुझे ले जाते। कई बार दिखा चुके थे, मगर फिर-फिर दिखाते। उनका रस खतम नहीं होता था। स्विमिंग-पूल, बगीचा--सब दिखाते। उनकी आदत थी, यह मानकर मैं जब भी वे दिखाते फिर इस तरह उत्सुकता लेता जैसे कभी नहीं देखा है। मगर आखिरी बार जब उनके घर गया, तो उन्होंने मकान न दिखाया। मैं थोड़ा हैरान हुआ, क्या यह आदमी बदल गया! मैंने पूछा कि क्या मामला है, मकान नहीं दिखलाइएगा? कहने लगे, क्या खाक दिखलाएं!
क्या हुआ?
देखते नहीं कि बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया? जब तक इससे बड़ी कोठी न
कर लूं तब तक अब चैन नहीं! अब क्या दिखाना है!
इनका मकान वैसे का वैसा ही है, क्योंकि बगल के मकान ने इनके मकान में कुछ फर्क नहीं किया है। इनका मकान ठीक उतना ही सुंदर है जैसा था। लेकिन बगल में एक मकान खड़ा हो गया! बड़ी लकीर किसी ने खींच दी, इनकी लकीर छोटी हो गयी, बिना छुए। किसी ने छुआ नहीं, हाथ नहीं लगाया; मगर बगल में एक लकीर खड़ी हो गयी।
उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि कुछ समझाइए इनको; न सोते हैं, न चैन! इनकी छाती पर बोझ हो गया है वह बगल का मकान। बगल के मकान वाले को शायद पता भी न हो कि कोई जला-भुंजा जा रहा है, कि कोई मरा जा रहा है। मगर इस आदमी ने अपने भीतर एक बीज बो लिया। यह उस मकान से नहीं आया है, क्योंकि इसकी पत्नी को कोई तकलीफ नहीं है। इसकी पत्नी भी वहीं है, उसे कोई तकलीफ नहीं है। मकान से नहीं आया है; इसके अपने भीतर के मन का रोग है। एक ईर्ष्या जगी है। अहंकार को चोट लगी है।
मैंने उनसे कहा कि मैं सदा जानता था, कभी न कभी यह झंझट होगी। आप अपने
मन में अपने मकान का इतना रस लेते हैं कि कोई भी मकान अगर खड़ा हो गया, तो आप जी न सकोगे। क्योंकि सदा आपको देखकर मुझे ऐसा लगा है, यह मकान आपके लिए नहीं है, आप मकान के लिए हो। आप मालिक नहीं हो, यह मकान मालिक है। आप वस्तु को अपना सब सम्हाल दिए हैं, दे दिए हैं वस्तुओं को। आप गुलाम हो गए हैं। मुझे डर था कि कभी न कभी यह होगा, कोई मकान बड़ा बगल में खड़ा हो जाएगा, तो तुम न झेल पाओगे।
वे रुग्ण रहने लगे जब से वह मकान बन गया। मन में सारा खेल है।
यही जिंदगी मुसीबत यही जिंदगी मसर्रत
यही जिंदगी हकीकत यही जिंदगी फसाना
कैसी मन की व्याख्या है, कैसे तुम देखते हो, कैसे तुम सोचते हो, कैसी तुम व्याख्या करते हो जीवन की--सब उस पर निर्भर है।
"मन सभी प्रवृत्तियों का पुरोगामी है, मन उनका प्रधान है। यदि कोई प्रसन्न मन से बोलता है या कर्म करता है, तो सुख उसका अनुसरण करता है--वैसे ही जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया।"
अगर तुम दुखी हो तो अपने को कारण जानना, अगर सुखी हो तो अपने को कारण जानना। अपने से बाहर कारण को मत ले जाना। वही धोखा है। इसको ही मैं धार्मिक क्रांति कहता हूं। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन के सारे कारणों को अपने भीतर देख लिया, वह व्यक्ति धार्मिक हो गया। क्योंकि अब उसके हाथ में है बात। अब दुखी होना हो, तो तुम जानते हो कौन से बीज बोने। सुखी होना हो, तो जानते हो कौन से बीज बोने। अब कोई मजबूरी न रही। फिर अगर दुख में ही मजा लेना हो, तो मजे से बीज बोओ; कोई बाधा नहीं डाल सकता। लेकिन एक बात फिर तुम न कर सकोगे कि दुख के तो बीज बोओ और रोना भी रोओ कि मैं दुखी क्यों हूं! अपने ही हाथ से जहर पीओ, और फिर रोओ कि मैं मर क्यों रहा हूं! मरना हो, मजे

से जहर पीओ। जीना हो, मत पीओ। तुम्हारे हाथ हैं, तुम्हारी प्याली है, तुम्हारा जहर है--और तुम्हीं को जीना या मरना है।
"उसने मुझे डांटा, मुझे मारा, मुझे जीत लिया, मेरा लूट लिया--जो ऐसी गांठें मन में बनाए रखते हैं, उनका वैर शांत नहीं होता।"
उसने! दूसरे पर जिनका सारा जोर है--उसने मुझे डांटा, उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, मेरा लूट लिया--जो दूसरे पर नजर रखते हैं... ।
बुद्ध का एक शिष्य हुआ पूर्ण काश्यप। वह निश्चित ही पूर्ण हो गया था, इसलिए उसे बुद्ध पूर्ण कहते हैं। फिर एक दिन बुद्ध ने उससे कहा कि पूर्ण, अब तू पूर्ण सच में ही हो गया। अब मेरे साथ-साथ डोलने की कोई जरूरत न रही। अब तू जा। अब तू गांव-गांव, नगर-नगर घूम और डोल। मेरी खबर ले जा। मेरे पास तूने जो पाया है, उसे लुटा।
पूर्ण ने कहाः भगवान, किस दिशा में जाऊं? आप इशारा कर दें।
बुद्ध ने कहाः तू खुद ही चुन ले। अब तू खुद ही समर्थ है। अब मेरे इशारे
की भी कोई जरूरत न रही।
तो पूर्ण ने कहा कि जाऊंगा--"सूखा" नाम का एक इलाका था बिहार में--वहां जाऊंगा। बुद्ध ने कहा, तू खतरा मोल ले रहा है। वह जगह भली नहीं। लोग सज्जन नहीं। लोग बड़े दुष्ट हैं और लोग सताने में रस लेते हैं। लोग तुझे परेशान करेंगे। इन पीत-वस्त्रों में उन्होंने भिक्षु कभी देखा नहीं। वे बड़े जंगली हैं। तू वहां मत जा।
पर पूर्ण ने कहा, इसीलिए तो उनको मेरी जरूरत है। किसी को तो जाना ही होगा। कब तक वे जंगली रहें? कब तक उनको पशुओं की तरह रहने दिया जाए? मुझे जाना होगा। आज्ञा दें।
बुद्ध ने कहा, जा; मगर मेरे दो-तीन सवालों के जवाब दे दे। पहलाः अगर वे तुझे गालियां दें, अपमान करें, तो तुझे क्या होगा? तो पूर्ण ने कहा, यह भी आप मुझसे पूछते हैं, क्या होगा? आप भलीभांति जानते हैं कि मैं प्रसन्न होऊंगा। क्योंकि मेरे मन में यह भाव उठेगा, कितने भले लोग हैं, सिर्फ गालियां देते हैं, मारते नहीं। मार भी सकते थे।
बुद्ध ने कहा, ठीक। मगर अगर मारें, मारने ही लगें, तो तेरे मन में क्या होगा? पूर्ण ने कहा, आप पूछते हैं? आप भलीभांति जानते हैं कि पूर्ण प्रसन्न होगा, कि धन्यभाग कि मारते हैं, मार ही नहीं डालते। मार भी डाल सकते थे।
बुद्ध ने कहा, आखिरी सवाल, पूर्ण। अगर मार ही डालें, तो मरते वक्त तेरे
मन में क्या होगा? पूर्ण ने कहा, आप, और पूछते हैं? आपको भलीभांति मालूम है कि जब मैं मर रहा होऊंगा तो मेरे मन में होगा, धन्यभाग, उस जीवन से छुटकारा दिला दिया जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी।
बुद्ध ने कहा, अब तू जा। अब तुझे जहां जाना है, तू जा। अब तुझे कोई गाली नहीं दे सकता। अब तुझे कोई मार नहीं सकता। अब तुझे कोई मार डाल नहीं सकता। ऐसा नहीं कि वे तुझे गाली न देंगे; गाली तो वे देंगे, लेकिन तुझे अब कोई गाली नहीं दे सकता। ऐसा नहीं कि वे तुझे मारेंगे नहीं; मारेंगे, लेकिन तुझे अब कोई मार नहीं सकता। और कौन जाने, कोई तुझे मार भी डाले; लेकिन अब तू अमृत है। अब तेरी मृत्यु संभव नहीं।
सारा खेल मन का है, कैसे हम देखते हैं!
"उसने मुझे डांटा, उसने मुझे मारा, मुझे जीत लिया, मेरा लूट लिया--जो ऐसी गांठें मन में नहीं बनाए रखते हैं, उनका वैर शांत हो जाता है।"
और वैर नर्क है। कहीं और कोई नर्क नहीं; शत्रुता में जीना नर्क है। तुम जितनी शत्रुता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना तुम्हारा नर्क बड़ा हो जाता है। तुम जितनी मित्रता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना स्वर्ग खड़ा हो जाता है। स्वर्ग मित्रों के बीच जीने का नाम है। नर्क शत्रुओं के बीच जीने का नाम है। और सब तुम पर निर्भर है। नर्क कोई भौगोलिक जगह नहीं है, और न स्वर्ग कोई भौगोलिक जगह है। नक्शों में मत पड़ना। मनोदशाएं हैं। स्टेट्स आफ माइंड।
जब तुम सारे जगत को मित्र की तरह देखते हो--ऐसा नहीं कि सारा जगत मित्र
हो जाएगा, इस भूल में मत पड़ना--लेकिन तुम जब सारे जगत को मित्र की भांति

देखते हो, तुम्हारे लिए जगत मित्र हो गया, तुम्हारे शत्रु समाप्त हो गए। और अगर कोई तुम्हारी शत्रुता करेगा, तो वह शत्रुता उसके मन में होगी, वह उसकी पीड़ा पाएगा। लेकिन तुम्हें कोई पीड़ा नहीं दे सकता।
"इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होता। अवैर से ही वैर शांत होता है। यही सनातन धर्म है, यही नियम है।"

नहि वेरेन वेरामि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतनो।।

यही सनातन धर्म है। शत्रुता से शत्रुता समाप्त नहीं होती। क्रोध से क्रोध समाप्त नहीं होता। वैर से वैर नहीं मिटता। और जितना वैर बढ़ता जाता है, उतना तुम अपने चारों तरफ अपने हाथों नर्क निर्मित करते चले जाते हो। यह जगत तुम्हारी कृति है। तुम चारों तरफ अपना परिवेश बनाते हो। यह बात तुम्हें दिखायी पड़ जाए, यह इशारा तुम्हें समझ आ जाए, तो तुम्हें फिर कोई दुख नहीं दे सकता। तुम्हारा स्वभाव तब सुख हो जाएगा।
फैलाओ मैत्री!
महावीर ने कहा हैः मित्ति मे सव्व भूए सू, वैरं मज्झ न केवई। मेरी मित्रता सबसे है, सारे विश्व से है। सब भूतों से--सव्व भूए सू। और वैर मेरा किसी से भी नहीं।
महावीर के कानों में भी खीले ठोंकने वाले मिल गए, पत्थर मारने वाले मिल गए। महावीर को गांव-गांव से खदेड़कर बाहर निकालने वाले मिल गए। लेकिन महावीर यही कहते रहे, वैरं मज्झ न केवई--मेरी किसी से कोई शत्रुता नहीं। उनकी होगी, उनका हिसाब वे जानें।
अभी कुछ दिन पहले मैं एक कहानी कह रहा था कि दो मनोवैज्ञानिक, एक ही मकान में उनका दफ्तर था, रोज सुबह आते, लिफ्ट में सवार होते, अक्सर साथ-साथ सवार होते। वह जो लिफ्ट को चलाने वाला सेवक था, वह बड़ा हैरान था। जब भी वे दोनों साथ-साथ जाते तो पहले एक मनोवैज्ञानिक उतरता, दसवीं- बारहवीं मंजिल पर कहीं। जब भी वह उतरता, दरवाजे से लौटकर दूसरे मनोवैज्ञानिक के ऊपर थूकता, चला जाता अपनी तरफ; और दूसरा चुपचाप अपना रूमाल निकालकर अपना मुंह पोंछ लेता, टाई पोंछ लेता, या कोट पर पड़ गया होता थूक, पोंछ लेता, रख लेता और अपना बस तैयारी करने लगता, क्योंकि पंद्रहवीं या बीसवीं मंजिल पर उसको उतरना था। आखिर उस लिफ्टमैन को और सम्हालना मुश्किल हो गया। एक दिन उसने कहा कि यह बात बहुत हुई जा रही है, यह मामला क्या है? यह आदमी क्यों आपके ऊपर थूकता है?
तो उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह उसकी समस्या है, उसी से पूछो। मेरा इसमें कोई हाथ ही नहीं है। यह समस्या उसकी है, उसी से पूछो। बेचारा! जरूर कोई न कोई पागलपन उसे सवार है। मेरा तो कुछ भी नहीं बिगड़ता। पोंछ लेता हूं। उसकी सोचो! असली तकलीफ वही पा रहा है। थूकने के पहले तकलीफ पाता होगा, थूकते वक्त तकलीफ पाता है, पीछे तकलीफ पाता होगा। क्योंकि समस्या उसकी है, वही कुछ कर रहा है। हम तो केवल दर्शक हैं।
अगर जीवन को ऐसे देखने की कला आ जाए तो फिर तुम्हें कोई दुख नहीं दे सकता। दूसरा देना भी चाहे तो यह उसकी समस्या है। और तुम इस भ्रांति में कभी मत पड़ना कि वैर से तुम दूसरों के वैर को मिटा दोगे। कभी कोई नहीं मिटा पाया। प्रेम से ही मिटता है वैर। करुणा से ही मिटता है क्रोध।
"इस संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होते, अवैर से ही होते हैं। यही सनातन नियम है।"
यह बुद्ध के धर्म की आधारशिला है।
और थोड़ा सोचो भी कि कौन तुम्हें सुख दे पाता है, कौन तुम्हें दुख दे पाता है! सब तुम्हारे मन का ही हिसाब है। अभी घड़ी भर पहले जो बात सुख देती थी, घड़ी भर बाद दुख देने लगती है। अभी जो बात दुख दे रही है, घड़ी भर बाद सुख दे सकती है। तुम्हारी व्याख्या! तुम कैसे उस बात को पकड़ते हो! क्या उस बात को रंग देते हो! क्या रूप देते हो! और अगर तुम्हें यह दिखायी पड़ जाए कि कोई दूसरा सुख नहीं दे सकता, तो दुख कैसे देगा? किसने तुम्हें कभी कोई सुख

दिया, याद है कुछ? किसने तुम्हें कभी कोई आनंद दिया, याद है कुछ? और जब किसी ने कोई सुख नहीं दिया, तो दुख कोई क्या देगा!
मैं एक गीत कल पढ़ता था। बात मूल्यवान लगी--
डरूं मैं किसलिए गुस्से से, प्यार में क्या था
मैं अब खिजां को जो रोऊं, बहार में क्या था
डरूं मैं किसलिए गुस्से से, प्यार में क्या था
जब दूसरे के प्यार से कुछ न मिला, तब उसके गुस्से से क्या परेशान होना है! जब प्यार ही कुछ न दे सका, तो गुस्सा क्या छीन लेगा?
मैं अब खिजां को जो रोऊं, बहार में क्या था
और अब पतझड़ आ गयी, सब वीरान हुआ जाता है--इसको रोऊं? लेकिन बहार में क्या था? जब बहार थी तब भी जब कुछ पास न था; जब बहार में भी कोई सुख न मिला, तो अब पतझार में दुख का क्या प्रयोजन है?
लेकिन आदमी बड़ा अजीब है! जिनसे तुम्हें सुख नहीं मिला, उनसे भी तुम दुख ले लेते हो। जिनके जीते-जी तुम्हें कभी कोई शांति नहीं मिली, उनके मरने पर तुम रोते हो।
मैं एक युगल को जानता हूं। जब तक पति जिंदा रहा, पति और पत्नी निरंतर कलह करते रहे। कभी-कभी मेरे पास आते थे। लेकिन सुलझाव कोई आसान न था। सब उलझाव सुलझ जाएं, पति-पत्नी के बड़े मुश्किल से सुलझते हैं, क्योंकि सुलझाना ही नहीं चाहते। शायद वही उनकी जिंदगी है, वही व्यस्तता है, वही कुल भराव है। वह भी चला जाए, तो फिर बड़ा खाली हो जाता है। कई बार तलाक देने की बात भी उठी, लेकिन उस पर भी राजी न हो पाते थे। फिर पति शराब पीने लगा। और शराब पीते-पीते मरा। जवान ही था, अभी कोई छत्तीस साल उम्र थी, ज्यादा नहीं थी। जब मर गया तो पत्नी मेरे पास आयी, छाती पीट-पीटकर रोने लगी। मैंने उससे कहा, अब तू रोना बंद कर। क्योंकि जिस आदमी के कारण तू कभी हंसी नहीं, उसके लिए रोना क्या? और मैं जानता हूं कि हजार बार तेरे मन में यह सवाल उठता रहा होगा कि यह आदमी मर ही जाए तो अच्छा! बोल, झूठ कहता हूं या सच? वह थोड़ी चौंकी। उसने कहा, आपको कैसे पता चला?
पता चलने की क्या बात है? कितनी बार तूने नहीं सोचा है कि यह आदमी मर
ही जाए तो झंझट मिटे। अब मर गया। आकांक्षा पूरी हो गयी। अब क्यों रोती है? जिससे तुझे सुख नहीं मिला, उससे दुखी होने का क्या प्रयोजन है?
लेकिन यही बड़े मजे की बात है। सुख लेने में तो तुम बड़े कंजूस हो, दुख लेने में तुम बड़े कुशल हो। सुख तो तुम बामुश्किल स्वीकार करते हो। दुख, तुम द्वार सजाकर खड़े हो सदा। स्वागतम! हाथ फैलाए खड़े हो सदा। तुम दुखी होना चाहते हो! दुखवादी हो! अन्यथा कोई कारण नहीं तुम्हारे दुखी होने का। जीवन को जो जानते हैं, वे पहचान लेते हैं कि न तो दूसरे से सुख मिलता है, न दुख मिलता है। न तो किसी के जीवन से तुम्हें जीवन मिलता है, न किसी की मौत से तुम्हें मौत मिलती है।
डरूं मैं किसलिए गुस्से से, प्यार में क्या था
मैं अब खिजां को जो रोऊं, बहार में क्या था
और जब तुम्हें दोनों बातें साफ दिखायी पड़ जाती हैं, तब जैसे एक उदघाटन
हो जाता है भीतर, एक बिजली कौंध जाती है कि यह मैं ही हूं, अपनी ही शकल देखता हूं, दूसरे तो केवल दर्पण हैं। अपने ही प्रतिबिंब, अपनी ही प्रतिध्वनि, अपनी ही परछाईं पकड़ता हूं, दूसरे तो केवल दर्पण हैं; घाटियां हैं, जिनमें अपनी ही आवाज गूंजकर लौट आती है।
इसे बुद्ध एस धम्मो सनंतनो कहते हैं, यही धर्म का सनातन सूत्र है। न परमात्मा, न मोक्ष, न वेद, न आत्मा--कोई भी धर्म के मूल आधार नहीं हैं। बुद्ध कहते हैं, एस धम्मो सनंतनो--यह छोटा सा सूत्र कि तुम्हारे दुख के कारण तुम हो, तुम्हारे सुख के कारण तुम हो; और दूसरे को दुख देने से तुम कभी सुख न पा सकोगे, दूसरे को सताने से कभी तुम उत्सव न मना सकोगे।
वैर से वैर शांत नहीं होता, अवैर से शांत हो जाता है। अवैर बरस जाए, वैर की अग्नि शांत हो जाती है। फिर हो या न हो शांत, यह कोई सवाल नहीं है; तुम्हारे लिए समाप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति को यह सूत्र समझ में आ गया,

उसके लिए नर्क नहीं है, वह यहीं इसी क्षण स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाता है।
उसका स्वर्ग कल नहीं है; उसका स्वर्ग अभी है।
"हम इस संसार में नहीं रहेंगे, सामान्यजन यह नहीं जानते। और जो इसे जानते हैं, उनके सारे कलह शांत हो जाते हैं।"
बड़ी थोड़ी देर का बसेरा है, रैन बसेरा! सुबह हुई और चल पड़ेंगे यात्री।
यह कारवां यहीं ठहरा न रहेगा। ये तंबू हैं, जिनको तुमने घर समझा है। ये अभी-अभी लगाए हैं, अभी-अभी उखाड़ने का वक्त आ जाएगा। और कितने कारवां तुमसे पहले निकल चुके हैं! उनके पदचिह्न भी नहीं रह गए। खो गए हैं बिल्कुल। दूर उनके पैरों की, घुड़सवारों की उड़ती धूल भी दिखायी नहीं पड़ती। सिकंदर की फौजों की उड़ती धूल भी अब दिखायी नहीं पड़ती।
यहां क्षणभर हम हैं। हम जैसे बहुत लोग पहले थे। वैज्ञानिक कहते हैं
कि एक-एक आदमी के नीचे कम से कम दस-दस आदमियों की लाशें गड़ी हैं। तुम जहां बैठे हो वहां दस आदमी मर चुके हैं। हर आदमी मरघट पर बैठा है, लाशों के ढेर पर बैठा है। कितनी देर तुम जिंदा रहोगे? थोड़ी देर, जल्दी तुम भी ग्यारहवीं लाश बन जाओगे और बारहवां आदमी तुम्हारे ऊपर बैठा होगा। कारवां की उड़ती धूल भी दिखायी नहीं पड़ती, कारवां खुद ही धूल हो गए।
इस संसार में सदा नहीं रहेंगे, ऐसा जिसको समझ में आ गया, उसी को इस संसार में रहने का ढंग आ गया। जिसको समझ में आ गया कि ओस की बूंद है, अब गिरी, तब गिरी; भोर की तरैया है, अब डूबी, तब डूबी। क्षणभर का खेल है। फिर क्या चिंता है? फिर किसको दुख देना है, किसको पीड़ा देनी है, किससे शत्रुता लेनी है? शत्रुता हम ले पाते हैं इसी आधार पर कि जैसे सदा रहना है।
तुम थोड़ा सोचो, अगर इसी वक्त खबर आ जाए कि आज सांझ तुम्हारी मौत हो जाएगी--पक्की खबर आ जाए--क्या तुम अपने दुश्मनों से क्षमा नहीं मांग आओगे? क्या तुम उनसे जिनको मिटाने को तत्पर थे, क्षमायाचना नहीं कर लोगे? क्या वैर समाप्त नहीं हो जाएगा? जाते आदमी का क्या, कौन सा वैर! किसकी शत्रुता! कैसी शत्रुता! जब विदा होने का क्षण आ जाएगा, तुम सभी से क्षमा मांग लोगे। लेकिन पक्का नहीं कि वह क्षण कब आएगा। अभी आ सकता है। लेकिन एक बात पक्की है कि कभी न कभी आएगा। ज्यादा देर नहीं है। जो कली खिल गयी, अब फूल के कुम्हलाने में ज्यादा समय नहीं है। सुबह हो गयी, सूरज चढ़ आया--सांझ को कितनी देर है? प्रतिपल सांझ हुई जाती है। सुबह के साथ ही सांझ हो गयी। जिसको ऐसा दिखायी पड़ जाता है, वह फिर इस जगत में वैर के बीज नहीं बोता। फिर वह कल्याणमित्र हो जाता है। फिर वह मैत्री बोता है। वह अपने चारों तरफ स्वर्ग की फसल काटता है।
"हम इस संसार में नहीं रहेंगे, सामान्यजन यह नहीं जानते हैं।"
ऐसे जीते हैं जैसे सदा यहां रहना है। उसी से सारी भूल हो जाती है।
"और जो इसे जानते हैं, उनके सारे कलह शांत हो जाते हैं।"
क्षणभंगुर है जीवन। आंख झपी, क्षणभर का सपना है जीवन। इस पर बहुत भरोसा मत कर लेना। इस पर तुमने जितना ज्यादा भरोसा किया, उतने ही भटक जाओगे। इसमें सो मत जाना। इसमें खो मत जाना। जागे रहना।
नींद स्वाभाविक लगती है, क्योंकि नींद सनातन की आदत हो गयी है। जागना कठिन मालूम पड़ता है, क्योंकि कभी जागे नहीं। लेकिन एक बार तुम जाग जाओगे, तो यह जीवन तो क्षणभंगुर हो जाएगा, महाजीवन के द्वार खुलेंगे। एक बार तुम जागकर देख लोगे तो तुम हंसोगे--क्या सपने देखते थे, जब कि सत्य के खजाने उपलब्ध थे!
लेकिन बुद्ध उन खजानों के संबंध में कुछ भी नहीं कहते। वे कहते हैं,
डर है। खजाने की बात भी तुम सुन लेते हो सपने में, तो तुम उसका भी सपना बना लेते हो, और नींद तुम अपनी गहरी कर लेते हो। इसलिए बुद्ध कहते हैं, वे उस संबंध में कुछ भी न कहेंगे। इतना ही कहेंगे कि तुम जहां हो, गलत हो।
इसलिए बुद्ध निषेधात्मक हैं, निगेटिव हैं। उनका धर्म नकार का है। वे ब्रह्म की बात नहीं करते, क्योंकि वह तो उसकी बात हो जाएगी जो खुली आंख से दिखायी पड़ता है। वे मोक्ष की बात नहीं करते, क्योंकि तुमसे क्या मोक्ष की बात करनी! तुम इतनी गहरी नींद में पड़े हो; तुमने संसार की ऐसी शराब पी ली है कि तुमसे क्या मोक्ष की बात करनी! शराब के नशे में तुम मोक्ष को सुनोगे भी,

तो भी कुछ और समझोगे। अनर्थ हो जाएगा। वे कहते हैं, इतना ही समझो कि तुम नाली में पड़े हो, बेहोश पड़े हो, जागो!
बुद्ध मेटाफिजिक्स, दर्शनशास्त्र की बात नहीं करते। बुद्ध चिकित्सक हैं। वे सिर्फ तुम्हारी बीमारी की बात करते हैं। और निदान उनका दुरुस्त है, शत-प्रतिशत सही है। इस निदान पर सोचना।
बुद्ध का धर्म भरोसे का नहीं है; गहन सोच-विचार, चिंतन-मनन, और उसी चिंतन-मनन और सोच-विचार से उठे हुए ध्यान का धर्म है। परमात्मा, आत्मा, मोक्ष--ये शब्द बुद्ध के लिए पराए हैं। बुद्ध तो तुम्हारे मन का खंड-खंड करेंगे। क्योंकि तुम्हारा मन ही एकमात्र सवाल है। अगर तुम उस मन से जाग गए, तो वह शेष सब तुम पा लोगे जो उपनिषदों ने कहा है, वेदों ने कहा है, कुरान ने कहा है, बाइबिल ने कहा है।
लेकिन बुद्ध उसको कहते नहीं, इस बात को स्मरण रखना। जो पाना है, वह पाकर ही जाना जाएगा। उसकी चर्चा व्यर्थ है। और उसकी चर्चा खतरनाक है। झेन फकीर हैं जापान में--बुद्ध को प्रेम करते हैं, सुबह-सांझ पूजा करते हैं--लेकिन वे कहते हैं, अगर बुद्ध का भी बहुत ज्यादा विचार मन में आने लगे और बुद्ध के प्रति भी बहुत ज्यादा लगाव बनने लगे, तो सावधान! कहीं नींद में नया सपना तो नहीं आ रहा है! झेन फकीर कहते हैं, अगर बुद्ध रास्ते पर मिल जाएं, उठाकर तलवार काट देना।
बोकोजू अपने गुरु के पास था। उसके गुरु ने कहा कि देख, अब वह खतरा करीब
आ रहा है जब बुद्ध तुझे रास्ते पर मिलेंगे। डरना मत। लगाव भी मत करना। राग मत लगाना। उठाकर तलवार काट देना; दो टुकड़े, खंड-खंड कर देना बुद्ध के। चाहे तोड़कर नमस्कार कर लेना, लेकिन पहले तोड़ देना।
बोकोजू ने कहा, लेकिन तलवार? कहां से तलवार लाऊंगा वहां? गुरु ने कहा, घबड़ा मत, जहां से बुद्ध को लाया--कल्पना का सब जाल है--वहीं से तलवार भी ले आना। उठाकर तलवार काट ही देना। कहीं ऐसा न हो कि बुद्ध का सपना आने लगे। बुद्ध ने सपने को कोई सहारा नहीं दिया। बुद्ध से बड़ा मूर्तिभंजक जगत में नहीं हुआ है। और बड़े विडंबना की बात है, बुद्ध से ज्यादा मूर्तियां किसी की नहीं हैं। और उनसे बड़ा मूर्तिभंजक कोई नहीं है!
उर्दू में शब्द है बुद्ध के लिए, बुत। बुत जो है, जिसका मतलब अब मूर्ति होता है, बुद्ध का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इतनी मूर्तियां बनीं बुद्ध की कि बुद्ध शब्द बुत होकर मूर्ति का ही पर्यायवाची हो गया। और इतना बड़ा मूर्तिभंजक कोई भी नहीं!
बुद्ध की तलवार तुम्हें काटेगी, तुम्हें खंड-खंड करेगी। तुम्हारी श्रद्धाओं, विश्वासों को, तुम्हारी मान्यताओं को तोड़ेगी, ताकि तुम ही बचो तुम्हारी शुद्धता में, तुम्हारी परिपूर्ण निर्दोषता में, तुम्हारे क्वांरेपन में। वही बच जाए जो काटा नहीं जा सकता; नैनं छिंदंति शस्त्राणि--जिसे छेदा नहीं जा सकता, जिसे जलाया नहीं जा सकता।
बुद्ध छेदेंगे और जलाएंगे, ताकि जो छेदा जा सकता है वह छिद जाए, जो जलाया जा सकता है वह जल जाए और फिर तुम बच जाओ तुम्हारी परिशुद्ध अवस्था में। वही वेदों का ब्रह्म है; महावीर का कैवल्य है; कपिल और कणाद का मोक्ष है; बुद्ध का वही निर्वाण है।
निर्वाण शब्द नकारात्मक है। निर्वाण का अर्थ होता है, दीए को फूंककर बुझा देना। एक दीया जल रहा है, अंधेरी रात है; तुमने फूंक मारी और दीया बुझ गया; फिर तुम यह नहीं पूछते कि यह ज्योति कहां गयी? बुद्ध कहते हैं, ऐसा ही निर्वाण है। मैं चाहूंगा कि तुम फूंक मारो और अपने को बुझा दो। और फिर मत पूछो कि कहां गए। खो गयी अनंत में, हो गयी एक "एक" के साथ! मगर पूछो मत कहां गयी! निराकार के साथ एक हो गयी। मगर पूछो मत! कहने में बात बिगड़ जाएगी। चुप्पी और चुप्पी में समझ लो।
ऐसे, बड़े गहन बुद्ध के विश्लेषण और निषेध में हम उतरेंगे। अगर तुम हिम्मतपूर्वक बुद्ध के विश्लेषण में उतर जाओ, तो बुद्ध तुम्हें परम स्वास्थ्य की दशा में ला सकते हैं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
दूसरा प्रवचन

अस्तित्व की विरलतम घटनाः सदगुरु

पहला प्रश्नः बुद्ध कहते हैं, वासना दुष्पूर है। उपनिषद कहते हैं, जिन्होंने भोगा उन्होंने ही त्यागा। आप कहते हैं, न भोगो न त्यागो वरन जागो। कृपया इन तीनों का अंतर्संबंध स्पष्ट करें।

अंतर्संबंध बिल्कुल स्पष्ट है।
बुद्ध कहते हैं, वासना दुष्पूर है। बुद्ध वासना का स्वभाव कह रहे हैं। कोई कितना ही भरना चाहे, भर न पाएगा। इसलिए नहीं कि भरने की सामर्थ्य कम थी। भरने की सामर्थ्य कितनी ही हो, तो भी न भर पाएगा। ऐसे ही जैसे पेंदी टूटे हुए बर्तन में कोई पानी भरता हो। इससे कोई सामर्थ्य का सवाल नहीं है, पेंदी ही नहीं है तो बर्तन दुष्पूर है। न सामर्थ्य का सवाल है, न सुविधा का, न संपन्नता का। गरीब की इच्छाएं भी अधूरी रह जाती हैं, अमीर की भी। दरिद्र की इच्छाएं भी अधूरी रह जाती हैं, सम्राटों की भी। सिकंदर भी उतना ही खाली हाथ मरता है जितना राह का भिखारी। दोनों के हाथ खाली होते हैं। क्योंकि, वासना दुष्पूर है। बुद्ध सिर्फ वासना का स्वभाव कह रहे हैं। उपनिषद कहते हैं, जिन्होंने भोगा उन्होंने ही त्यागा। अब जो भोगेंगे, वही वासना का स्वभाव समझ पाएंगे। दूसरे तो समझेंगे भी कैसे? वासना से दूर-दूर खड़े रहे, डरे रहे, भयभीत रहे, वासना में कभी उतरे ही नहीं, कभी वासना के उस पात्र को गौर से देखा नहीं, हाथ में न लिया जिसमें पेंदी नहीं है, तो वासना का स्वभाव कैसे समझोगे? वासना के स्वभाव के लिए वासना में उतरने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। जो उतरेगा, वही जानेगा। जो दूर खड़ा रहेगा, वंचित रह जाएगा। जो दूर खड़ा रहेगा, ललचाएगा। उसे पात्र तो दिखायी पड़ेगा, वह जो पेंदी नहीं है, वह दिखायी न पड़ेगी। और दूसरे के पात्रों में उसे यह भ्रांति रहेगी कि कौन जाने भर ही गए हों।
सिकंदर को बाहर से तुम देखोगे तो क्या तुम सोच पाओगे कि इसका पात्र भी खाली है? बड़े महल हैं। बड़ा साम्राज्य है। बड़ा धन-वैभव है। बड़ी शक्ति-संपदा है। कैसे तुम समझोगे? पात्र पर हीरे-जवाहरात जड़े हैं; पर पेंदी नहीं है। और हीरे-जवाहरातों से थोड़े ही पानी रुकेगा पात्र में। गरीब का पात्र टूटा- फूटा है, दो कौड़ी का है, एल्यूमिनियम का है। सिकंदर का पात्र स्वर्ण का है, हीरे-जवाहरात जड़े हैं, पर दोनों का स्वभाव एक सा है। दोनों में पेंदी नहीं है। दूर से तो पात्र दिखायी पड़ेगा। पास से ही देखना पड़ेगा। निरीक्षण भर-आंख करना पड़ेगा। उतरना पड़ेगा। जीना पड़ेगा। इसलिए उपनिषद कहते हैंः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्यागा।
बुद्ध कहते हैं वासना का स्वभाव। उपनिषद कहते हैं वासना को भोगने का परिणाम--जिन्होंने भोगा उन्होंने ही त्यागा। मैं कहता हूं, न भोगो न त्यागो, वरन जागो। क्योंकि भोगा तो बहुत ने, लेकिन उपनिषद का कोई इक्का- दुक्का ऋषि जान पाया--तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। भोगा बहुत ने, लेकिन सोए-सोए भोगा। सोए-सोए भोगोगे तो भी नहीं जान पाओगे। आंख बंद हों तो पात्र को भरते रहोगे, पेंदी का पता ही न चलेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में बड़ी प्राचीन घटना है। एक युवक उसके पास आया और उस युवक ने कहा, बड़ी दूर से आया हूं सुनकर खबर। सुगंध की चर्चा सुनकर आया हूं। बहुत गुरुओं के पास रहा, कुछ पा न सका। हताश होने के करीब था कि किसी ने तुम्हारी खबर दी है। और पक्का भरोसा लेकर आया हूं कि अब हाथ खाली न जाएंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, उस संबंध में पीछे बात कर लेंगे, श्रद्धा है? क्योंकि श्रद्धा हो तब ही तुम सत्य को सम्हाल सकोगे। मेरे पास सत्य है, पर तुम्हारे पास श्रद्धा है? उस खोजी ने कहा, परिपूर्ण श्रद्धा लेकर आया हूं। जो कहेंगे स्वीकार करूंगा। नसरुद्दीन ने कहा, अभी तो मैं कुएं पर पानी भरने जाता हूं, मेरे पीछे आओ। और एक ही बात की श्रद्धा रखना कि मैं जो

भी करूं शांति से निरीक्षण करना, प्रश्न मत उठाना। इतना होश रखना। उस युवा ने कहा, यह भी कोई परीक्षा हुई! गया पीछे-पीछे। यह कौन सी कठिनाई थी इसमें। नसरुद्दीन ने एक पात्र रखा घाट पर कुएं के। युवक थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि उसमें पेंदी न थी। नसरुद्दीन ने दूसरा पात्र कुएं में डाला, पानी भरा और पेंदी-शून्य पात्र में उंडेला। युवक ने कहा यह आदमी पागल है। सारा पानी बह गया और नसरुद्दीन ने तो देखा ही नहीं। उसने तो फिर कुएं में पात्र डाल दिया। फिर भरा। दो बार, तीन बार, चौथी बार युवक भूल गया कि यहां चुप रहना है। उसने कहा, रुकिए! यह तो ताजिंदगी न भरेगा। यह तो हम मर जाएंगे भर-भरकर तो भी न भरेगा, क्योंकि इसमें पेंदी नहीं है।
नसरुद्दीन ने कहा, बस खतम हो गया संबंध। कहा था, श्रद्धा रखना, चुप रहना। और पेंदी से हमें क्या लेना-देना? मुझे पात्र में पानी भरना है, पेंदी से क्या प्रयोजन? फिर मुझे जब पात्र में पानी भरना है तो मैं उसके ऊपर ध्यान रख रहा हूं कि जब सतह पर पानी आ जाएगा... । पेंदी से क्या प्रयोजन? उस युवक ने कहा, या तो आप पागल हो, और या मैंने अपनी बुद्धि गंवा दी।
नसरुद्दीन ने कहा, जाओ। दुबारा इस तरफ मत आना। क्योंकि असफल हो गए, चुप न रह सके। अभी तो और बड़े इम्तहान आने को थे।
वह युवक लौट तो गया लेकिन बड़ा परेशान हुआ। रातभर सो न सका। क्योंकि उसने सोचा कि इतनी सी बात तो किसी मूढ़ को भी दिखायी पड़ जाएगी। जरूर इस आदमी का कोई दूसरा ही प्रयोजन होगा, कोई परीक्षा थी। मुझे चुप खड़े रहना चाहिए था। मैं चूक गया। यह गुरु मिला तो अपने हाथ से चूक गया। मेरा क्या बिगड़ता था। अगर पानी न भरता था, तो उसका पात्र था। अगर श्रम व्यर्थ जाता था, तो उसका जाता था। मैं तो चुपचाप खड़ा रहता। आखिर कितनी देर यह चलता? मैंने जल्दी की। मैं चूक गया।
वह दूसरे दिन वापस आया। बहुत क्षमा मांगने लगा। नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, जितनी समझदारी तूने मुझे बतायी अगर इतनी ही समझदारी तू अपनी जिंदगी के प्रति बताए, तो मेरे पास आने की कोई जरूरत नहीं। जिस पात्र को तू भर रहा है, उसमें पेंदी है? उसने कहा, कौन सा पात्र? नसरुद्दीन ने कहा, फिर तू चूक गया, उतना ही इशारा था। तुझे दिखायी पड़ गया कि पात्र में पेंदी न हो तो भरा नहीं जा सकता। तूने इतने दिन से वासनाएं भरी हैं, कामनाएं भरी हैं--भरीं? अब तक नहीं भर पायीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि उनमें पेंदी नहीं?
लेकिन फुरसत कहां है हमें? कौन चिंता करता है पेंदी की? जब भरना है तो
हम भरने का विचार करते हैं। नहीं भर पाते तो सोचते हैं, दूसरे बाधा डाल रहे हैं। नहीं भर पाते तो सोचते हैं, श्रम जितना करना था उतना नहीं किया। भाग्य ने साथ न दिया। हजार कारण खोज लेते हैं। पर एक बात नहीं देखते, कहीं ऐसा तो नहीं कि वासना दुष्पूर है।
तो मैं कहता हूं, न भोगो न त्यागो, जागो। क्योंकि अगर भोगने में डूब गए, भूल गए, तो कौन जानेगा? कौन पहचानेगा वासना के स्वभाव को कि वासना दुष्पूर है? तुम भोगने में खो सकते हो बड़ी आसानी से। और फिर घबड़ाकर भाग भी सकते हो। बहुत दिन भरा और न भर पाया, फिर तुम भाग भी सकते हो त्याग की तरफ। लेकिन मूर्च्छित भोग, मूर्च्छित त्याग समानधर्मा हैं। उनमें कुछ भी भेद नहीं। मंदिर में बैठो कि मकान में, दुकान में बैठो कि हिमालय पर, कुछ अंतर नहीं है। अगर तुम मूर्च्छित हो, तो तुम वही हो। अंतर तो केवल एक है, क्रांति तो केवल एक है--मूर्च्छा से जागरण की।
इसलिए बुद्ध कहते हैं वासना का स्वभाव। उपनिषद कहते हैं वासना का अनुभव। और मैं तुम्हें दे रहा हूं सूत्र वासना को अनुभव करने का। ये तीनों जुड़े हैं। इनमें से तुम एक भी चूके तो भूल हो जाएगी। अगर तुमने इन तीन में से एक भी सूत्र को विस्मरण किया तो भटक जाओगे। फिर अगर विस्मरण ही करना हो, तीन सूत्र अगर ज्यादा मालूम पड़ते हों, तो मेरे अंतिम सूत्र को ही याद रखना। क्योंकि अगर अंतिम सूत्र याद रहा तो बाकी दो अपने से याद रह जाएंगे। वासना दुष्पूर है, ऐसा बुद्ध कहते हैं। ऐसा तुमने अभी जाना नहीं। भोग अंततः त्याग में ले जाता है, ऐसा उपनिषद कहते हैं। तुम्हें अभी ले नहीं गया। वासना में तुम इतने दिन जीए हो, बुद्ध से थोड़े ज्यादा ही जीए हो--

बुद्ध को तो पच्चीस सौ साल हो गए छुटकारा पाए--तुम पच्चीस सौ साल ज्यादा अनुभवी हो, फिर भी तुम्हें वासना दुष्पूर न दिखी। उपनिषद को तो लिखे पांच हजार साल हो गए। जिन्होंने भोगा उन्होंने त्याग दिया। और तुमने इतना भोगा और अभी तक न त्यागा। जरूर कोई चूक हो रही है। जागकर भोगो। भागने में मत पड़ना; अन्यथा मैं देखता हूं, तुम्हारे त्यागी, तुम्हारे महात्मा तुमसे जरा भी भिन्न नहीं। तुम अगर पैर के बल खड़े हो, वे सिर के बल खड़े हैं। मगर बिल्कुल तुम जैसे हैं। उलटे खड़े होने से कहीं कुछ होता है!
जिंदगी एक परीक्षण है। और जिंदगी एक निरीक्षण है। और जिंदगी प्रतिपल
एक जागरण है। परीक्षा घट रही है प्रतिपल। न जागोगे, चूकते चले जाओगे। और न जागने की आदत बन जाए, तो अनंत काल तक चूकते चले जाओगे। और बहुत से रास्ते में स्थान मिलेंगे, जहां लगेगा कि मिल गयी मंजिल, और बहुत बार विश्राम करने का मन हो जाएगा, लेकिन जब तक परमात्मा ही न मिल जाए, या जिसको बुद्ध निर्वाण कहते हैं वही न मिल जाए, तब तक रुकना मत। ठहर भले जाना, लेकिन ध्यान रखना कि कहीं घर मत बना लेना।
ता ब मंजिल रास्ते में मंजिलें थीं सैकड़ों
हर कदम पर एक मंजिल थी मगर मंजिल न थी
ता ब मंजिल--उस सत्य की यात्रा के मार्ग पर... ।
ता ब मंजिल रास्ते में मंजिलें थीं सैकड़ों
उस असली मंजिल के मार्ग पर बहुत सी मंजिलें मिलेंगी रास्ते में; कभी
धन की, कभी पद की, कभी प्रतिष्ठा की, यश की; अहंकार बहुत से खेल रचेगा।
हर कदम पर एक मंजिल थी मगर मंजिल न थी
और हर कदम पर मंजिल मिलेगी। लेकिन मंजिल इतनी सस्ती नहीं है। अगर बहुत होश रखा तो ही तुम इन मंजिलों से बचकर मंजिल तक पहुंच पाओगे। कठिन यात्रा है, दूभर मार्ग है। बड़ी चढ़ायी है। उत्तुंग शिखरों पर जाना है। घाटियों में रहने की आदत है। मूर्च्छित होना जीवन का स्वभाव हो गया है। होश कितना ही साधो, सधता नहीं। बेहोशी इतनी प्राचीन हो गयी है कि तुम होश का भी सपना देखने लगते हो बेहोशी में, जैसे कोई रात नींद में सपना देखे कि जाग गया हूं। सपना देखता है कि जाग गया। मगर यह जागना भी सपने में ही देखता है। ऐसे ही बहुत बार तुम्हें लगेगा, होश आ गया। लेकिन होश रखना--
ता ब मंजिल रास्ते में मंजिलें थीं सैकड़ों
हर कदम पर एक मंजिल थी मगर मंजिल न थी
कैसे पहचानोगे कि मंजिल आ गयी? कैसे पहचानोगे कि यह मंजिल मंजिल नहीं है?
एक कसौटी ख्याल रखना। अगर ऐसा लगे कि जो सामने अनुभव में आ रहा है, वह तुमसे अलग है, तो समझना कि अभी असली मंजिल नहीं आयी। प्रकाश दिखायी पड़े, अभी मंजिल नहीं आयी। कुंडलिनी जाग जाए, अभी मंजिल नहीं आयी। ये भी अनुभव हैं। ये भी शरीर के ही अनुभव हैं, मन के अनुभव हैं। परमात्मा सामने दिखायी पड़ने लगे, याद रखना मंजिल नहीं आयी। क्योंकि परमात्मा तो देखने वाले में छिपा है, कभी दिखायी नहीं पड़ेगा। जो दिखायी पड़ेगा वह तुम्हारा सपना है। इसको तुम सूत्र समझोः जो दिखायी पड़े, अनुभव में आए, वह सपना। जिस दिन कुछ दिखायी न पड़े, कुछ अनुभव में न आए; केवल तुम्हारा चैतन्य रह जाए, देखने वाला बचे; दृश्य खो जाएं, द्रष्टा बचे; दृश्य खो जाएं, कुछ दिखायी न पड़े, बस तुम रह जाओ; ना-कुछ तुम्हारे चारों तरफ हो--इसको बुद्ध ने निर्वाण कहा है-- शुद्ध चैतन्य रह जाए; दर्पण रह जाए, प्रतिबिंब कोई न बने; तब तुम भोग के बाहर गए। अन्यथा सभी अनुभव भोग हैं। कोई किसी पत्नी को भोग रहा है; कोई कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं, उनके दृश्य को भोग रहा है। सब भोग है। जहां तक दूसरा है, वहां तक भोग है। जब तुम बिल्कुल ही अकेले बचो, शुद्धतम कैवल्य रह जाए, होश मात्र बचे--किसका होश, ऐसा नहीं; चैतन्य मात्र बचे--किसकी चेतना, ऐसा नहीं; कुछ जानने को न हो, कुछ देखने को न हो, कुछ अनुभव करने को न हो--उस घड़ी आ गयी मंजिल।
और ये तीन सूत्र बहुमूल्य हैं। बुद्ध कहते हैं, वासना दुष्पूर है-- स्वभाव की ओर इंगित करते। उपनिषद कहते, जिन्होंने भोगा उन्होंने त्यागा-- परिणाम की ओर इंगित करते। मैं कहता हूं, न भोगो न त्यागो, जागो--मैं विधि

देता हूं कि कैसे तुम जानोगे कि बुद्ध ने जो कहा, सही है; कैसे तुम जानोगे कि उपनिषद ने जो कहा, सत्य है। तुम जानोगे तभी उपनिषद सच होंगे। तुम जानोगे तभी बुद्ध सच होंगे। तुम्हारे जानने के अतिरिक्त न तो बुद्ध सच हैं, न उपनिषद सच हैं। तुम्हारा बोध ही प्रमाण होगा बुद्ध की सचाई का। इसलिए बुद्ध ने कहा है--किसी ने पूछा कि हम कैसे तुम्हारा सम्मान करें, हम कैसे कृतज्ञता-ज्ञापन करें, इतना दिया है--बुद्ध ने कहा है, मैंने जो कहा है तुम उसके प्रमाण हो जाओ; मैंने जो कहा है तुम उसके गवाह हो जाओ, बस मेरा सम्मान हो गया। और कुछ धन्यवाद की जरूरत नहीं है।
तुम जिस दिन भी बुद्ध के गवाह हो जाओगे, जिस दिन तुम प्रमाण हो जाओगे
कि उपनिषद जो कहते हैं सही है, उसी दिन तुमने उपनिषद को जाना, उसी दिन तुमने बुद्ध को पहचाना। फर्क बहुत ज्यादा नहीं है बुद्ध में और तुममें। उपनिषद में और तुममें फर्क बहुत ज्यादा नहीं है। ऐसे बहुत ज्यादा मालूम होता है। ऐसे जरा भी ज्यादा नहीं है। फर्क बड़ा थोड़ा है। तुम सोए हो, बुद्ध जागे हैं। तुम आंख बंद किए हो, बुद्ध ने आंखें खोल ली हैं।
एक गीत कल मैं पढ़ रहा था--
लो हम बताएं गुंचा और गुल में है फर्क क्या
कली और फूल में फर्क क्या है?
लो हम बताएं गुंचा और गुल में है फर्क क्या
एक बात है कही हुई एक बेकही हुई
बस इतना ही फर्क है।
एक बात है कही हुई एक बेकही हुई
बुद्ध फूल हैं, तुम कली हो। उपनिषद खिल गए, तुम खिलने को हो। जरा सा फर्क है। ऐसे बहुत बड़ा फर्क भी है। क्योंकि उतने ही फर्क पर तो सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है। कली बस कली है। सिकुड़ी और बंद। मुर्झा भी सकती है। जरूरी नहीं है कि फूल बने। बन भी सकती है, चूक भी सकती है। और कली में कोई गंध थोड़े ही है। गंध तो तभी आती है फूल में, जब खिलता है। जब गंध बिखरती है, हवाएं ले जाती हैं उसके संदेश को दूर-दूर। अभी तुम बंद कली हो। गंध को सम्हाले हो अभी।
और जब तक बंटेगी न गंध तब तक तुम आनंदित न हो सकोगे। जब तक तुम लुटा न दोगे दोनों हाथों से, उलीच न दोगे अपनी गंध को जिसे तुम लिए चल रहे हो... । मेरे देखे मनुष्य की पीड़ा यही है। पीड़ा तुम जिसे कहते हो, वह पीड़ा नहीं है। कभी तुम कहते हो, पैर में कांटा लग गया, सिर में दर्द है, नौकरी नहीं मिली, पत्नी मर गयी--ये असली पीड़ाएं नहीं हैं। पत्नी न मरे, पैर में कांटा न लगे, सिर में दर्द न हो, तो भी पीड़ा रहेगी। पीड़ा एक है, और वह पीड़ा यह है कि जो तुम लेकर आए हो वह लुटा नहीं पाए अब तक। जो तुम सम्हाले चल रहे हो उसे बांट नहीं पाए। तुम एक ऐसे मेघ हो जो बरसना चाहता है और बरस नहीं पाता है। तुम एक फूल हो जो खिलना चाहता है और खिल नहीं पाता। तुम एक ज्योति हो जो जलना चाहती है और जल नहीं पाती। यही पीड़ा है। कांटे का लग जाना, सिर का दर्द, पत्नी का मर जाना, पति का न होना, बहाने हैं। इन बहानों की खूंटियों पर तुम असली पीड़ा को ढांककर अपने को धोखा दे लेते हो।
थोड़ा सोचो, कोई पीड़ा न रहे जिसको तुम पीड़ा कहते हो, क्या तुम आनंदित हो जाओगे? इतना क्या काफी होगा कि सिर में दर्द न हो? आनंदित होने के लिए क्या इतना काफी होगा कि कांटा न लगे? क्या इतना काफी होगा कि कोई बीमारी न आए? क्या इतना काफी होगा कि भोजन, वस्त्र, रहने की सुविधा हो जाए? क्या इतना काफी होगा कि प्रियजन मरें न? विज्ञान इसी चेष्टा में लगा है। क्योंकि विज्ञान ने सामान्य आदमी की पीड़ा को ही असली पीड़ा समझ लिया है।
इससे कोई भेद न पड़ेगा। वस्तुतः स्थिति उलटी है। जब तुम्हारी सामान्य पीड़ाएं सब मिटा दी जाएंगी, तब ही तुम्हें पहली दफा पता चलेगा उस महत पीड़ा का, असली पीड़ा का। क्योंकि तब बहाने भी न रह जाएंगे। तुम कहोगे सिर में दर्द भी नहीं, पैर में कांटा भी नहीं, पत्नी भी जिंदा है, मकान भी है, वस्त्र भी है, भोजन भी है, सब है। सब है, और कुछ खोया है। सब है, और कहीं कुछ रिक्त और खाली है।

इसलिए अमीर आदमी पहली दफा पीड़ित होता है। गरीब की पीड़ा तो हजार बहानों में छिप जाती है। वह कहता है, मकान होता तो सब ठीक हो जाता, मकान नहीं है। वर्षा में छप्पर में छेद हैं, पानी गिर रहा है, छप्पर ठीक होता तो सब ठीक हो जाता। उसे पता नहीं कि ठीक छप्पर बहुतों के हैं, कुछ भी ठीक नहीं हुआ है। उसके पास कम से कम एक बहाना तो है। अमीर के पास वह बहाना भी न रहा। उस हालत में अमीर और गरीब हो जाता है। उसके पास बहाना तक करने को नहीं है, कि वह किसी चीज पर अपनी पीड़ा को टांग दे और कह दे कि इसके कारण पीड़ा है। अकारण पीड़ा है।
उस अकारण पीड़ा से ही धर्म का जन्म है।
पीड़ा क्या है? पीड़ा ऐसी ही है जैसे कोई स्त्री गर्भवती हो, नौ महीने पूरे हो गए हों, और बच्चा पैदा न होता हो। बोझ हो गया। बच्चा पैदा होना चाहिए। कितने जन्मों से तुम परमात्मा को गर्भ में लिए चल रहे हो। वह पैदा नहीं हो रहा है, यही पीड़ा है। ठीक पीड़ा को पहचान लेना रास्ते पर अनिवार्य कदम है। जब तक तुम गलत चीजों को पीड़ा समझते रहोगे और उनको ठीक करने में लगे रहोगे, तभी तक तुम संसारी हो। जिस दिन तुम्हें ठीक पीड़ा समझ में आ जाएगी कि यह रही पीड़ा, हाथ पड़ जाएगा पीड़ा पर, तब तुम पाओगे कि पीड़ा यही है--
लो हम बताएं गुंचा और गुल में है फर्क क्या
एक बात है कही हुई एक बेकही हुई
जब तक तुम जिस गीत को अपने भीतर लिए चल रहे हो सदियों-सदियों से, जन्मों-जन्मों से, वह गीत गाया न जा सके; जिस नाच को तुम अपने पैरों में सम्हाले चल रहे हो, जब तक वह नाच घूंघर बांधकर नाच न उठे; तब तक तुम पीड़ित रहोगे। उस नाच को हमने परमात्मा कहा है। उस गीत के फूट जाने को हमने निर्वाण कहा है। उस फूल के खिल जाने को हमने कैवल्य कहा है।
तुम्हारी कली फूल बन जाए--मुक्ति, मोक्ष, मंजिल आ गयी।

दूसरा प्रश्नः बुद्ध विचार, विश्लेषण और बुद्धि को अपने धर्म का प्रारंभ-बिंदु बनाते हैं; तथा श्रद्धा, आस्था और विश्वास की मांग नहीं करते। फिर दीक्षा क्यों देते हैं? शिष्य क्यों बनाते हैं? बुद्ध, धम्म और संघ के शरणत्रय से साधना की शुरुआत क्यों करवाते हैं?

बुद्ध श्रद्धा के विरोधी नहीं हैं। बुद्ध से बड़ा श्रद्धा का कोई पक्षपाती नहीं हुआ। लेकिन बुद्ध श्रद्धा को थोपते नहीं, जन्माते हैं। दूसरों ने श्रद्धा थोपी है। दूसरे कहते हैं, श्रद्धा करो। अगर न किया तो पाप है। बुद्ध कहते हैं, विचार करो। अगर ठीक विचार किया, श्रद्धा आएगी। अपने से आएगी। बुद्ध तुम्हें चलाते हैं श्रद्धा की तरफ, दूसरे तुम्हें धकाते हैं। चलाने और धकाने में बड़ा फर्क है। बुद्ध तुम्हें फुसलाते हैं श्रद्धा की तरफ, दूसरे तुम्हें धमकाते हैं। वे कहते हैं, श्रद्धा न की, तो नर्क में सड़ोगे। श्रद्धा की, तो स्वर्ग में फल पाओगे। दूसरे तुम्हें लुभाते हैं या भयभीत करते हैं।
शब्द है हमारे पास ईश्वर-भीरु, गॉड फियरिंग। दूसरे धर्म डरवाते रहे हैं। वे कहते हैं, डरो ईश्वर से। छोटे-मोटे लोगों की बात छोड़ दें, महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति भी कहते हैं, मैं किसी और से नहीं डरता सिवाय ईश्वर को छोड़कर। पर डरते तो हो ही। इससे क्या फर्क पड़ता है कि ईश्वर से डरते हो? और बड़े मजे की बात है, संसार से डरते तो ठीक भी था; ईश्वर से डरते हो? ईश्वर से डरने का तो अर्थ हुआ कि आचरण जबर्दस्ती होगा। ईश्वर से डरने का तो कोई भी कारण नहीं है। संसार से भला डरो, क्योंकि यहां उपद्रवी हैं, सब तरह के दुष्ट हैं। शैतान से डरो, एक दफा समझ में आ जाए; परमात्मा से डरते हो? परमात्मा यानी प्रेम। प्रेम से कहीं डर का कोई संबंध बन सकता है? जहां प्रेम है वहां डर कैसा? और जहां डर है वहां प्रेम कैसा? भय के पास प्रेम की गंध नहीं उठ सकती। और प्रेम के पास भय की दुर्गंध नहीं आती।
लेकिन धर्मों ने लोगों को डरना सिखाया है कि डरो। लोगों को कंपा दिया है। बुद्ध ने लोगों को फुसलाया; धमकाया नहीं। बुद्ध ने कहा, सोचो। बुद्ध

ने कहा, विचार करो। बुद्ध ने कहा, जीवन को अनुभव करो, विश्लेषण करो। बुद्ध ने विज्ञान दिया, अंधविश्वास नहीं।
लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि बुद्ध ने श्रद्धा नहीं दी। बुद्ध ने ही श्रद्धा दी। ऐसे सोच-विचार जब तुम करने लगोगे, अचानक एक दिन तुम पाओगे श्रद्धा का पड़ाव आ गया। सोच-विचार की यात्रा से ही कोई श्रद्धा तक पहुंचता है।
इसे थोड़ा समझो, यह विरोधाभासी लगेगा।
बिना सोचे-विचारे तो कोई कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंचता; एक बात। दूसरी बात, सिर्फ सोच-विचार से भी कोई कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंचता। और तीसरी बात, सोच-विचार करते-करते एक घड़ी आती है, आदमी सोच-विचार के आगे चला जाता है। सोच-विचार के पहले श्रद्धा नहीं है। सोच-विचार के मध्य श्रद्धा नहीं है। लेकिन सोच-विचार के आगे चला जाता है। कब तक सोचोगे? सोचने की सीमा है। तुम्हारी सीमा नहीं है। जल्दी ही तुम पाओगे, सोचने का तो अंत आ गया, तुम अब भी हो। सोचना तो पिछड़ने लगा, तुम्हारे पैर आगे बढ़े जाते हैं।
बुद्ध वहीं ले जा रहे हैं। बुद्ध कहते हैं, घबड़ाओ मत, बुद्धि की तो सीमा है। डरो मत, तुम असीम हो। अगर तुम चले, तो जल्दी ही बुद्धि का चुकतारा आ जाएगा। जगह आ जाएगी जहां तख्ती लगी है कि यहां बुद्धि समाप्त होती है। तो बुद्ध कहते हैं, श्रद्धा दो तरह की हो सकती है। एकः बिना विचारे। विचार में गए बिना पहले ही स्वीकार कर ली। वह झूठी है। वह मिथ्या है। उसको ही हम अंध-श्रद्धा कहें। वह आंख वाले की नहीं है। और ऐसी श्रद्धा सदा कमजोर रहेगी। और ऐसी श्रद्धा कभी भी तोड़ी जा सकती है। कोई भी हिला देगा। कोई भी जीवन का तथ्य मिटा देगा ऐसी श्रद्धा को। दो कौड़ी की है, इसको कोई मूल्य मत देना। और इस श्रद्धा से तुम मुक्त न होओगे। इस श्रद्धा से तुम बंध जाओगे। यह जंजीर की तरह तुम्हें घेर लेगी। जिसको तुमने अपने अनुभव से नहीं पाया, उसे तुम अपनी संपदा मत समझना। यह अविचार की श्रद्धा है।
फिर विचार में चलो। तो तुम डरते हो विचार में चलने से, क्योंकि अक्सर लोग विचार में अटक जाते हैं। काफी नहीं चलते, दूर तक नहीं चलते, दो कदम चलते हैं और रुक जाते हैं। राह के किनारे झोपड़ा बना लेते हैं, वहीं ठहर जाते हैं, मंजिल तक नहीं पहुंचते। ये सब नास्तिक हो जाते हैं। इन नास्तिकों के कारण कुछ डर कर चलते ही नहीं।
बुद्ध कहते हैं, जिनको तुम आस्तिक कहते हो वे झूठे आस्तिक हैं, और जिनको तुम नास्तिक कहते हो वे झूठे नास्तिक हैं। क्योंकि नास्तिकता का निर्णय तभी लेना उचित है जब बुद्धि की सीमा तक पहुंच गए हो। उसके पहले निर्णय नहीं लिया जा सकता। जब तक पूरा जाना ही नहीं, पूरा सोचा ही नहीं, तो कैसे निर्णय लोगे? और जो भी बुद्धि की सीमा पर पहुंच जाता है, उसे एक अनुभव आता है--बुद्धि की तो सीमा आ गयी, अस्तित्व आगे भी फैला है। तब उसे पता चलता है कि बुद्धि के पार भी अस्तित्व है। बहुत है जो बुद्धि के पार भी है। और जो बुद्धि के पार है, उसे बुद्धि से कैसे पाओगे?
सुनो--
तेरी मंजिल पे पहुंचना कोई आसान न था
सरहदे-अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे
सरहदे-अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे
बुद्धि की सीमा के पार जब गए तब तुझ तक पहुंचे, परमात्मा तक पहुंचे।
तेरी मंजिल पे पहुंचना कोई आसान न था
जो चले ही नहीं और जिन्होंने श्रद्धा कर ली, वे तो कभी नहीं पहुंचे। उनका ईश्वर तो बस मान्यता का खिलौना है। उनका ईश्वर तो बस धारणा की बात है। वे तो भटका रहे हैं, भरमा रहे हैं अपने को। तुम्हारे मंदिर-मस्जिद तुम्हारी भ्रांतियां हैं, असली मंजिलें नहीं। पहुंचे तो वही, जो सरहदे- अक्ल से गुजरे।
तो बुद्ध ने कहा, आओ। डरकर मत आस्तिक बनो। और नास्तिकता से भयभीत मत होओ। नास्तिकता आस्तिकता की तरफ पहुंचने की अनिवार्य प्रक्रिया है। बुद्ध के पहले तक लोग सोचते थे, आस्तिक-नास्तिक विरोधी हैं। बुद्ध ने

नास्तिकता को आस्तिकता की प्रक्रिया बना दिया। इससे बड़ी कोई क्रांति घटित नहीं हुई है। बुद्ध ने कहा, नास्तिकता सीढ़ी है आस्तिकता की।
हां, सीढ़ी पर बैठ जाओ तो तुम्हारी भूल है। सीढ़ी का कोई कसूर नहीं। मैं तुमसे कहूं कि चढ़ो ऊपर, छत पर जाने की यह रही सीढ़ी; तुम सीढ़ी पर ही बैठ जाओ, तो तुम कहो यह सीढ़ी तो छत की दुश्मन है। लेकिन सीढ़ी ने तुम्हें नहीं पकड़ा है। सीढ़ी तो चढ़ाने को तैयार थी। सीढ़ी तो चढ़ाने को ही थी। सीढ़ी का और कोई प्रयोजन न था। लेकिन सीढ़ी को तुमने अवरोध बना लिया। तुम उसी को पकड़ कर बैठ गए।
नास्तिकता सीढ़ी है। और जो ठीक से नास्तिक नहीं हुआ, वह कभी ठीक से आस्तिक न हो सकेगा। इसे तुम सम्हालकर मन में रख लेना।
मेरे पास तो रोज लोग आते हैं। उनमें जो आदमी नास्तिकता से गुजरा है, उसकी शान और! उनमें जिस आदमी ने नास्तिकता की पीड़ा झेली है, संदेह को भोगा है, संदेह के कांटों में गुजरा है, इनकार जिसने किया है, उसके स्वीकार का मजा और! गरिमा और! जिसको ना कहने में डर लगता है, उसके हां की कितनी कीमत हो सकती है? उसकी हां नपुंसक है। जिसने कभी नहीं नहीं कहा, उसकी हां का भरोसा मत करना। वह हां कमजोर की हां है; बलशाली की नहीं।
बुद्ध ने लोगों को बलशाली की हां सिखायी। बुद्ध ने कहा ना कहो; डरो मत। क्योंकि ना कहना न सीखोगे तो हां कैसे कहोगे? हां आगे की मंजिल है। ना के पहले नहीं, ना के बाद है। कहो दिल खोलकर ना।
बुद्ध ने मनुष्य को पहली दफा धर्म की सबलता दी। उसके पहले धर्म निर्बल का था। लोग कहते हैं, निर्बल के बल राम। बुद्ध ने लोगों को सबलता दी, बल दिया; और कहा, डर है ही नहीं; क्योंकि राम तो है ही। इसलिए भय मत करो। तुम्हारे ना कहने से राम नहीं नहीं हो जाता। और तुम्हारे हां कहने से राम हो नहीं जाता। लेकिन तुम्हारे ना कहने से तुम होना शुरू होते हो। और जब तुम हो, तभी तो तुम हां कह सकोगे।
थोड़ा सोचो।
अगर तुम ना कहना जानते ही नहीं; या इतने डर गए हो, इतने पंगु हो गए हो
कि तुमसे इनकार निकलता ही नहीं, तो तुमसे स्वीकार क्या निकलेगा? स्वीकार तो इनकार से बड़ी घटना है। इनकार तक नहीं निकलता। तुम रेगिस्तान भी नहीं हो अभी नास्तिकता के, तो तुम आस्तिकता के मरूद्यान कैसे हो सकोगे? तुम अभी रूखी- सूखी नास्तिकता भी नहीं अपने में ला पाए, तो हरी-भरी, फूलों से सजी आस्तिकता कैसे ला पाओगे? आस्तिकता नास्तिकता के विपरीत नहीं है। आस्तिकता नास्तिकता के आगे है। आस्तिकता मंजिल है। नास्तिकता साधन है। इसलिए बुद्ध ने एक नयी कीमिया दी है मनुष्य-जाति को, जिसमें नास्तिकता का भी उपयोग हो सकता है। और इसे मैं कहता हूं, बहुत अनूठी घटना। जब तुम नहीं का भी उपयोग कर पाओ, जब तुम अपने अंधकार का भी उपयोग कर पाओ, अपने अस्वीकार का भी उपयोग कर पाओ, तभी तुम पूरे विकसित हो सकोगे। जब तुम्हारा अंधकार भी प्रकाश की तरफ जाने का साधन हो जाए; जब तुम अपने अंधकार को भी रूपांतरित कर लो, वह भी प्रकाश का ईंधन बन जाए; जब तुम अपने इनकार को भी अपनी स्वीकार की सेवा में रत कर दो, वह दास हो जाए; तुम्हारी नास्तिकता आस्तिकता के पैर दबाए, तभी।
बुद्ध ने विचार दिया, विश्लेषण दिया, बुद्धि को अपने धर्म का प्रारंभ-बिंदु कहा, अंत नहीं। इसलिए तुम घबड़ाओ मत, कि बुद्ध दीक्षा क्यों देते हैं? घबड़ाओ मत, कि बुद्ध शिष्य क्यों बनाते हैं? घबड़ाओ मत, कि बुद्ध धर्म, संघ और बुद्ध की शरण आने का निमंत्रण क्यों देते हैं?
लेकिन यह निमंत्रण वह उन्हीं को देते हैं जो नास्तिकता से पार हो गए हैं। यह हर किसी को नहीं देते। हर किसी को तो वह विचार देते हैं, विश्लेषण देते हैं। फिर जो विचार और विश्लेषण करते हैं, और जो अपने अनुभव से भी बुद्ध के गवाह हो जाते हैं और कहते हैं, ठीक कहते हो तुम। सोचकर भी हमने यही पाया कि सोचना व्यर्थ है। शास्त्रों में झांककर देखा कि शास्त्र बेकार हैं। ठीक कहते हो तुम कि धर्म परंपरा नहीं, विद्रोह है। हमने भी सोचकर देख लिया। लेकिन अब सोचना भी समाप्त होता है। अब आगे... ? अब तुम हमें आगे भी ले चलो। तब बुद्ध शिष्यत्व देते हैं। तब दीक्षा देते हैं। जो विचार

से गुजर आया, जो विचार से निकल आया, जो विचार के जाल के बाहर उठ आया, उसे बुद्ध दीक्षा देते हैं।
मुझसे लोग पूछते हैं कि अगर श्रद्धा से ही उसे पाना है, तो आप लोगों को इतना समझाते क्यों हैं?
समझाता हूं इसलिए कि पहले श्रद्धा को पाना है। श्रद्धा से उसको पाना है, जरूर; स्वीकार। लेकिन पहले श्रद्धा को पाना है। और श्रद्धा को तुम कैसे पाओगे? दो उपाय हैं। एक तो तुम्हें भयभीत कर दूं कि नर्क में, अग्नि में जलोगे, जलते कड़ाहों में, आग के उबलते कड़ाहों में डाले जाओगे। या तो तुम्हें भयभीत कर दूं। या प्रलोभित कर दूं कि स्वर्ग में अप्सराएं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं। अगर श्रद्धा की तो स्वर्ग, अश्रद्धा की तो नर्क। या तो तुम्हें इस तरह से जबर्दस्ती धकाऊं, जो कि गलत है। क्योंकि जिसने भय के कारण राम को जपा उसने जपा ही नहीं, भय को ही जपा। जो डर के कारण नैतिक बना, वह नैतिक बना ही नहीं। पुलिस वाले के डर से तुमने चोरी न की, यह भी कोई अचोर होना हुआ! नर्क के भय से तुमने बेईमानी न की, यह भी कोई ईमानदारी हुई! नर्क के कड़ाहों में जलाए जाओगे, इस भय से तुमने ब्रह्मचर्य धारण कर लिया, यह भी कोई कामवासना से मुक्ति हुई! यह तो कंडीशनिंग है। ये तो संस्कारित करने की तरकीबें हैं।
रूस में एक बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ, पावलफ। उसने तो... अब रूस तो नास्तिक मुल्क है, लेकिन पावलफ की बातें रूस के लोगों को भी जमीं। किसी ने यह बात खोजबीन नहीं की कि पावलफ जो कह रहा है वह तथाकथित धार्मिकों से भिन्न बात नहीं है। पावलफ ने कहा कि किसी को भी बदलना हो, तो समझाने-बुझाने की जरूरत नहीं है।
समझो कि एक आदमी सिगरेट पीता है। तो इसको समझाने की जरूरत नहीं है; और
न सिगरेट के पैकिट पर लिखने की जरूरत है कि सिगरेट पीना हानिकारक है। इससे कुछ भी न होगा। इससे सिगरेट न छूटेगी, सिर्फ हानि के प्रति वह अंधा हो जाएगा। रोज-रोज पैकिट पर पढ़ता रहेगा, तो हानि शब्द का जो परिणाम होना था वह भी न होगा। अगर इसको बदलना है, तो पावलफ ने कहा कि जब यह सिगरेट पीए, इसको बिजली का शॉक दो। शॉक इतना तेजी से लगे कि सिगरेट के पीने में जो रस आता है, उससे ज्यादा पीड़ा शॉक की हो। रस कुछ आता भी नहीं। सिर्फ धुआं बाहर-भीतर लाने ले जाने में रस आ भी कैसे सकता है! भ्रांति है। असली बिजली का शॉक भ्रांति को तोड़ देगा। और ऐसा रोज करते रहो; एक-दो सप्ताह तक। और तब यह आदमी हाथ में सिगरेट उठाएगा और हाथ कंपने लगेगा। क्योंकि जैसे ही सिगरेट की याद आएगी, भीतर याद शॉक की भी आएगी। कंडीशनिंग हो गयी। अब इसकी सिगरेट हाथ से छूट जाएगी। समझाने की जरूरत नहीं है कि सिगरेट बुरी है। कितने दिन से समझा रहे हैं लोग! कोई नहीं सुनता।
लेकिन पावलफ ने जो कहा, यह बहुत भिन्न नहीं है। यही तो पुराने धर्मगुरु करते रहे। बचपन से ही समझाया जाए कि नर्क में कड़ाहा जल रहा है-- मंदिरों में चित्र लटकाए जाएं, लपटों का विवरण किया जाए--कड़ाहों में फेंककर जलाए जाओगे, सड़ाए जाओगे, कीड़े-मकोड़े छेद करेंगे तुम्हारे शरीर में और भागेंगे, दौड़ लगाएंगे, और मरोगे भी नहीं। सामने पानी होगा, कंठ प्यास से भरा होगा, पी न सकोगे। और अनंतकालीन यातना झेलनी पड़ेगी। और पाप क्या हैं तुम्हारे? छोटे-मोटे, कि सिगरेट अगर पी। सिगरेट पीने के लिए इतना भारी उपाय! घबड़ा जाए आदमी!
छोटे बचपन से अगर यह बात मन पर डाली जाए तो स्वभावतः भय पकड़ लेगा। यह सिगरेट न पीएगा। लेकिन यह कोई चरित्र हुआ? तुमने चरित्र तो इसका नष्ट कर दिया सदा के लिए। चरित्र तो बल पर खड़ा होता है। चरित्र तो समझ पर खड़ा होता है। तुमने भय का जहर भर दिया। तुमने तो इसको मार डाला। अब यह जीएगा कभी भी नहीं।
और इसी तरह स्वर्ग का प्रलोभन दिया हुआ है। वहां बड़े सुख। तुम कर रहे
हो दो कौड़ी के काम, लेकिन बड़े सुख की आशा कर रहे हो। एक भिखमंगे को एक पैसा दे आए, अब तुम हिसाब लगा रहे हो कि स्वर्ग जाओगे। कि कहीं धर्मशाला बनवा दी, कि कहीं मंदिर बनवा दिया, अब तुम सोच रहे हो कि बस भगवान पर तुमने बहुत एहसान किया; अब तुम स्वर्ग जाने वाले हो।

मैंने सुना है कि एक धर्मगुरु स्वर्ग जाने की टिकटें बेचता था--सभी धर्मगुरु बेचते हैं। स्वभावतः, कुछ अमीर खरीदते तो प्रथम श्रेणी की देता। गरीब खरीदते, द्वितीय श्रेणी के। तृतीय श्रेणी भी थी, और जनता--चौथी श्रेणी भी थी। सभी लोगों के लिए इंतजाम स्वर्ग में होना भी चाहिए। तरह-तरह के लोग हैं, तरह-तरह की सुविधाएं होनी चाहिए। काफी धन उसने इकट्ठा कर लिया था लोगों को डरा-डराकर नर्क के भय से। लोग खाना न खाते, पैसा इकट्ठा करते कि टिकट खरीदनी है।
यही कर रहे हैं लोग। खाना नहीं खाते, मैं देखता हूं, तीर्थयात्रा को जाते हैं। कपड़ा नहीं पहनते, मंदिर में दान दे आते हैं। खुद भूखों मरते हैं, ब्राह्मण को भोजन कराते हैं। सदियों से डरवाया है ब्राह्मण ने कि हम ब्रह्म के सगे-रिश्तेदार हैं। भाई-भतीजावाद! अपना नाता करीब का है, करवा देंगे तुम्हारा इंतजाम भी। खुद खाओगे, कोई पुण्य न होगा। ब्राह्मण को खिलाओगे, पुण्य होगा। लोग भूखों मरते हैं, पंडे-पुरोहितों को देते हैं। उस धर्मगुरु ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया। एक रात एक आदमी उसकी छाती पर
चढ़ गया जाकर, छुरा लेकर। और उसने कहा, निकाल, सब रख दे! उसने गौर से देखा, वह उसकी ही जाति का आदमी था। उसने कहा, अरे! तुझे पता है, नर्क में सड़ेगा। उसने कहा, छोड़ फिकर, पहली श्रेणी का टिकट पहले ही खरीद लिया है, सब निकाल पैसा। तुमसे ही खरीदा है टिकट। वह हम पहले ही खरीद लिए हैं, उसकी तो फिकर ही छोड़ो। अब नर्क से तुम हमें न डरवा सकोगे। वे कोई और होंगे जिनको तुम डरवाओगे। हम टिकट पहले ही ले लिए हैं; अब तुम सब पैसा जो तुम्हारे पास इकट्ठा किया है तिजोड़ी में, दे दो।
लोग यही कर रहे हैं। इसको तुम चरित्र कहते हो! भय पर खड़े, लोभ पर खड़े व्यक्तित्व को तुम चरित्र कहते हो! यह चरित्र का धोखा है।
बुद्ध ने यह धोखा नहीं दिया। बुद्ध ने कहा, समझ, सोच-विचार, चिंतन, मनन। और धीरे-धीरे तुम्हें उस जगह ले आना है, जहां से पार दिखायी पड़ना शुरू होता है। जहां अतिक्रमण होता है। जहां तुम आ जाते हो किनारे अपने सोचने के और देखते हो उसे जो सोचा नहीं जा सकता। जहां रहस्य तुम्हें आच्छादित कर लेता है और विचार अपने से गिर जाते हैं। जहां विराट तुम्हारे करीब आता है और तुम्हारी छोटी खोपड़ी चक्कर खाकर ठहर जाती है। अवाक।
बुद्ध ने कहा, श्रद्धा थोपेंगे नहीं। श्रद्धा तक तुम्हारी यात्रा करवाएंगे। इसलिए दीक्षा बुद्ध ने दी और श्रद्धा की बात भी नहीं की। यही तो उनकी कला है। और जितनी दीक्षा उन्होंने दी, किसने दी? जितने लोगों को उन्होंने संन्यास के अमृत का स्वाद चखाया, किसने चखाया? जितनी श्रद्धा बुद्ध इस पृथ्वी पर उतारकर लाए, कभी कोई नहीं ला सका था। और आदमी ने बात भी न की श्रद्धा की। यही उनकी कला है। यही उनकी खूबी है। यही उनकी विशिष्टता है। दूसरे सिर पीट-पीटकर मर गए, श्रद्धा करो, विश्वास करो, और कूड़ा-करकट दे गए लोगों को। बुद्ध ने व्यर्थ की बातें न कीं। बुद्ध ने, जीवन में जो भी था, सभी का सीढ़ी की तरह उपयोग कर लिया। तर्क है, तो उपयोग करना है। छोड़कर कहां जाओगे? सीढ़ी बना लो। संदेह है, घबड़ाओ मत। इसकी भी सीढ़ी बना लेंगे, डर क्या है? इस पर भी चढ़ जाएंगे। तर्क के कंधे पर खड़े होंगे, संदेह के सिर पर खड़े होंगे, और पार देखेंगे।
और जब पार का दिखायी पड़ता है, तो श्रद्धा उतरती है।
श्रद्धा उस पार के अनुभव का अनुसंग है। उसकी छाया है। जैसे गाड़ी के बैलों के पीछे चाक चले आते हैं। जैसे तुम भागते हो, तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया भागती चली आती है। जिसको दिखायी पड़ गया विराट, एक झलक भी मिल गयी उसकी; जरा सी देर को हटे बादल और सूरज दिखायी पड़ गया, एक झलक ही सही; अंधेरी रात में चमकी बिजली, एक झलक दिखायी पड़ गयी कि राह है, और दूर खड़े मंजिल के कलश झलक गए--बस, श्रद्धा उत्पन्न हुई। इस श्रद्धा की महिमा और! इस श्रद्धा को तुम अपनी श्रद्धा मत समझना। इस श्रद्धा को तुम अपनी कमजोर नपुंसक धारणाएं मत समझना। यह श्रद्धा अर्जित करनी होती है।
बुद्ध ने कहा, कोई व्यक्ति पैदा होते से श्रद्धा लेकर नहीं आता। संदेह ही लेकर आता है। हर बच्चा संदेह लेकर आता है। इसलिए तो बच्चे इतने प्रश्न पूछते हैं, जितने बूढ़े भी नहीं पूछते। बच्चा हर चीज से प्रश्न बना

लेता है। स्वाभाविक है। पूछना ही पड़ेगा। क्योंकि पूछ-पूछकर ही तो वहां पहुंचेंगे जहां अनुभव होगा और सब पूछना गिर जाता है, सब जिज्ञासा गिर जाती है।
मुझसे लोग कहते हैं, आप क्यों इतना समझाते हैं जब श्रद्धा से पहुंचना है?
समझाता हूं ताकि श्रद्धा तक पहुंचना हो जाए। फिर तो तुम खुद ही चल लोगे। श्रद्धा काफी है। फिर मेरी जरूरत न होगी। श्रद्धा तक तुम्हें फुसलाकर ले आऊं, फिर तो मार्ग सुगम है। फिर तो तुम खुद ही चल लोगे, फिर तो तुम्हारी श्रद्धा ही खींच लेगी। फिर तो श्रद्धा का चुंबक काफी है।

तीसरा प्रश्नः बुद्ध सब गुरुओं से हताश ही हुए। क्या उन्हें कोई सिद्ध सदगुरु न मिला?

सिद्ध सदगुरु इतने आसान नहीं। रोज-रोज नहीं होते। जगह-जगह नहीं मिलते। हजारों वर्ष बीत जाते हैं, तब कभी कोई एक सिद्ध सदगुरु होता है। तो यह सवाल तुम्हारे मन में इसलिए उठता है कि तुम सोचते हो, सिद्ध सदगुरु तो गांव-गांव बैठे हुए हैं। सदगुरु बनकर बैठ जाना एक बात है। बाजार में दुकान खोलकर बैठ जाना एक बात है। और यह मामला कुछ ऐसा है परमात्मा का, अदृश्य का मामला है! इसलिए पकड़ना भी बहुत मुश्किल है।
मैंने सुना है कि अमरीका में एक दुकान पर अदृश्य हेअर पिन बिकते थे। अदृश्य! तो स्त्रियां तो ऐसी चीजों में बड़ी उत्सुक होती हैं। अदृश्य हेअर पिन! दिखायी भी न पड़े, और बालों में लगा भी रहे। बड़ी भीड़ लगती थी, क्यू लगता था। एक दिन एक औरत पहुंची। उसने डब्बा खोलकर देखा, उसमें कुछ था तो है नहीं। क्योंकि अदृश्य तो कुछ दिखायी पड़ता ही नहीं। उसने कहा, इसमें हैं भी? उसने कहा, यह तो अदृश्य हेअर पिन हैं। ये दिखायी थोड़े ही पड़ते हैं। थोड़ा संदेह उसे उठा। उसने कहा कि अदृश्य! माना कि अदृश्य हैं, उनको ही लेने आयी हूं, लेकिन पक्का इसमें हैं? और ये किसी को दिखायी भी नहीं पड़ते। उस दुकानदार ने कहा कि तू मान न मान, आज महीने भर से तो स्टॉक में ही नहीं हैं, फिर भी बिक रहे हैं। अब ये अदृश्य हेअर पिन की कोई स्टॉक में होने की जरूरत थोड़े ही है। और महीने के पहले भी बिकते रहे, स्टॉक में होने की जरूरत कहां है?
यह धंधा कुछ अदृश्य का है। इसमें जरा कठिनाई है। क्योंकि तुम पकड़ नहीं सकते कि कौन बेच रहा है, कौन नहीं बेच रहा है। किसके पास है, किसके पास नहीं है। बड़ा कठिन है। यह खेल बहुत उलझा हुआ है। और इसलिए इसमें आसानी से गुरु बनकर बैठ जाना जरा भी अड़चन नहीं है। कोई और तरह की दुकान खोलो तो सामान बेचना पड़ता है। कोई और तरह का धंधा करो तो पकड़े जाने की कोई न कोई सुविधा है। कहीं न कहीं से कोई न कोई झंझट आ जाएगी। कितना ही धोखा दो, कितना ही कुशलता से दो, पकड़ जाओगे। लेकिन परमात्मा बेचो, कौन पकड़ेगा? कैसे पकड़ेगा? सदियां बीत जाती हैं बिना स्टॉक के बिकता है।
तो तुम इससे परेशान मत होओ कि बुद्ध इतने गुरुओं के पास गए और सदगुरु
न मिले। यह स्वामी योग चिन्मय का प्रश्न है। चिन्मय को यही ख्याल है कि ऐसे सदगुरु हर कहीं बैठे हैं। जहां गए वहीं सदगुरु मिल जाएंगे। बहुत कठिन है। सौभाग्य है कि कभी कोई सदगुरु के पास पहुंच जाए। कैसे पहचानोगे? एक ही उपाय है पहचानने का, और वह यह है कि जो गुरु कहता हो--वह सदगुरु है या नहीं, इसकी फिक्र छोड़ो--जो वह कहता हो उसे करना। अगर सदगुरु है, तो जो उसने कहा है उसे करने से तुम्हारे भीतर कुछ होना शुरू हो जाएगा। अगर सदगुरु नहीं है, तो उसके भीतर ही नहीं हुआ है, तुम्हारे भीतर कैसे हो जाएगा?
लेकिन सदगुरु तो कभी-कभी होते हैं। पर सदगुरु की तलाश तो सदा होती है। इसलिए झूठों को बैठने का अवसर मिल जाता है। और चूंकि तुम कभी करते ही नहीं कुछ, तुम सिर्फ सुनते हो, इसलिए तुम्हें धोखा दिया जा सकता है। तुम कुछ करोगे, तो ही तुम्हें धोखा नहीं दिया जा सकता। मेरी ऐसी समझ है कि चूंकि तुम धोखा देना चाहते हो, इसलिए तुम्हें धोखा दिया जा सकता है। तुम कुछ करना तो चाहते नहीं। तुम चाहते हो कि कोई कृपा से हो जाए किसी की।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि जब आपके पास आ गए तो अब क्या ध्यान करना? आपकी कृपा से! वे मुझ ही को धोखा दे रहे हैं। वे मुझ ही को तरकीब बता रहे हैं, कि अब आपके पास आ गए तो अब क्या ध्यान करना? यह और करें, हम तो श्रद्धा करते हैं। इतनी भी श्रद्धा नहीं है कि मैं जो कहूं वह करें, और श्रद्धा करते हैं! क्योंकि मुझ पर तुम्हारी श्रद्धा और कैसे प्रकट होगी? जो मैं कहता हूं, वह करो।
तो तुम करते नहीं हो, इसलिए झूठे गुरु भी चलते जाते हैं। तुम करो, तो तुम्हारा करना ही प्रमाण हो जाएगा। उस आदमी को बार-बार दिखायी पड़ने लगेगा कि कुछ भी नहीं हो रहा है, किसी को कुछ भी नहीं हो रहा है। और लोग जाने लगे हैं। अपने आप बाजार उजड़ जाएगा।
बुद्ध ने यही किया। वह गए तो, लेकिन जिसके पास भी गए, जो भी उसने कहा, वही किया। कुछ ने तो ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें कहीं उनसे--वह भी उन्होंने कीं-- कि कहने वालों को भी दया आने लगी कि यह हम क्या करवा रहे हैं! किसी ने कहा कि बस एक चावल का दाना रोज। इतना ही भोजन लेना। अब मूढ़तापूर्ण बातें हैं। लेकिन बुद्ध ने वह भी किया। कहते हैं, उनकी हड्डियां-हड्डियां निकल आयीं। उनका पेट पीठ से लग गया। चमड़ी ऐसी हो गयी कि छुओ तो उखड़ जाए शरीर से। तब उस गुरु को भी दया आने लगी। कितना ही धोखेबाज रहा हो, अब यह जरा अतिशय हो गयी। उसने हाथ जोड़े, और उसने कहा कि तुम कहीं और जाओ। जो मैं जानता था मैंने बता दिया। इससे ज्यादा मुझे कुछ पता नहीं है।
ऐसे बुद्ध की निष्ठा ने ही--उनकी अपनी निष्ठा ने ही--कसौटी का काम किया। भटकते रहे, सबको जांच लिया, कहीं कुछ पाया नहीं। तब अकेले की यात्रा पर गए। और यह भी सोच लेने जैसा है कि तुम अक्सर चूंकि करना नहीं चाहते, इसलिए जल्दी मानना चाहते हो। तुम्हारी मानने की जल्दी भी करने से बचने की तरकीब है।
जीवन में प्रत्येक चीज अर्जित करनी होती है। श्रद्धा भी इतनी आसान नहीं है, कि तुमने कर ली और हो गयी। संघर्ष करना होगा। तपाना पड़ेगा। स्वयं को जलाना पड़ेगा। धीरे-धीरे निखरेगा तुम्हारा कुंदन। गुजरेगा आग से स्वर्ण, शुद्ध होगा। तभी तुम्हारे भीतर श्रद्धा का आविर्भाव होगा। और सदगुरु गली-कूचे नहीं बैठे हुए हैं। कभी हजारों वर्ष में एक सिद्ध सदगुरु होता है। सदियां बीत जाती हैं खोजियों को खोजते-खोजते।
इसलिए अगर कभी तुम्हें किसी सदगुरु की भनक पड़ जाए तो सौभाग्य समझना! अहोभाग्य समझना!!

चौथा प्रश्नः भगवान बुद्ध ने अवैर के स्थान पर प्रेम शब्द का व्यवहार क्यों नहीं किया?

जान कर। अवैर नकारात्मक है, अहिंसा जैसा। बुद्ध कहते हैं, वैर छोड़ दो,
तो जो शेष रह जाता है वही प्रेम है। बुद्ध प्रेम करने को नहीं कहते। क्योंकि जो प्रेम किया जाता है, वह प्रेम नहीं।
तुम चिकित्सक के पास जाते हो। वह निदान करता है बीमारी का, वह औषधि देता है बीमारी मिटा देने को। जब बीमारी हट जाती है, तो जो शेष रह जाता है वही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य की अलग से चर्चा करनी फिजूल है। और खतरा भी है। क्योंकि तुमसे अगर यह कहा जाए कि प्रेम करो, तो तुम वैर तो न छोड़ोगे, प्रेम करना शुरू करोगे। क्योंकि करना तुम्हें सदा आसान मालूम पड़ता है, क्योंकि करना अहंकार को तृप्ति देता है। तुम प्रेम करना शुरू करोगे। वैर तो न छोड़ोगे, प्रेम करोगे। तो ऐसा हो सकता है कि तुम वैर को प्रेम में ढांक दो। वैर तो बना रहे और प्रेम के आवरण में ढांक दो। तब तुम्हारा प्रेम भी झूठा होगा। क्योंकि वैर के ऊपर प्रेम कैसे खड़ा हो सकता है?
तुमने बहुत बार प्रेम किया है। तुम जानते हो भलीभांति, तुम्हारे प्रेम से घृणा मिटती नहीं। दब जाती हो भला। राख में दब जाता हो अंगारा, मिटता नहीं। तुम प्रेम भी करते हो उसी को, घृणा भी करते हो उसी को। सांझ उसके गीत गाते हो, सुबह गालियां देते हो उसी को। अभी उसके लिए मरने को तैयार थे, क्षणभर बाद उसी को मारने को तैयार हो जाते हो। यह तुम्हारा

प्रेम बुद्ध भलीभांति जानते हैं। यह प्रेम घृणा को मिटाता नहीं, घृणा को सजा भला देता हो। आभूषण पहना देता हो, घृणा को सुंदर बना देता हो, जहर पर अमृत का लेबल लगा देता हो, लेकिन मिटाता नहीं।
इसलिए बुद्ध ने प्रेम की बात ही नहीं की। बुद्ध ने कहा, अवैर। तुम वैर छोड़ दो। तुम घृणा छोड़ दो। फिर जो शेष रह जाएगा, वही प्रेम है। और इस प्रेम का गुण-धर्म अलग है। तुम जो प्रेम करते हो, वह भी कृत्य है। बुद्ध जिस प्रेम की बात कर रहे हैं, वह कृत्य नहीं है। ना ही कोई संबंध है। वह तुम्हारा स्वभाव है।
अभी तुम कहते हो, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। तुम्हारे हाथ में है।
चाहो तो करो, चाहो तो अलग कर लो। कल कह दो कि नहीं करता।
लेकिन जिसके जीवन से वैर चला गया, वह ऐसा नहीं कह सकता कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, और अलग कर लेता हूं। वह तो ऐसे ही कहेगा, मैं प्रेम हूं।
तुम चाहे भला करो, चाहे बुरा करो, मैं प्रेम हूं। यह प्रेम मेरा स्वभाव है।
तुम मुझे मारो तो, तुम मेरी सेवा करो तो। तुम आदर करो, अनादर करो। तुम्हारा कृत्य अब अर्थ नहीं रखता। मेरे प्रेम में कोई अंतर न पड़ेगा।
एक आदमी ने बुद्ध के मुंह पर थूक दिया। उन्होंने अपनी चादर से थूक पोंछ लिया। और उस आदमी से कहा, कुछ और कहना है? क्योंकि बुद्ध ने कहा, यह भी तेरा कुछ कहना है, वह मैं समझ गया; कुछ और कहना है? आनंद तो बहुत क्रोधित हो गया, उनका शिष्य। वह कहने लगा, यह सीमा के बाहर बात हो गयी। आप पर, और कोई थूक दे, और हम बैठे देखते रहें? जान लेने-देने का सवाल हो गया। आप आज्ञा दें, मैं इस आदमी को ठीक करूं। क्षत्रिय था आनंद। बुद्ध का चचेरा भाई था। योद्धा रह चुका था। उसकी भुजाएं फड़क उठीं। उसने कहा कि हो गया बहुत। वह भूल ही गया कि हम भिक्षु हैं, संन्यासी हैं।
बुद्ध ने कहा कि उसने जो किया वह क्षम्य है। तू जो कर रहा है वह और भी खतरनाक है। उसने कुछ किया नहीं है, सिर्फ कहा है। तुझे समझ नहीं आता है आनंद, कभी ऐसी घड़ियां होती हैं जब तुम कुछ कहना चाहते हो, लेकिन कह नहीं सकते, शब्द छोटे पड़ जाते हैं। किसी को हम गले लगा लेते हैं। कहना चाहते थे, लेकिन इतना ही कहने से कुछ काम न चलता कि मुझे बहुत प्रेम है--बहुत साधारण मालूम होता है--गले लगा लेते हैं। गले लगाकर कहते हैं। इस आदमी को क्रोध था, यह गाली देना चाहता था, लेकिन गाली इसको कोई मजबूत न मिली। इसने थूककर कहा। बात समझ में आ गयी। हम समझ गए इसने क्या कहा। अब इसमें झगड़े की क्या बात है? इससे हम पूछते हैं, आगे और क्या कहना है?
वह आदमी शर्मिंदा हुआ। वह बुद्ध के चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा, मुझे क्षमा कर दें। मैं बड़ा अपराधी हूं। और आज तक तो आपका प्रेम मुझ पर था, अब मैंने अपने हाथ से प्रेम गंवा दिया।
बुद्ध ने कहा, तू उसकी फिकर मत कर, क्योंकि मैं तुझे इसलिए थोड़े ही प्रेम करता था कि तू मेरे ऊपर थूकता नहीं था।
बुद्ध का वचन सुनने जैसा हैः मैं इसलिए थोड़े ही तुझे प्रेम करता था कि
तू मेरे ऊपर थूकता नहीं था। अगर इसीलिए प्रेम करता था, तो थूकने से टूट जाएगा। मैं तुझे प्रेम करता था क्योंकि और कुछ मैं कर ही नहीं सकता हूं। वह मेरा स्वभाव है। तू थूकता है कि नहीं थूकता है, यह तेरी तू जान। तू मेरे प्रेम को लेता है या नहीं लेता है, यह भी तेरी तू जान। लेकिन मुझसे प्रेम वैसा ही है जैसे कि फूल खिलता है और गंध बिखर जाती है। अब दुश्मन पास से गुजरता है, तो उसके नासापुटों को भी भर देती है। वह खुद की रूमाल लगा ले, बात अलग। मित्र निकलता है, उसके नासापुटों को भी भर देती है। मित्र थोड़ी देर ठहर जाए फूल के पास और उसके आनंद में भागीदार हो जाए, बात अलग। कोई न निकले रास्ते से तो भी गंध गिरती रहती है, सूने एकांत में। तो बुद्ध ने कहा, मेरा प्रेम स्वभाव है।
इसको समझ लो।
जिसे तुम प्रेम कहते हो, वह स्वभाव नहीं है। वह तुम्हारा कृत्य है। वह तुम्हारी एक चित्तदशा है। स्वभाव नहीं है। तो इसलिए जिसे तुम सुबह प्रेम करते हो, शाम को उसे घृणा कर सकते हो। कोई अंतर नहीं पड़ता। क्योंकि चित्त बदल जाता है। मूड बदल जाता है। भाव बदल जाता है।

बुद्ध ने नहीं कहा कि प्रेम करो। क्योंकि तुम प्रेम शब्द से गलत समझते। तुम जिसे प्रेम कहते हो वही समझते। बुद्ध ने कहा, अवैर। कृपा करो इतना ही, वैर मत करो। फिर जो रहेगा, वह प्रेम है। और उस प्रेम की गंध और! उस प्रेम का गीत और!
और जो भी बुद्ध ने कहा है, स्मरण रखना, वह एक गहन अनुभव से कह रहे हैं। ऐसे प्रेम को जानकर कह रहे हैं। वह कोई प्रेम के कवि नहीं हैं, न प्रेम के दार्शनिक हैं। उन्होंने प्रेम का अनुभव किया है। इस नए ढंग के प्रेम को जाना है, जो स्वभाव बन जाता है। तुमने जो भी प्रेम के संबंध में जाना है, उसमें से जानना तो बहुत कम है। या तो कवियों ने तुमसे कुछ कह दिया है, उसे तुम दोहरा रहे हो। क्योंकि फ्रायड ने अपने एक पत्र में एक मित्र को लिखा है कि अगर दुनिया में कवि न होते, तो शायद प्रेम को कोई जानता ही नहीं। बात समझ में आती है। कवि गाते रहे प्रेम की बात। हालांकि कवियों को भी कोई प्रेम बहुत पता होता है, ऐसा नहीं। अक्सर तो बात उलटी है। जिनके जीवन में प्रेम नहीं होता, वे प्रेम की कविता करके अपने मन को बहलाते हैं। जिसके जीवन में प्रेम है, वह कविता किसलिए करेगा? उसका जीवन ही कविता होता है। लेकिन जिनके जीवन में प्रेम नहीं होता, वे बैठकर प्रेम की कविता कर-कर के अपने मन को बहलाते हैं। जो प्रेम वे प्रगट नहीं कर पाए किसी और तरह से, उसे कविता में उंडेलते हैं। अक्सर प्रेम की सौ में से निन्यानबे कविताएं उन लोगों ने लिखी हैं जिन्हें प्रेम का कोई अनुभव नहीं है।
यह बड़ी कठिन बात है। अक्सर बहादुरी की बातें वे ही लोग करते हैं जो कायर हैं। वे अक्सर बहादुरी के किस्से गढ़कर बताते रहते हैं। बहादुर को क्या बहादुरी की बात करनी! बहादुरी काफी है।
बुद्ध ने जो कहा है वह किसी कवि की बात नहीं है। न किसी शास्त्रकार की बात है। उन्होंने प्रेम जाना। और उन्होंने प्रेम एक ही तरह से जाना। और एक ही तरह से जाना है किसी ने जब भी जाना। उन्होंने वैर छोड़कर जाना है।
तुम जिसे प्रेम कहते हो, उसे वे भी जानते थे। उनकी पत्नी थी, बच्चा था, मां थी, पिता थे--सब थे। उनको उन्होंने खूब प्रेम किया था। और एक दिन पाया कि उस प्रेम में कुछ भी नहीं है। वह केवल मन का सपना है। उस प्रेम की व्यर्थता को देखकर वह हट आए। उन्होंने फिर नए ढंग का प्रेम खोजना चाहा। उस प्रेम में तो घृणा दबी थी, मिटी न थी। उन्होंने एक ऐसा प्रेम जानना चाहा जो इतना शुद्ध हो कि घृणा उसे विकृत न करे। जिसमें घृणा की एक बूंद भी न हो। और मजा ऐसा है कि दूध की भरी प्याली में जहर की एक बूंद काफी है उसे नष्ट करने को। यद्यपि जहर की भरी प्याली में दूध की एक बूंद उसे शुद्ध न करेगी। विकृत बड़ा समर्थ है। अशुद्ध बड़ा समर्थ है। शुद्ध बड़ा कोमल है, नाजुक है। फूल की तरफ एक पत्थर मार दो तो फूल बिखर जाता है। और हजार फूल पत्थर को मारो तो भी कुछ नहीं होता।
बुद्ध खोज में निकले उस प्रेम की जो अविकृत है, अनकरप्टेड, कुंवारा है। और उस प्रेम को उन्होंने इस ढंग से पाया कि उन्होंने वैर छोड़ा। वैर रहते तुम प्रेम को साधोगे, तुम्हारा वैर उस प्रेम को विकृत कर देगा, जहरीला कर देगा। पहले वैर को हटा दो। और मजा यह है कि वैर के हटाते ही प्रेम साधना नहीं पड़ता; तुम अचानक पाते हो कि अरे! यह वैर के कारण ही प्रेम दिखायी नहीं पड़ता था, यह तो सतत बह रहा है भीतर। यह तो स्वभाव है। प्रेम आत्मा है। लेकिन किताबों से सावधान होना जरूरी है। किताबों से पढ़-पढ़ कर मत प्रेम को समझने की कोशिश करना।
मैंने सुना है, एक पियक्कड़ को एक धर्मगुरु समझा रहा था कि देख, बंद कर
यह पीना, नहीं तो परमात्मा से चूक जाएगा। तो उस पियक्कड़ ने कहा कि हमने तो पी-पीकर और बेहोश हो-होकर ही उसे पहचाना है। तो परीक्षा हो जाए। उसने कहा-- किधर से बर्क चमकती है देखें ऐ वाइज
मैं अपना जाम उठाता हूं तू किताब उठा
और बिजली किस तरफ चमकती है देखेंगे। तू अपनी किताब उठा!
मैं अपना जाम उठाता हूं तू किताब उठा
किधर से बर्क चमकती है देखें ऐ वाइज

और फिर देखेंगे कि कहां से बिजली चमकती है? तेरी किताब से, या मेरे जाम से?
एक किताबों की दुनिया है और एक जाम की दुनिया है। एक पीने वालों की दुनिया है, जिन्होंने जाना स्वाद। और एक केवल शब्दों के गुणतारा बिठाने वालों की दुनिया है। इसमें थोड़ा ख्याल रखना। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा अवैर। और जिन्होंने नहीं जाना, उन्होंने कहा प्रेम। और जो प्रेम की कहते हैं, उनके कहने से कभी प्रेम नहीं आया। और जिन्होंने अवैर समझाया, उनके कहने से प्रेम आया। यह विरोधाभास है।
मैं अपना जाम उठाता हूं तू किताब उठा
किताबें मुर्दा हैं। वेद, कुरान, पुराण, सब मुर्दा हैं। जब तक जीवन का जाम खुद न पीया जाए तब तक तुम जो कहते हो, कितनी ही कुशलता से कहो, झूठ झूठ ही रहेगा, सच नहीं हो पाता है।
हमने दो शब्द इस देश में उपयोग किए हैं--एक कवि और एक ऋषि। ऋषि हम उसको कहते हैं जिसका काव्य अनुभव से आया। और कवि हम उसे कहते हैं जिसका काव्य कल्पना से आया। दोनों कवि हैं। लेकिन ऋषि वह है, जिसने जीया। जिसने अपने काव्य में अपने कलेजे को रखा। जिसने पीया। और जिसके ओठों पर स्वाद है। वह भी शब्दों का उपयोग करता है। लेकिन फर्क हो जाता है।
महावीर ने कहा, अहिंसा। प्रेम नहीं। बुद्ध ने कहा, अवैर। प्रेम नहीं।
क्योंकि दोनों ने यह बात समझ ली कि असली सवाल प्रेम को लाने का नहीं है, असली सवाल हिंसा को हटाने का है। वैर को हटाने का है। घृणा को हटाने का है।
घृणा है रोग, हटते ही प्रेम का स्वास्थ्य अपने आप उपलब्ध हो जाता है।
बदलियां घिर गयी हैं, आकाश थोड़े ही लाना है, सिर्फ बदलियां हटा देनी हैं।
आकाश तो मौजूद ही है। आकाश तो तुम हो। इसलिए अब और प्रेम क्या लाना है, तुम प्रेम हो! थोड़े घृणा के बादल हट जाएं, बस।

थोड़े से छोटे-छोटे प्रश्नः बुद्ध ने कहा कि अकेले ही है सत्य की यात्रा। फिर विराटतम संघ क्यों बनाया?

ताकि बहुत से लोग एक साथ अकेले-अकेले की यात्रा पर जा सकें। साथ जाने
के लिए संघ नहीं बनाया। साथ तो कोई जा ही नहीं सकता समाधि में। अकेले- अकेले ही जाना होता है। यात्रा का अंत तो सदा अकेले पर होता है। लेकिन प्रारंभ में अगर साथ हो, तो बड़ा ढाढ़स, बड़ा साहस मिल जाता है।
तुम अकेले ध्यान करो, तो भरोसा नहीं आता कि कुछ होगा। तुम्हें अपने पर भरोसा खो गया है। तुम दस हजार आदमियों के साथ ध्यान करो, तुम्हें अपने पर तो भरोसा नहीं है, यह नौ हजार नौ सौ निन्यानबे लोगों की भीड़ पर तुम्हें भरोसा आ जाता है।
इनमें से भी प्रत्येक की यही हालत है। इनको अपने पर भरोसा नहीं है। हो
भी क्या अपने पर भरोसा! जिंदगी भर की कुल कमाई कूड़ा-करकट है। कुछ अनुभव तो आया नहीं। इनकी आस्था ही खो गयी है कि हमें, और शांति मिल सकती है। असंभव! इन्हें अगर आनंद मिल भी जाए, तो ये सोचेंगे कि यह कोई कल्पना हुई, या किसी ने कोई जादू कर दिया। मुझे, और आनंद! नहीं, यह हो नहीं सकता। सभी की यही हालत है।
लेकिन दस हजार लोग जब साथ खड़े होते हैं, तो नौ हजार नौ सौ निन्यानबे तुम्हें बल देते हैं कि जिस तरफ इतने लोग जा रहे हैं, वहां कुछ होगा। यह बल प्राथमिक धक्का बन जाता है। इससे गति शुरू हो जाती है। एक बार गति शुरू हो गयी, फिर तो तुम्हें अपने ही अनुभव से भरोसा आने लगता है। धीरे-धीरे साथ की कोई जरूरत नहीं रह जाती। तुम अकेले हो जाते हो। अकेले होने के लिए भी साथ की जरूरत है। तुम इतने कमजोर हो गए हो, तुमने इतना अपने स्वभाव को भुला दिया है कि तुम्हें अपने पर ही भरोसा लाने के लिए भीड़ की जरूरत हो जाती है। बुद्ध ने संघ बनाया ताकि लोग अकेले की अंतर्यात्रा पर एक-दूसरे के सहारे प्राथमिक चरण उठा सकें। अंतिम चरण तो सदा अकेला है। फिर तो वहां कोई भी नहीं रह जाता है। और बुद्ध के हिसाब में तो आखिरी चरण पर तुम भी नहीं रह जाते--अनत्ता, अनात्मा। आत्मा तक खो जाती है। दूसरे की तो फिक्र छोड़ें,

बुद्ध कहते हैं, तुम भी नहीं बचते। कुछ बचता है, जिसको शब्द देने का उपाय नहीं। अनिर्वचनीय है। शून्य जैसा कुछ। लेकिन न तुम होते, न कोई दूसरा होता। पर प्राथमिक चरण पर इसका उपयोग है।
मेरा भी अनुभव यही है कि मैंने लोगों को अकेले-अकेले भी ध्यान करवा कर देखा, गति नहीं होती। लेकिन साथ अगर वे ध्यान करते हैं, एक दफा गति हो जाती है, फिर तो वे खुद ही कहते हैं कि अब हम अकेले करना चाहते हैं। साथ से शुरुआत सुगमता से हो जाती है। तुम साहस भी जुटा पाते हो। तुम थोड़े पागल होने की हिम्मत भी जुटा पाते हो। तुम थोड़े आनंदित होने की हिम्मत भी जुटा पाते हो। जब हजार लोग नाचते हैं, तो तुम्हारे पैर में भी कोई नाचने लगता है। तब रोके नहीं रुकता। और जब हजार लोग आह्लादित होते हैं, तो उनका आह्लाद संक्रामक हो जाता है। बीमारी ही संक्रामक नहीं होती, स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। और जब दस लोग उदास बैठे हों, तो उनके बीच तुम भी उदास हो जाते हो। और जब दस लोग हंसते हैं, तो उनके बीच तुम भी हंसने लगते हो। बुद्ध को यह समझ में आ गया। बुद्ध ने पहला संघ बनाया, क्योंकि उन्हें
यह बात समझ में आ गयी कि आदमी इतना कमजोर हो गया है कि अकेला जा न सकेगा। यात्रा अकेले की है; पर अकेला जा न सकेगा। संग-साथ हिम्मत बढ़ जाएगी।

आखिरी प्रश्नः हमें आपके शब्दों में कोई श्रद्धा नहीं बैठती और आपके सारे शब्द झूठ प्रतीत होते हैं। फिर भी यहां से चले जाने का मन क्यों नहीं होता है?

यह पूछा है आनंद सरस्वती ने।
शब्द ही मेरे ऐसे हैं कि श्रद्धा बैठ न सकेगी। क्योंकि मैं उस दुनिया
की बात नहीं कर रहा हूं जिस पर तुम्हें श्रद्धा है, और जिस पर श्रद्धा तुम्हें आसानी से बैठ जाए। मैं जो कह रहा हूं वह तुम्हारे सिर के ऊपर से निकल जाता है। तुम्हें जरा अपने सिर को ऊंचा करना पड़ेगा।
दो ही उपाय हैं। या तो मैं जो कह रहा हूं उसे नीचा करूं; तब मैं व्यर्थ
हो जाऊंगा, उसका कोई सार न रहेगा। दूसरा उपाय है कि तुम जरा अपना सिर ऊपर करो। तुम जरा ऊपर उठो। हर आदमी ऐसा सोचता है मन में कि जैसे श्रद्धा तो उसके पास है ही, बिठाना भर है। श्रद्धा तुम्हारे पास है नहीं अभी। होती तो बैठ जाती। जिनके पास है, बैठ गयी है। जिनके पास श्रद्धा ही नहीं है, बैठेगी कैसे?
तुम्हारी हालत ऐसी है कि मैंने सुना कि मुल्ला नसरुद्दीन आंख के डाक्टर के पास गया। और उसने कहा कि आंख बड़ी कमजोर है। तो डाक्टर ने कहा कि कोई फिकर न करो। पढ़ो सामने तख्ती पर यह बारहखड़ी लिखी है। उसने कहा, कुछ दिखायी नहीं पड़ता। कुछ नहीं? उसने कहा, कुछ दिखायी नहीं पड़ता। तो उसने कहा कि आंख बहुत कमजोर है, चश्मा लग जाएगा, सब ठीक हो जाएगा। नसरुद्दीन ने कहा, तो फिर मैं पढ़ सकूंगा? उसने कहा, बिल्कुल पढ़ सकोगे। नसरुद्दीन ने कहा, धन्यभाग! क्योंकि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं।
अब चश्मा लगाने से थोड़े ही तुम पढ़े-लिखे हो जाओगे। मुझे सुन-सुनकर थोड़े ही श्रद्धा बैठ जाएगी। श्रद्धा होनी भी तो चाहिए! तो पहले तो तुममें मैं श्रद्धा पैदा करने की कोशिश कर रहा हूं।
श्रद्धा पैदा नहीं होती, घबड़ाओ मत। जल्दी भी कोई नहीं है। झूठी श्रद्धा मत करना, पहली बात। जब तक न हो, करना मत। प्रतीक्षा करना। जल्दबाजी मत करना। क्योंकि जिसने झूठी कर ली, वह सच्ची श्रद्धा से सदा के लिए वंचित रह जाएगा। संदेह करो, हर्ज क्या है? अभी संदेह है तो संदेह ही करो। कुछ तो करो। श्रद्धा नहीं सही, संदेह सही। संदेह से ही धीरे-धीरे श्रद्धा की तरफ उठोगे। संदेह करते-करते जब तुम पाओगे कि संदेह थकता है और गिरता है। मैं जो कह रहा हूं तुम उसे संदेह से काट न सकोगे। मैं जो कह रहा हूं वह तुम्हारे संदेह को काट देगा। होने दो संघर्ष। जल्दी कुछ नहीं है। और तुम कहते हो कि "आपके सारे शब्द झूठ प्रतीत होते हैं।"
ठीक ही है बात। होंगे ही। क्योंकि तुम जहां खड़े हो वहां तुमने झूठ को
सच मान रखा है। इसलिए जब तुम सच को पहली बार सुनोगे, वह झूठ मालूम होगा। और

थोड़ा सोचो। अंधी श्रद्धा मत करना। सच्ची अश्रद्धा भी बेहतर है झूठी श्रद्धा से। ईमानदार रहना। प्रामाणिक रहना।
और तुम पूछते हो कि "फिर भी यहां से चले जाने का मन क्यों नहीं होता?" शायद तुम्हें पता न हो, तुम्हारे भीतर कहीं श्रद्धा का अंकुरण शुरू
हो गया होगा। खुद भी खबर लगने में देर लगती है। जो हृदय में शुरू होता है, बुद्धि तक खबर पहुंचने में कई दफे वर्षों लग जाते हैं। इसलिए भाग भी नहीं सकते। फंस गए। अब जाने का उपाय भी नहीं है। और अभी श्रद्धा भी नहीं हुई है और भागना मुश्किल हो गया है, तो थोड़ा सोचो, जब श्रद्धा हो जाएगी तब कैसी गति होगी?
सौभाग्यशाली हो कि श्रद्धा भी नहीं हुई है, शब्द झूठ भी लगते हैं, फिर
भी हृदय जाने नहीं देता। हृदय तुम्हारे पास कीमती है। तुम्हारी बुद्धि और खोपड़ी से ज्यादा मूल्यवान है। तुमसे ज्यादा बड़ी चीज तुम्हारे भीतर छिपी है, वह तुम्हें जाने नहीं देती, भागने नहीं देती। तुमसे बड़ा कोई तुम्हारे भीतर बैठा है, उसे मेरे शब्द समझ में आ रहे हैं, उसकी मुझ पर श्रद्धा हो गयी है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
तीसरा प्रवचन

ध्यानाच्छादित अंतर्लोक में राग को राह नहीं (Note: added 12th sutra, which missed in the book.)

सुभासुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तुंंं कुसीतं हीनवीरियं।
तं वे पहसति मारो वातो रुक्खं" व दुब्बलं।। 7।।

असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तुंंं सद्धं आरवद्धवीरियं।
तं वे नप्पहति मारो वातो सेलं" व पब्बतं।। 8।।

असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनों।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासड्कप्पगोचरा।। 9।।

सारंच सारतो अत्वा असारंच असारतो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति सम्मासड्कप्पगोचरा।। 10।।

यथागारं दुच्छन्नं वुट्टी समतिविज्झजि।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति।। 11।।

यथागारं सुछन्नं वुट्टी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति।। 12।।

गौतम बुद्ध दार्शनिक नहीं हैं। मेटाफिजिक्स और परलोक के प्रश्नों में उनकी जरा भी--जरा भी--रुचि नहीं है। उनकी रुचि है मनुष्य के मनोविज्ञान में। उनकी रुचि है मनुष्य के रोग में और मनुष्य के उपचार में। बुद्ध ने जगत को एक उपचार का शास्त्र दिया है। वे मनुष्य जाति के पहले मनोवैज्ञानिक हैं।
इसलिए बुद्ध को समझने में ध्यान रखना, सिद्धांत या सिद्धांतों के आसपास तर्कों का जाल उन्होंने जरा भी खड़ा नहीं किया है। उन्हें कुछ सिद्ध नहीं करना है। न तो परमात्मा को सिद्ध करना है, न परलोक को सिद्ध करना है। उन्हें तो आविष्कृत करना है, निदान करना है। मनुष्य का रोग कहां है? मनुष्य का रोग क्या है? मनुष्य दुखी क्यों है? यही बुद्ध का मौलिक प्रश्न है।
परमात्मा है या नहीं; संसार किसने बनाया, नहीं बनाया; आत्मा मरने के बाद बचती है या नहीं; निर्गुण है परमात्मा या सगुण--इस तरह की बातों को उन्होंने व्यर्थ कहा है। और इस तरह की बातों को उन्होंने आदमी की चालाकी कहा है। ये जीवन के असली सवाल से बचने के उपाय हैं। ये कोई सवाल नहीं हैं। इनके हल होने से कुछ हल नहीं होता।
नास्तिक मानता है ईश्वर नहीं है, तो भी वैसे ही जीता है। आस्तिक मानता
है ईश्वर है, तो भी उसके जीवन में कोई भेद नहीं। अगर नास्तिक और आस्तिक के जीवन को देखो तो तुम एक सा पाओगे। तो फिर उनके विचारों का क्या परिणाम है? परलोक है या नहीं, इससे तुम नहीं बदलते। और बुद्ध कहते हैं, जब तक तुम
न बदल जाओ, तब तक समय व्यर्थ ही गंवाया। बुद्ध की उत्सुकता तुम्हारी आंतरिक क्रांति में है। बुद्ध बार-बार कहते थे, कि मनुष्य की दशा उस आदमी जैसी है जो एक अनजानी राह से गुजरता था और एक तीर आकर उसकी छाती में लग गया। वह गिर पड़ा है। लोग आ गए हैं। लोग उसका तीर निकालना चाहते हैं। लेकिन वह कहता है, ठहरो! पहले मुझे यह पता चल जाए कि तीर किसने मारा। ठहरो, पहले मुझे यह पता चल जाए कि तीर उसने क्यों मारा। ठहरो, मुझे यह पता चल जाए कि

तीर आकस्मिक रूप से लगा है या सकारण। ठहरो, मुझे यह पता चल जाए कि तीर विषबुझा है, या बिन-विषबुझा।
बुद्ध ने कहा, वह आदमी दार्शनिक रहा होगा। वह बड़े ऊंचे सवाल उठा रहा है। लेकिन जो लोग इकट्ठे थे उन्होंने कहा, यह सवाल तुम पीछे पूछ लेना।
पहले तीर निकाल लेने दो, अन्यथा पूछने वाला मरने के करीब है। उत्तर भी मिल जाएंगे तो हम किसे देंगे? और अभी इन प्रश्नों की कोई आत्यंतिकता नहीं है। अभी तीर खींच लेने दो। तीर छाती में लगा है, खतरा है। तुम ज्यादा देर न बच सकोगे।
बुद्ध कहते, ऐसी ही दशा में मैं तुम्हें पाता हूं। और तुम पूछते हो कि संसार किसने बनाया? पहले इसका पता चल जाए, तब करेंगे ध्यान। क्यों बनाया? पहले इसका पता चल जाए, तब बदलेंगे जीवन को। क्या कारण है परमात्मा का संसार बनाने में? क्यों यह लीला उसने रची? जब तक इसका पता न चल जाए, तब तक हम मंदिर में प्रवेश न करेंगे।
बुद्ध कहते हैं, जीवन का तीर छाती में चुभा है। पल-पल मर रहे हो। किसी
भी क्षण डूब जाओगे। ये उत्तर, ये प्रश्न, सब व्यर्थ हैं। अभी तो एक ही बात पूछो कि कैसे यह तीर निकल आए।
इसलिए बुद्ध की बातें शायद उतनी गहरी न मालूम पड़ें जितनी कपिल और कणाद की; कांट और हीगल की; प्लेटो और अरस्तू की। लेकिन ज्यादा यथार्थ हैं। ज्यादा वास्तविक हैं। और गहराई का करोगे क्या, अगर गहराई झूठी हो और शब्दों की हो? असली सवाल यथार्थ को समझना है।
बुद्ध पहले मनुष्य हैं जिन्होंने परमात्मा के बिना ध्यान करने की विधि दी। जिन्होंने परमात्मा की मान्यता को ध्यान के लिए आवश्यक न माना। और न केवल परमात्मा की बल्कि आत्मा की धारणा को भी ध्यान के लिए आवश्यक न माना। उन्होंने कहा, ध्यान तो स्वास्थ्य है। तुम स्वस्थ हो सकते हो। फिर शेष तुम खोज लेना। मैं तुम्हें रोग से मुक्त करने आया हूं।
इसलिए बुद्ध को तुम एक मनस-चिकित्सक की भांति देखना। वे धर्मगुरु नहीं हैं। धर्मगुरु मान लेने से बड़ी भ्रांति हो गयी। तो लोग उन्हें दूसरे धर्मगुरुओं के साथ गिन देते हैं। वे धर्मगुरु जरा भी नहीं हैं। कहीं परमात्मा की धारणा के बिना कोई धर्म हो सकता है? कहीं आत्मा की धारणा के बिना कोई धर्म हो सकता है? तत्व की तो कोई बुद्ध ने बात ही नहीं की। तथ्य की बात की। उन जैसा यथार्थवादी खोजना मुश्किल है। और उन्होंने मनुष्य की असली तकलीफ को पकड़ा और कहा यह तकलीफ सुलझ सकती है।
उन्होंने चार आर्य-सत्यों की घोषणा कीः कि मनुष्य दुखी है। इसमें किसको संदेह होगा? इसका कौन विरोध करेगा? मनुष्य दुखी है। मनुष्य के दुख का कारण है। ठीक बुद्ध वैसा ही बोलते हैं जैसे वैज्ञानिक बोलता है। दुख का कारण है। क्योंकि अकारण कैसे दुख होगा? पैर में पीड़ा हो, तो कांटा लगा होगा। सिर दुखता हो, तो कारण होगा। पीड़ा है तो अकारण कैसे होगी? पीड़ा का कारण है।
तो बुद्ध ने कहा है पहला आर्य-सत्य कि मनुष्य दुख में है। दूसरा आर्य-सत्य कि दुख का कारण है। और तीसरा आर्य-सत्य कि दुख के कारण को मिटाया जा सकता है। और चौथा आर्य-सत्य कि एक ऐसी भी दशा है जब दुख नहीं रह जाता। बुद्ध ने यह भी नहीं कहा कि वहां आनंद होगा। क्योंकि वह कहते हैं, व्यर्थ की बातों को क्यों करना? इतना ही कहा, वहां दुख नहीं होगा। आनंद को तुम समझोगे कैसे? आनंद तुमने जाना नहीं। वह शब्द थोथा है, अर्थहीन है। तुम उसमें जो अर्थ भी डालोगे, वह वही होगा जो तुमने जाना है। तुम अपने सुख को ही आनंद समझोगे। उसको थोड़ा बड़ा कर लोगे--करोड़ गुना कर लोगे--लेकिन वह मात्रा का भेद होगा, गुण का न होगा। और आनंद गुणात्मक रूप से भिन्न है। वह तुम्हारा सुख बिल्कुल नहीं है। वह तुम्हारा दुख भी नहीं है, सुख भी नहीं है।
तो बुद्ध ने कहा, उसकी बात कैसे करें? उसकी बात ही करनी उचित नहीं। इतना ही कहा कि दुख-निरोध हो जाएगा। तुमने जिसे दुख की तरह जाना है, वह वहां नहीं होगा। बीमारी नहीं होगी। स्वास्थ्य क्या होगा, वह तुम स्वयं

स्वाद ले लेना और जान लेना। और जिन्होंने भी स्वाद लिया, उन्होंने कहा नहीं। गूंगे का गुड़ है।
ये जो बुद्ध के वचन हैं, उनके मनोविज्ञान की आधारशिलाएं हैं--
"विषय-रस में शुभ देखते हुए विहार करने वाले, इंद्रियों में असंयत, भोजन में मात्रा न जानने वाले, आलसी और अनुद्यमी पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है जैसे आंधी दुर्बल वृक्ष को।"
विषय-रस में शुभ देखते हुए जो जीता है, वह निरंतर दुख में गिरता है। इस बात को विस्तार से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि समस्त योग और समस्त अध्यात्म इसी बात की समझ पर खड़ा होता है। विषय में रस मालूम होता है। रस विषय में है या मनुष्य की अपनी धारणा में?
कभी कुत्ते को देखा, सूखी हड्डी को चूसता है और रस पाता है। सोचता है, सूखी हड्डी से लहू निकल रहा है। लहू निकलता नहीं। सूखी हड्डी में कहां लहू? लेकिन सूखी हड्डी मुंह में चबाता है तो उसके मुंह से ही लहू बहने लगता है। सूखी हड्डी गड़ती है, चोट करती है मुंह में, लहू निकल आता है। उस लहू को वह पीता है, और सोचता है, हड्डी से रस मिल रहा है।
लेकिन कुत्ते को समझाओ, समझेगा न। उसने कभी भीतर प्रवेश करके देखा नहीं कि सूखी हड्डी से कैसा रस निकलेगा! सूखी हड्डी रसहीन है। और अगर रस निकल रहा है तो कहीं मुझसे ही निकलता होगा।
मैंने सुना है कि एक सर्दी की सुबह एक कुत्ता एक वृक्ष के नीचे धूप ले रहा है और विश्राम कर रहा है। उसी वृक्ष के ऊपर जगह बनाए बैठी है एक बिल्ली, वह भी सुबह की झपकी ले रही है। उसको नींद में बड़े प्रसन्न होते देखकर कुत्ते ने पूछा कि मामला क्या है? तू बड़ी आनंदित मालूम होती है। उस बिल्ली ने कहा कि मैंने एक सपना देखा, बड़ा अनूठा सपना, कि वर्षा हो रही है, पानी नहीं गिर रहा, चूहे गिर रहे हैं। कुत्ते ने कहा, नासमझ बिल्ली! नासमझ कहीं की, मूढ़! न शास्त्र का ज्ञान, न पुराण पढ़े, न इतिहास का पता! शास्त्रों में कभी भी ऐसा उल्लेख नहीं है। हां, कई दफा वर्षा हुई है, सूखी हड्डियां जरूर बरसी हैं, चूहे कभी नहीं।
लेकिन वह कुत्तों का शास्त्र है। बिल्ली के शास्त्रों में चूहों के बरसने का ही उल्लेख है। कुत्ते को सूखी हड्डी में रस है। इसलिए उसके पुराण सूखी हड्डियों के पास निर्मित होंगे। बिल्ली को चूहे में रस है। तो निश्चित ही चूहे में कुछ ऐसा नहीं है जिसके कारण बिल्ली को रस है। बिल्ली में ही कुछ ऐसा है, जो चूहे में रस है। कुत्ते में ही कुछ ऐसा है, जो हड्डी में रस है।
हमारी वृत्ति में कहीं रस का कारण है, विषय-वस्तु में नहीं। यह पहला विश्लेषण है।
मैं पढ़ रहा था, दूसरे महायुद्ध में एक घटना घटी। बर्मा के जंगलों में सिपाहियों का एक जत्था, सैनिकों का एक जत्था जूझ रहा है युद्ध में। महीनों हो गए। उन युवकों ने स्त्री की शकल नहीं देखी। और एक दिन दोपहर को एक तोता उड़ा जोर से कहता हुआ कि बड़ी सुंदर युवती है, अत्यंत सुंदर युवती है। सैनिकों ने अपनी बंदूकें रख दीं। बहुत दिन हुए स्त्री नहीं देखी। और तोता कह रहा है तो वे सब तोते का पीछा करते हुए भागे कि कहां जा रहा है। और वे जब पहुंचे, परेशान, झाड़ियों को पार करके, तो वहां कोई स्त्री न थी। एक मादा तोता, जिसकी वह तोता खबर कर रहा था। उन्होंने अपना सिर पीट लिया कि कहां इस नासमझ की बातों में पड़े!
लेकिन तोते का रस मादा तोते में है। तुम्हें कोई रस नहीं मालूम होता मादा तोते में। मादा तोते में कोई रस है भी नहीं। वह तो नर तोते की धारणा में है। पुरुष को स्त्री में रस मालूम होता है। स्त्री को पुरुष में रस मालूम होता है। वह रस बाहर नहीं है, वह तुम्हारी भावदशा में है। वह तुममें है। बुखार के बाद स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन में स्वाद नहीं मालूम होता। तुम्हारी जीभ ही बदल गयी है। तुम्हारी जीभ में स्वाद लेने की जो क्षमता है, वही नहीं रही है। भोजन में थोड़े ही स्वाद होता है। स्वाद तुम्हारी जीभ की क्षमता है। जब तुम स्वस्थ होते हो, स्वाद होता है। जब अस्वस्थ होते हो, स्वाद खो जाता है।

जीवन का जो रस है, वह वस्तु में और विषय में नहीं है, वह स्वयं तुममें है। और जब तक तुम उसे विषय में देखोगे, तब तक तुम गलत मार्ग पर भटकते रहोगे, क्योंकि तुम विषय का पीछा करोगे। जब तुम देखोगे कि वह रस मुझमें ही है, वह मैंने ही डाला है वस्तु में, वह मैंने ही प्रक्षेपित किया है, वह रस मैंने ही आरोपित किया है, उसी दिन तुम्हारे जीवन में क्रांति शुरू हो जाएगी। तब रस को खोजना हो तो अपने भीतर गहरे जाओ। अब बाहर जाने की कोई जरूरत न रही। दुनिया में दो ही तरह की यात्राएं हैं। एक बाहर की यात्रा है। अधिक लोग उसी यात्रा पर जाते हैं, क्योंकि उनको दिखता है कि रस बाहर है। हड्डियों में रस मालूम होता है। फिर कुछ लोग जाग जाते हैं। और उन्हें दिखायी पड़ता है, बाहर तो रस नहीं है, रस मैं ही डालता हूं। मैं ही डालता हूं और मैं ही अपने को भरमा लेता हूं। रस मुझमें है। तो फिर वे अंतर्यात्रा पर जाते हैं।
उस अंतर्यात्रा को ही बुद्ध ने योग कहा है।
"विषय-रस में शुभ देखते हुए विहार करने वाले, इंद्रियों में असंयत...
।"
और जब तुम विषय-रस में देखोगे रस, विषय में देखोगे रस, तब तुम्हारी इंद्रियां अपने आप असंयत हो जाएंगी। क्योंकि मन चाहता है, भोग लो जितना ज्यादा भोग सको। कुछ चूक न जाए। समय भागा जाता है। जीवन चुका जाता है। मौत करीब आती चली जाती है। कुछ छूट न जाए। कुछ ऐसा न रह जाए कि मन में पछतावा रहे कि भोग न पाए। तो भोग लो, ज्यादा से ज्यादा भोग लो। उस ज्यादा की दौड़ से असंयम पैदा होता है।
आंख थक जाती है, तो भी तुम रूप को देखे चले जाते हो। जीभ थक जाती है, तो
भी तुम भोजन किए चले जाते हो। पेट और लेने को तैयार नहीं है, फिर भी तुम भरे चले जाते हो। तब रस तो दूर रहा, विरस पैदा होता है। ज्यादा खाने से कोई आनंदित नहीं होता, पीड़ित होता है। ज्यादा देखने से आंखें सौंदर्य से नहीं भरतीं, सिर्फ थक जाती हैं, धूमिल हो जाती हैं। ज्यादा दौड़ने से, धन-वस्तुएं इकट्ठी करने से भीतर एक तरह की रिक्तता बढ़ती जाती है, कुछ भराव नहीं आता। लेकिन मरते दम तक, आखिरी क्षण तक आदमी भोग लेना चाहता है। मैंने सुना है-- गो हाथ को जुंबिश नहीं आंखों में तो दम है
रहने दे अभी सागर-ओ-मीना मेरे आगे
मर रहे हो, हाथ नहीं हिल सकता--
गो हाथ को जुंबिश नहीं आंखों में तो दम है
अभी देख तो सकता हूं। इसलिए शराब की प्याली तुम मेरे सामने से मत हटाओ। हाथ बढ़ाकर पी भी नहीं सकता।
रहने दे अभी सागर-ओ-मीना मेरे आगे
पर देख तो सकता हूं।
मरते दम तक, जब तक आखिरी श्वास चलती है, तब तक भोग का रस बना रहता है।
वह छूटता ही नहीं। जवानी चली जाती है, बुढ़ापा घेर लेता है, लेकिन मन जवान ही बना रहता है। मन उन्हीं तरंगों से भरा रहता है, जो जवानी में तो संगत भी हो सकती थीं--तूफान था। अब तो तूफान भी जा चुका, तूफान के चिह्न रह गए हैं रेत के तट पर बने, याददाश्त रह गयी है। लेकिन याददाश्त भी भरमाती है, सपने बनाती है। मन में तो व्यक्ति जवान ही बना रहता है। मौत आ जाती है, लेकिन भीतर आदमी जीवन के रस में ही डूबा रहता है। तब दुख न हो तो क्या हो?
दुख का अर्थ है, जहां नहीं था वहां खोजा। दुख का और क्या अर्थ है? रेत
से तेल निकालने की चेष्टा की। आकाश-कुसुम तोड़ने चाहे, जो थे ही नहीं। खरगोश के सींग खोजे, जो थे ही नहीं। दुख का इतना ही अर्थ है, जो नहीं हो सकता था उसकी कामना की। फिर हाथ खाली रह जाते हैं, मन बुझा-बुझा। सब तरफ विफलता का ढेर लग जाता है। और वही ढेर तुम्हारी कब्र बन जाता है।
जब तक विषय में रस है और ऐसा दिखायी पड़ता है कि वहां सुख है; जब तक आंख भीतर नहीं मुड़ी और यह नहीं दिखायी पड़ा कि सुख मैंने डाला है, वह मेरी दृष्टि है, मैं जहां डालूं वहां सुख होगा; और जब मुझे यह समझ में आ जाए कि सुख मुझमें ही है--तो फिर डालने का सवाल क्या--मैं अपने में डूब जाऊं तो

महासुख होगा, आनंद होगा। जब तक वैसी घड़ी नहीं घटती, तब तक इंद्रियां असंयत होंगी। जब दृष्टि ही भ्रांत है तो संयम नहीं हो सकता।
संयम तो संतुलित दृष्टि का परिणाम है। संयम तो सम्यक दृष्टि का परिणाम है। सम्यक का अर्थ है, जहां है वहां दिखायी पड़े, जहां नहीं है वहां दिखायी न पड़े। तो फिर खोज सार्थक हो जाती है। तो उपलब्धि होती है, तो सिद्धि होती है, तो जीवन में सुख के फूल लगते हैं, तो आनंद का अहोभाव पैदा होता है।
"विषय-रस में सुख देखते हुए विहार करने वाले, इंद्रियों में असंयत, भोजन में मात्रा न जानने वाले, आलसी और अनुद्यमी पुरुष को मार वैसे ही गिरा देता है जैसे आंधी दुर्बल वृक्ष को।"
मार बुद्ध का शब्द है, कामवासना के देवता के लिए। यह शब्द बड़ा अच्छा है। यह राम का बिल्कुल उलटा है। अगर राम को उलटा करके लिखें तो म, फिर बड़े अ की मात्रा, और फिर र। ठीक उलटा हो जाए तो मार हो जाता है। मार बुद्ध का शब्द है, कामवासना के देवता के लिए। और दो ही चित्तदशाएं हैं। या तो मार से प्रभावित, या राम से आंदोलित। या तो तुम भीतर की तरफ चलो, तब तुम राम की तरफ चले; या तुम बाहर की तरफ चलो, तब तुम मार की तरफ चले।
"मार उस व्यक्ति को वैसे ही गिरा देता है जैसे आंधी दुर्बल वृक्ष को।" कामवासना का देवता शक्तिशाली नहीं है, तुम दुर्बल हो। इस बात को ठीक
से स्मरण रखो। कामवासना का देवता शक्तिशाली नहीं है। और अगर तुम गिर गए हो, तो उसकी शक्ति के कारण नहीं गिरे हो। तुम गिरे हो अपनी दुर्बलता के कारण। जैसे कि कोई सूखा जड़ से टूटा वृक्ष, दुर्बल हुआ, दीन-जर्जर हुआ, वृद्ध हुआ, आंधी में गिर जाता है। आंधी न भी आती तो भी गिरता। आंधी तो बहाना है। आंधी तो मन समझाने की बात है। क्योंकि ऐसे ही गिर गए बिना किसी के गिराए, तो चित्त को और भी पीड़ा होगी। न भी आंधी आती तो वृक्ष गिरता ही। अपनी ही दुर्बलता गिराती है। दूसरे की सबलता का सवाल नहीं है। क्योंकि वस्तुतः वहां कोई वासना का देवता खड़ा नहीं है, जो तुम्हें गिरा रहा है। तुम ही गिरते हो। अपनी दुर्बलता से गिरते हो।
और आदमी दुर्बल कैसे हो जाता है? जो जहां नहीं है वहां खोजने से धीरे- धीरे अपने पर आस्था खो जाती है। व्यर्थ में सार्थक को खोजने से और न पाने से आत्मविश्वास डिग जाता है। पैर लड़खड़ा जाते हैं। और जीवनभर असफलता हाथ लगती हो तो स्वाभाविक है कि भरोसा नष्ट हो जाए। और आदमी डरने लगे, कंपने लगे। पैर उठाए उसके पहले ही जानने लगेगा कि मंजिल तो मिलनी नहीं है, यात्रा व्यर्थ है, क्योंकि हजारों बार यात्रा की है और कभी कुछ हाथ लेकर लौटा नहीं। हाथ खाली के खाली रहे।
"आलसी और अनुद्यमी... ।"
आलस्य असंयत जीवन का परिणाम है। जितना ही इंद्रियां असंयत होंगी और जितना ही वस्तुओं में, विषयों में रस होगा, उतना ही स्वभावतः आलस्य पैदा होगा।
आलस्य इस बात की खबर है कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा एक संगीत में बंधी हुई नहीं है। आलस्य इस बात की खबर है कि तुम्हारी जीवन-ऊर्जा अपने भीतर ही संघर्षरत है। तुम एक गहरे युद्ध में हो। तुम अपने से ही लड़ रहे हो। अपना ही घात कर रहे हो।
उद्यम बुद्ध उसी को कहते हैं जब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा एक संगीत में प्रवाहित होती है। तुम्हारे सब स्वर एक लय में बद्ध हो जाते हैं। तुम एक पुंजीभूत शक्ति हो जाते हो। तब तुम्हारे भीतर बड़ी ताजगी है, बड़े जीवन का उद्दाम वेग है। तब तुम्हारे भीतर जीवन की चुनौती लेने की सामर्थ्य है। तब तुम जीवंत हो। अन्यथा मरने के पहले ही लोग मर जाते हैं। मौत तो बहुत बाद में मारती है, तुम्हारी नासमझी बहुत पहले ही मार डालती है।
"विषय-रस में अशुभ देखते हुए विहार करने वाले, इंद्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान और उद्यमी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगाता जैसे आंधी शैल पर्वत को।"
आंधी आती है, जाती है। कोई हिमालय उससे डिगता नहीं। पर तुम्हारे भीतर हिमालय की शांत, संयत दशा होनी चाहिए। हिमालय एक प्रतीक है। बहुमूल्य शैल-

39

शिखर। अर्थ केवल इतना है कि तुम जब भीतर अडिग हो, जब तुम्हें कुछ भी डिगाता नहीं, जब तुम ऐसे स्थिर हो जैसे शैल-शिखर--आंधी आती है, चली जाती है; तुम वैसे ही खड़े रहते हो जैसे पहले थे--तब तो ऐसा होगा कि आंधी तुम्हें और स्वच्छ कर जाएगी। गिराना तो दूर, तुम्हारी धूल-झंखाड़ झाड़ जाएगी। तुम्हें और नया कर जाएगी, ताजा कर जाएगी।
इसे ऐसा समझो कि तुम राह से गुजरते हो। एक सुंदर युवती पास से गुजर गयी। इस सुंदर युवती में जीवन की एक धारा, एक तरंग तुम्हारे पास से गुजरी। अगर तुम्हारी ऐसी भ्रांत चित्त की दशा है कि रस विषय में है, तो तुम कंप जाओगे। तो यह स्त्री का गुजर जाना या पुरुष का गुजर जाना, तुम्हें ऐसे कंपा जाएगा जैसे कि कोई सूखे, मरते हुए वृक्ष को आंधी कंपा जाए। गिरने- गिरने को हो जाए, या गिर ही जाए। तब तुम पाओगे कि यह घटना दुर्भाग्यपूर्ण हो गयी। लेकिन अगर तुम संयत हो, अगर तुम शांत हो, अगर तुम मौन हो और अडिग हो, अगर ध्यान की तुम्हारे जीवन में थोड़ी सी भी किरण उतरी है, अगर तुमने थोड़ा सा भी जाना है कि चैतन्य का शांत हो जाना क्या है, तुमने अगर अपने भीतर बैठने और खड़े होने की कला थोड़ी सी भी सीखी है, और उस घड़ी में--जब एक सुंदर युवती पास से निकली या एक सुंदर युवक पास से निकला--अगर तुम अपने भीतर ध्यान में खड़े रहे, तो तुम पाओगे कि उस स्त्री का सौंदर्य, वह जीवन की धारा तुम्हें निखार गयी, तुम्हें ताजा कर गयी, तुम्हें प्रफुल्लित कर गयी। जैसे आंधी निकल गयी हो और वृक्ष पर जमी हुई धूल वर्षों की झड़ गयी हो। वृक्ष और ताजा हो गया।
जीवन को देखने के ढंग पर सब कुछ निर्भर है। अगर तुम्हारे देखने का ढंग गलत है, तो जीवन तुम्हारे साथ जो भी करेगा वह गलत होगा। तुम्हारा देखने का ढंग सही है, तो जीवन तो यही है, कोई और दूसरा जीवन नहीं है, लेकिन तब तुम्हारे साथ जो भी होगा वही ठीक होगा।
बुद्ध भी इसी पृथ्वी से गुजरते हैं, तुम भी इसी पृथ्वी से गुजरते हो। यही चांद-तारे हैं। यही आकाश है। यही फूल हैं। लेकिन एक के जीवन में रोज पवित्रता बढ़ती चली जाती है। एक रोज-रोज निर्दोष होता चला जाता है। निखरता चला जाता है। और दूसरा रोज-रोज दबता चला जाता है, बोझिल होता जाता है, धूल से भरता जाता है, अपवित्र होता जाता है, गंदा होता जाता है। मृत्यु जब बुद्ध को लेने आएगी तो वहां तो पाएगी मंदिर की पवित्रता, वहां तो पाएगी मंदिर की धूप, मंदिर के फूल। वहां तो पाएगी एक कुंवारापन, जिसको कुछ भी विकृत न कर पाया।
जैसा कबीर ने कहा है, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। तो बुद्ध तो चादर को वैसा का वैसा रख देंगे।
मुझे तो लगता है कि कबीर ने जो कहा, वह थोड़ा अंडरस्टेटमेंट है। वह अतिशयोक्ति तो है ही नहीं, सत्य को भी बहुत धीमे स्वर में कहा है। क्योंकि मेरी दृष्टि ऐसी है कि जब बुद्ध चादर को लौटाएंगे तो वह और भी पवित्र होगी। उससे भी ज्यादा पवित्र होगी जैसी उन्होंने पायी थी। होनी ही चाहिए। क्योंकि जैसे अपवित्रता बढ़ती है और विकासमान है, वैसे ही पवित्रता भी बढ़ती है और विकासमान है। जो पवित्रता बुद्ध को बीज की तरह मिली थी, बुद्ध उसे एक बड़े वृक्ष की तरह लौटाएंगे।
जीसस एक कहानी कहते थे, कि एक बाप चिंतित था। तीन उसके बेटे थे और बड़ा उसके पास धन, बड़ी समृद्धि थी। कुछ तय न कर पाता था, किस बेटे को मालिक बनाए। तो उसने एक तरकीब की। उसने तीनों बेटों को बुलाया और तीनों बेटों को समान मात्रा में फूलों के बीज दिए और कहा कि मैं तीर्थयात्रा को जा रहा हूं, इनको तुम सम्हालकर रखना। जब मैं वापस आऊं, तो मुझे वापस लौटा देना। और ध्यान रहे, इस पर बहुत कुछ निर्भर है। इसलिए लापरवाही मत करना। ये बीज ही नहीं हैं, तुम्हारा भविष्य!
बाप तीन वर्ष बाद वापस लौटा। बड़े बेटे ने सोचा कि इन बीज को कहां सम्हालकर रखेंगे? सड़ जाएंगे। और कुछ कम-बढ़ हो गया, झंझट होगी; और बाप कह गया है, तुम्हारा भविष्य! तो उसने सोचा, यही उचित होगा कि इनको बाजार में बेच दिया जाए। पैसे को सम्हालकर रखना आसान होगा। फिर जब बाप लौटेगा, फिर बाजार से खरीदकर बीज उसको लौटा देंगे। यह बात ठीक गणित की थी।

दूसरे बेटे ने सोचा कि कैसे सम्हाला जाए? बीज कहीं खो न जाएं, कुछ कमी
न हो जाए, सड़ न जाएं, कुछ गड़बड़ न हो जाए। और फिर जो बीज दिए हैं, कहीं बाप उन्हीं की जिद्द न करे, तो बेचना तो उचित नहीं है। और जब उसने कहा, भविष्य इन पर निर्भर है; तो उसने एक तिजोड़ी में सब बीजों को बंद करके, ताला लगाकर चाबी सम्हालकर रख ली।
तीसरे बेटे ने बीजों को जाकर बो दिया बगीचे में। क्योंकि बीज कहीं तिजोड़ी में सम्हाले जाते हैं? और बाप ने जो अमानत दी है, वह कोई बाजार में बेचने की बात है? फिर खरीदकर भी लौटा देंगे, तो वे वही बीज तो न होंगे। और बीज तो विकासमान है। उसको सम्हालकर रखने में तो या तो वह सड़ेगा, खराब होगा। और एक बीज तो करोड़ बीज हो सकता है। जब पिता लौटेंगे, तब तक और बहुत बीज लग जाएंगे।
तीन वर्ष बाद जब पिता लौटा तो उसने बड़े बेटे को कहा। वह भागा बाजार की तरफ। उसने कहा, रुकिए, अभी लाता हूं। वह बाजार से बीज खरीद लाया, ठीक उसी मात्रा में थे। लेकिन बाप ने कहा, ये मेरे बीज नहीं हैं। जो मैंने दिए थे वे तूने कहीं गंवा दिए। ये कोई और बीज होंगे। लेकिन जो मैंने तुम्हें सम्हालने को दिए थे वे कहां हैं?
दूसरे बेटे को कहा। उसने तिजोड़ी सामने लाकर खोल दी। वहां से सिर्फ दुर्गंध उठी। क्योंकि सब बीज सड़ गए थे। राख थी वहां अब। बाप ने कहा, मैंने तुम्हें बीज दिए थे और तुम राख लौटाते हो! तो बेटे ने कहा, ये वही बीज हैं। बाप ने कहा, ये वही नहीं हैं। दूसरे ने तो कम से कम बीज लौटाए हैं--दूसरे बीज हैं, तुम्हारे तो बीज भी नहीं हैं। यह तो राख है। मैंने तुम्हें बीज दिए थे। बीज का मतलब होता है, जो अंकुरित हो सके। क्या यह राख अंकुरित हो सकेगी? क्या इसमें फूल लग सकेंगे?
तीसरे बेटे को पूछा। बेटे ने कहा, आप मकान के पीछे आएं, क्योंकि बीज वहां हैं जहां उन्हें होना चाहिए। पीछे करोड़ों फूल खिले थे। और बेटे ने कहा, अभी जल्दी फसल आने के करीब है, हम बीज आपके लौटा देंगे। लेकिन हम उतने ही लौटाने में असमर्थ हैं जितने आपने दिए थे। करोड़ गुना हो गए। और उतने ही क्या लौटाना! क्योंकि बीज का अर्थ ही होता है, जो बढ़ रहा है, जो प्रतिपल विकासमान है। उसको उतना ही कैसे लौटाया जा सकता है? उसको उतना ही लौटाने का तो पहला उपाय है जो बड़े भाई ने किया। बेच दिया बाजार में, दूसरे खरीद लाया। और वही बीज भी मैं आपको नहीं लौटा सकता हूं, उनकी संतान लौटा सकता हूं। चूंकि वही बीज तो सड़ जाते। उनके लौटाने का तो ढंग वही है जो मेरे दूसरे भाई ने किया; जिसने आपको राख दी। लेकिन जिन बीजों से सुगंध उठ सकती है उनको दुर्गंध की शकल में लौटाना मुझे न भाया। ये आपके बीज हैं, आप सम्हाल लें। ये सारे फूल आपके हैं। थोड़े से बीज करोड़ गुना हो गए थे।
नहीं, कबीर ने जो कहा है वह अतिशयोक्ति नहीं, उन्होंने सत्य को बड़े धीमे स्वर में कहा है, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। बुद्धों ने चदरिया को और भी निखारकर लौटाया है। जो बीज थे उसको फूल की तरह लौटाया है। पवित्रता बढ़ती है प्रतिपल, जैसे अपवित्रता बढ़ती है। तुम जिसे सम्हालोगे वही बढ़ने लगता है। जीवन में कोई चीज रुकी हुई नहीं है, सभी चीजें गतिमान हैं। जीवन एक प्रवाह है। या तो पीछे की तरफ जाओ, या आगे की तरफ जाओ, रुकने का कोई उपाय नहीं है। जो जरा भी रुका, वह भटका।
ये पंक्तियां ध्यान से सुनो--
जुस्तजु-ए-मंजिल में इक जरा जो दम लेने
काफिले ठहरते हैं राह भूल जाते हैं
जरा दम लेने!
जुस्तजु-ए-मंजिल में इक जरा जो दम लेने
इस जिंदगी की राह पर, यात्रा पर जरा दम लेने को भी जो ठहरते हैं।
काफिले ठहरते हैं राह भूल जाते हैं
जो रुका, वह भूला। जो जरा ठहरा, वह भटका। क्योंकि जो आगे न गया, वह पीछे गया। जो बढ़ा नहीं, वह गिरा। जो चला नहीं, वह पीछे सरका। क्योंकि जीवन गति है, यहां ठहराव नहीं है। एडिंग्टन का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि मनुष्य की

भाषा में रेस्ट शब्द--ठहराव--सबसे झूठा शब्द है। क्योंकि ऐसी कोई घटना कहीं नहीं। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है।
तुम यहां बैठे हो, ठहरे हुए नहीं हो। तुम लगते हो बैठे हो। चल रहे हो। प्रतिपल बढ़ रहे हो। रात सो रहे हो, तब भी ठहरे हुए नहीं हो। बिस्तर पर भी हजारों प्रक्रियाएं चल रही हैं। तुम्हारा जीवन गतिमान है। रात भी नदी बह रही है, सुबह भी नदी बह रही है, दिन भी नदी बह रही है। अंधेरा हो कि उजाला, आकाश में बादल घिरे हों कि आकाश खुला हो, नदी बह रही है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि रात सोते समय भी तुम्हारा मस्तिष्क पूरा काम
कर रहा है। सीना पूरा काम कर रहा है। श्वास चल रही है। शरीर में खून शुद्ध किया जा रहा है। भोजन पचाया जा रहा है। तुम ब.ूढ़े हो रहे हो, जवान हो रहे हो। कुछ घट रहा है। रुकाव जैसी कोई चीज नहीं है। पत्थर भी ठहरा हुआ नहीं है। क्योंकि पत्थर भी रेत होने के रास्ते पर आगे बढ़ा जा रहा है। आज पत्थर है, कल रेत हो जाएगा। कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। ठहराव झूठ है। ठहराव भ्रांति है। गति सत्य है।
बुद्ध ने तो गति को इतने आत्यंतिक ऊंचाई पर उठाया कि बुद्ध ने कहा कि जहां भी तुम्हें कोई चीज ठहरी हुई मालूम पड़े, वहीं समझ लेना झूठ है। इसलिए बुद्ध ने परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं किया। क्योंकि परमात्मा शब्द में ही ठहराव मालूम होता है। परमात्मा का मतलब है, जो हो चुका और अब नहीं हो सकता। जिसमें कोई गति नहीं। परमात्मा में गति कैसे होगी? क्योंकि गति तो अपूर्ण में होती है। पूर्ण में कैसी गति? वह तो है ही वही जो होना चाहिए। अब उसमें कुछ और हो नहीं सकता। परमात्मा बूढ़ा नहीं हो रहा, ज्यादा ज्ञानी नहीं हो रहा, अज्ञानी नहीं हो रहा, पवित्र नहीं हो रहा, अपवित्र नहीं हो रहा।
बुद्ध ने कहा, ऐसी कोई चीज है ही नहीं। बुद्ध ने कहा, "है" शब्द झूठ है; "होना" शब्द सत्य है। जब तुम कहते हो, पहाड़ है, तो बुद्ध कहते हैं, ऐसा मत कहो, पहाड़ है। ऐसा कहो, पहाड़ हो रहा है। बुद्ध के प्रभाव में जो भाषाएं विकसित हुईं, जैसे बर्मी, जो कि बुद्ध-धर्म के पहुंचने के बाद भाषा बनी, तो वहां "है" जैसा कोई शब्द नहीं है बर्मी भाषा में। जब पहली दफा बाइबिल का अनुवाद किया बर्मी भाषा में तो बड़ी कठिनाई आयी। "गॉड इज", इसको कैसे अनुवाद करो? "ईश्वर है"--इसके लिए कोई ठीक-ठीक रूपांतरण बर्मी भाषा में नहीं होता। और जब रूपांतरण करो तो उसका मतलब होता है--"गॉड इज बिकमिंग"-- ईश्वर हो रहा है। क्योंकि वह बुद्ध के प्रभाव में भाषा बनी है। बुद्ध ने कहा, हर चीज हो रही है। तुम जवान हो, ऐसा कहना ठीक नहीं है। जवान हो रहे हो। बूढ़े हो, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। बूढ़े हो रहे हो। जीवन है, ऐसा कहना ठीक नहीं। जीवन हो रहा है। मृत्यु है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं। मृत्यु हो रही है। जगत में क्रियाएं हैं, घटनाएं नहीं।
इसलिए बुद्ध ने कहा, कोई परमात्मा नहीं है। और बुद्ध ने कहा, कोई आत्मा भी नहीं है। क्योंकि ये तो थिर चीजें मालूम पड़ती हैं। आत्मा, जैसे कोई ठहरा हुआ पत्थर भीतर रखा है। बुद्ध ने कहा, ऐसा कुछ भी नहीं है। चीजें हो रही हैं।
बुद्ध ने जो प्रतीक लिया है जीवन को समझाने के लिए, वह है दीए की ज्योति। सांझ को तुम दीया जलाते हो। रातभर दीया जलता है, अंधेरे से लड़ता है। सुबह तुम दीया बुझाते हो। क्या तुम वही ज्योति बुझाते हो जो तुमने रात जलायी थी? वही ज्योति तो तुम कैसे बुझाओगे? वह ज्योति तो करोड़ बार बुझ चुकी। ज्योति तो प्रतिपल बुझ रही है, धुआं होती जा रही है। नयी ज्योति उसकी जगह आती जा रही है। रात तुमने जो ज्योति जलायी थी वह सुबह तुम उसे थोड़े ही बुझाओगे। उसी कीशृंखला को बुझाओगे, उसी को नहीं। वह तो जा रही है, भागी जा रही है, तिरोहित हुई जा रही है आकाश में। नयी ज्योति प्रतिपल उसकी जगह आ रही है।
तो बुद्ध ने कहा, तुम्हारे भीतर कोई आत्मा है ऐसा नहीं, चित्त का प्रवाह है। एक चित्त जा रहा है, दूसरा आ रहा है। जैसे दीए की ज्योति आ रही है। तुम वही न मरोगे जो तुम पैदा हुए थे। जो पैदा हुआ था, वह तो कभी का मर

चुका। जो मरेगा वह उसी संतति में होगा, उसीशृंखला में होगा, लेकिन वही नहीं।
यह बुद्ध की धारणा बड़ी अनूठी है। लेकिन बुद्ध ने जीवन को पहली दफा जीवंत करके देखा। और जीवन को क्रिया में देखा, गति में देखा। और जो भी आलस्य में पड़ा है, जो रुक गया है, ठहर गया है, जो नदी न रहा और सरोवर बन गया, वह सड़ेगा।
"विषय-रस में अशुभ देखते हुए विहार करने वाले, इंद्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान और उद्यमी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगाता जैसे आंधी शैल-पर्वत को।"
तुम्हारी निर्बलता और दुर्बलता का सवाल है। जब तुम हारते हो, अपनी दुर्बलता से हारते हो। जब तुम जीतते हो, अपनी सबलता से जीतते हो। वहां कोई तुम्हें हराने को बैठा नहीं है। इस बात को ख्याल में ले लो। शैतान है नहीं, मार है नहीं। तुम्हारी दुर्बलता का ही नाम है। जब तुम दुर्बल हो, तब शैतान है। जब तुम सबल हो, तब शैतान नहीं है। तुम्हारा भय ही भूत है। तुम्हारी कमजोरी ही तुम्हारी हार है।
इसलिए यह जो हम बहाने खोज लेते हैं अपना उत्तरदायित्व किसी के कंधे
पर डाल देने का, कि शैतान ने भटका दिया, कि क्या करें मजबूरी है, पाप ने पकड़ लिया। कोई पाप है कहीं जो तुम्हें पकड़ रहा है? तुमने भला पाप को पकड़ा हो, पाप तुम्हें कैसे पकड़ेगा?
तो मार तो केवल एक काल्पनिक शब्द है। इस बात की खबर देने के लिए कि तुम जितने कमजोर होते हो उतना ही तुम्हारी कमजोरी के कारण, तुम्हारी कमजोरी से ही आविर्भूत होता है तुम्हारा शत्रु। तुम जितने सबल होते हो, उतना ही शत्रु विसर्जित हो जाता है।
सबल होने की कला योग है। कैसे तुम अपने भीतर संयत हो जाओ। तो हर चीज सम्यक होनी चाहिए। इंद्रियों का उपयोग संयम से भरा होना चाहिए। बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, जब तुम राह पर चलो, चार कदम आगे से ज्यादा मत देखो। कोई जरूरत नहीं है। चार कदम आगे देखना पर्याप्त है। उतना संयम है। लेकिन तुम भी चलते हो रास्ते पर। जिस दीवाल पर लिखे हुए इश्तहार को तुम हजार बार पढ़ चुके हो, उसको आज फिर पढ़कर आए हो। वह चाहे हिमकल्याण तेल हो, या बंदर छाप काला दंतमंजन हो, उसको तुम कितनी बार पढ़ चुके हो। उसे तुम क्यों बार-बार पढ़ रहे हो?
तुम उसे पढ़ो न--बुद्ध की तरह अगर तुम चार कदम नीचे देखकर चलो--तो दीवालें अपने आप साफ हो जाएं। लोग लिखना बंद कर दें। तुम पढ़ते हो, इसलिए वे लिखते हैं। तुम जब तक पढ़ते रहोगे तब तक वे लिखते रहेंगे। क्योंकि बार-बार पढ़कर तुम्हारे मन में एक सम्मोहन पैदा होता है। बंदर छाप काला दंतमंजन, बंदर छाप काला दंतमंजन... । जब तुम दुकान पर दंतमंजन खरीदने जाओगे, तुम्हें याद ही न पड़ेगा तुम्हारे मुंह से कब निकल गया--बंदर छाप काला दंतमंजन। तुम सोचते हो सोच-विचारकर खरीद रहे हो। वह बार-बार की पुनरुक्ति ने तुम्हें सम्मोहित किया। बार-बार की पुनरुक्ति ने तुम्हारे मन पर संस्कार छोड़ दिए। तुम उन्हीं को दोहराए चले जा रहे हो। इसलिए तो विज्ञापन का इतना भारी उपयोग है। लोग चीजें बाद में बनाते हैं, विज्ञापन पहले चला देते हैं। अमरीका में तो दो-तीन साल बाद प्रोडक्शन शुरू होगा उस चीज का, उत्पत्ति शुरू होगी, तीन साल पहले विज्ञापन शुरू हो जाता है। क्योंकि बाजार पहले बनाना पड़ता है। मांग पहले पैदा करनी पड़ती है। और जब मांग पैदा हो जाती है, तो ही बाजार में सामान लाने की कोई जरूरत है। और आदमी ऐसा पागल है कि किसी भी चीज के लिए उसको तुम खरीदने के लिए राजी कर सकते हो, सिर्फ दीवालों पर, अखबारों में, रेडियो पर, टेलीविजन पर दोहराने की जरूरत है। कुछ भी दोहराओ, आदमी तैयार हो जाएगा खरीदने को। क्योंकि उसे लगेगा कि पता नहीं कौन सा सुख मैं चूका जा रहा हूं, जो इस चीज से मिलने वाला है।
सुख की भ्रांति दो, सुख की आशा बंधाओ और कोई भी चीज बेची जा सकती है। आदमी से ज्यादा मूढ़ कोई और दूसरा जानवर पृथ्वी पर नहीं है। तुम किसी भैंस को भी राजी नहीं कर सकते। वह अपनी प्रकृति से जीती है। जो घास खाना है, वही खाती है। तुम कितना ही विज्ञापन करो, तुम कितना ही बैंड-बाजा बजाओ, वह

बिल्कुल फिकर न करेगी। लेकिन आदमी, तत्क्षण! क्योंकि आदमी अपनी प्रकृति भूल गया है। तो ऐसी चीजें खा रहा है जिनमें कुछ, कोई भी पौष्टिकता नहीं है। लेकिन विज्ञापन चला रहा है उन चीजों को, तो वह खाएगा।
धीरे-धीरे सभी चीजें अपनी पौष्टिकता खोती जा रही हैं। क्योंकि यह सवाल ही नहीं है कि उनमें जीवनदायी-तत्व होने चाहिए। रंग अच्छा होना चाहिए, गंध अच्छी होनी चाहिए। अब रंग और गंध से कोई पौष्टिकता का संबंध नहीं है। रंग और गंध तो ऊपर से डाली जा सकती हैं। डाली जा रही हैं। भोजन रंगीन दिखना चाहिए, सुगंध अच्छी आनी चाहिए; फिर उससे खून बनता है या नहीं, यह सवाल नहीं है। फिर उससे हड्डी बनती है या नहीं, यह सवाल नहीं है। तुम किसी जानवर को धोखा नहीं दे सकते। वह जानता है कि क्या उसके जीवन में उपयोगी है। लेकिन आदमी को धोखा दिया जा सकता है। दिया जा रहा है। हर चीज के लिए तुम उसे राजी कर सकते हो, ठीक विज्ञापन की जरूरत है।
बुद्ध कहते थे, चार कदम से आगे देखना ही मत। क्योंकि उतना चलने के लिए पर्याप्त है। इसको वह संयम कहते हैं। बुद्ध कहते, जो सुनने योग्य नहीं है, उसे सुनना मत। जो छूने योग्य नहीं है, उसे छूना मत। जितना जीवन में जरूरी है, आवश्यक है, उससे पार मत जाना। और तुम अचानक पाओगे, तुम्हारे जीवन में शांति की वर्षा होने लगी। अशांत तुम इसलिए हो कि जो गैर-जरूरी है उसके पीछे पड़े हो। जो मिल जाए तो कुछ न होगा, और न मिले तो प्राण खाए जा रहा है। गैर-जरूरी वही है जिसके मिलने से कुछ भी न मिलेगा, लेकिन जब तक नहीं मिला है तब तक रात की नींद हराम हो गयी है। तब तक सो नहीं सकते, शांति से बैठ नहीं सकते, क्योंकि मन में एक ही उथल-पुथल चल रही है कि घर में दो कार होनी चाहिए। एक कार गरीब आदमी के घर में होती है। दो कार होनी चाहिए।
पहले अमरीका में वे विज्ञापन करते थे कि कम से कम घर में एक कार होनी
ही चाहिए। अब इतनी कारें तो घरों-घरों में हो गयी हैं--एक-एक कार तो हर घर में है। तब उन्होंने दूसरा विज्ञापन शुरू किया कि एक कार तो गरीब घर में होती है। अगर तुम सफल हो, तो कम से कम दो कार घर में होनी चाहिए। अब दो कार घर में होनी चाहिए! चाहे एक में भी बैठने वाले पर्याप्त न हों। लेकिन दो कार घर में होनी ही चाहिए। नहीं तो वह प्रतिष्ठा का सवाल है। अब कार कोई बैठने के लिए नहीं खरीदता अमरीका में, वह प्रतिष्ठा की बात है, वह प्रेस्टिज, पावर। उससे शक्ति का पता चलता है कि तुम कितने शक्तिशाली हो। अब उन्होंने वहां प्रचार करना शुरू किया है कि अगर तुम सफल हो गए हो,
तो एक घर पहाड़ पर, एक घर समुद्र के तट पर और एक घर शहर में, कम से कम तीन घर तो होने ही चाहिए। आदमी एक ही घर में रह सकता है! तुम्हारे पास कितने कपड़े हैं? तुमने कितने इकट्ठे कर रखे हैं? कितने कपड़े तुम एक बार में पहन सकते हो? कितने जूते के अंबार लगा रखे हैं तुमने?
मैं घरों में ठहरता रहा हूं। कभी-कभी दंग होता हूं। भगवान की मूर्ति
के लिए जगह नहीं है, जूतों के लिए अलमारियां लगा रखी हैं। एक जूता तुम पहनते हो। इतने जूते अनिवार्य नहीं हैं। जरा भी आवश्यक नहीं हैं। व्यर्थ इनको झाड़ना-पोंछना पड़ता है। तुम नाहक चमार बन गए हो। सुबह से इनको नाहक पोंछो, झाड़ो, तैयार करके रखो, एक तुम पहनोगे। लेकिन कोई तुम्हें समझा रहा है कहीं से, कि ऐसा होना चाहिए।
तुम अगर अपने जीवन की फेहरिश्त बनाओ कि तुमने कितना गैर-जरूरी इकट्ठा
कर लिया है, तो तुम नब्बे प्रतिशत गैर-जरूरी पाओगे। और उस नब्बे प्रतिशत के लिए तुमने कितना श्रम उठाया! कितनी चिंता ली! कितने व्याकुल हुए! कितना व्यर्थ जीवन गंवाया! और अगर तुमसे कोई कहे ध्यान, इबादत, प्रार्थना, तुम कहते हो समय कहां है? समय है नहीं। समय होगा भी कैसे! क्योंकि व्यर्थ के लिए इतना समय दिया जा रहा है।
बुद्ध ने कहा है, जिस व्यक्ति को भी यह समझ में आ गया कि विषयों में रस नहीं है, वह संयत होने लगता है, अपने आप संयत होने लगता है। तब उसका जीवन वासनाग्रस्त नहीं होता। आवश्यकता से निश्चित ही मर्यादित होता है, लेकिन वासना से ग्रस्त नहीं होता। आवश्यकता की सीमा है। वासना की कोई सीमा नहीं। वासना है एक तरह की विक्षिप्तता। आवश्यकता जीवन की जरूरत है। भोजन चाहिए, कपड़ा चाहिए, छप्पर चाहिए। एक आवश्यकता है, उतनी पूरी होनी चाहिए।

और हर आदमी उसे पूरी कर लेता है। उसके कारण कोई चिंता नहीं है तुम्हारे भीतर। चिंता तुम्हारे भीतर उन चीजों के कारण है जो आवश्यक नहीं हैं। उन्हीं का तुम्हें रोग खाए जा रहा है।
"विषय-रस में अशुभ देखते हुए विहार करने वाले, इंद्रियों में संयत, भोजन में मात्रा जानने वाले, श्रद्धावान और उद्यमी पुरुष को मार वैसे ही नहीं डिगाता जैसे आंधी शैल-पर्वत को।"
बुद्ध के संघ में बहुत समय तक बुद्ध ने स्त्रियों को दीक्षा न दी। बहुत आग्रह करने पर, और एक बड़ी अनूठी महिला कृशा गौतमी के अत्यंत निवेदन करने पर बुद्ध ने स्वीकार किया। लेकिन तब उन्होंने कुछ नियम बनाए। जब वे नियम बनाते थे, तो उन्होंने भिक्षुओं से कई सवाल पूछे, नियम बनाने के निमित्त। और आनंद ने बहुत से प्रश्न उठाए नियमों के संबंध में, ताकि सब नियम विस्तारपूर्ण हो जाएं। तो आनंद ने पूछा कि कोई भिक्षु अगर किसी स्त्री को मार्ग पर मिले, या भिक्षुणी को मार्ग पर मिले, तो क्या व्यवहार होना चाहिए? तो बुद्ध ने कहा, भिक्षुणी, चाहे भिक्षु उम्र में उससे छोटा भी हो, तो भी उसे प्रणाम करे। यह बात जरा बुद्ध के मुंह में जमती नहीं। महावीर ने भी यही नियम बनाया--कि भिक्षुणी, साध्वी, चाहे सत्तर साल की हो, चाहे दीक्षा लिए हुए उसे पचास साल हो गए हों, और अभी कल के दीक्षित साधु के सामने भी आ जाए तो झुककर नमस्कार करे। साधु को ऊपर बिठाए, स्वयं नीचे बैठे। यह बात महावीर के मुंह में भी जमती नहीं। क्योंकि दोनों स्वतंत्रता के बड़े, समानता के बड़े परिपोषक थे।
जैन और बौद्ध दोनों परेशान रहे हैं कि कैसे इन बातों को छिपाया जाए।
वे उनकी चर्चा नहीं उठाते। लेकिन मैं इसमें बड़ा गहरा कारण देखता हूं। क्योंकि बुद्ध और महावीर जब ऐसी बात कहते हैं तो बड़े अर्थ हैं उनके। एक मनुष्य के मन की बड़ी गहरी बात बुद्ध ने पकड़ी। अगर कोई स्त्री पुरुष को सम्मान दे, तो फिर पुरुष की वासना उसके प्रति बहनी मुश्किल हो जाती है, कठिन हो जाती है। अगर कोई स्त्री तुम्हारे पैर छू ले, तो फिर वासना असंभव हो जाती है--उसने द्वार बंद कर दिया। क्योंकि पुरुष वासना में उसी स्त्री के प्रति झुक सकता है जिसने उसे सम्मान न दिया हो, जिसने उसे आदर न दिया हो। क्योंकि वासना में झुकने का मतलब है पुरुष खुद अपनी ही आंखों में अपने से नीचे गिरता है। इसलिए वेश्या के साथ तुम जितने वासना का संबंध बना सकते हो किसी और के साथ नहीं बना सकते। क्योंकि उसके सामने नीचे गिरने में कोई डर नहीं है। उसने कभी तुम्हें कोई आदर दिया नहीं।
बुद्ध और महावीर ने, दोनों ने पुरुष के अहंकार को पकड़ लिया ठीक जगह, कि उसका अहंकार ही अगर रुक जाए तो ही रुक सकेगा, अन्यथा वासना का प्रवाह हो जाएगा। अगर कोई स्त्री तुम्हें बहुत सम्मान से चरण छू ले, तो उसने तुम्हें इतना सम्मान दिया कि अब तुम्हें इस सम्मान की रक्षा करनी पड़ेगी। अब तुम्हें ऐसा व्यवहार करना पड़ेगा जिसमें उसका दिया गया सम्मान खंडित न हो। अब तुम वासना के तल पर नीचे न उतर सकोगे। उसने रास्ता रोक दिया।
आनंद ने पूछा कि अगर कोई ऐसी घड़ी आ जाए कि स्त्री और पुरुष साथ-साथ हों, भिक्षु-भिक्षुणी साथ-साथ हों, तो एक-दूसरे का स्पर्श? तो बुद्ध ने कहा, नहीं। पुरुष स्त्री को न छुए। स्त्री पुरुष को न छुए। आनंद ने कहा, और अगर कोई ऐसी मजबूरी आ जाए कि भिक्षुणी बीमार हो, या भिक्षु बीमार हो और सेवा करनी पड़े? तो बुद्ध ने कहा, वैसी दशा में छुए, लेकिन होश रखे।
पहले तो देखे न। अगर देखना पड़े, तो छुए न। अगर छूना पड़े तो मूर्च्छा में न रहे, होश रखे। भीतर जागा रहे। क्योंकि मनुष्य के मन की जो वासनाएं हैं उनकी आदत तो बड़ी प्राचीन है, और होश बड़ा नया है। ध्यान तो अभी साधा है, साधना शुरू किया है, और वासना बड़ी प्राचीन है। जन्मों-जन्मों की है। उसके संस्कार बड़े गहरे हैं। और जरा सी भी भूल-चूक हुई, जरा सा भी मन मूर्च्छित हुआ कि वासना के मार्ग से जीवन बहना शुरू हो जाता है, एक क्षण में। इधर तुम भूले, उधर वासना का प्रवाह शुरू हुआ। अगर जागे ही रहो, अगर भीतर होश को रखो, तो ही संभव है कि धीरे-धीरे पुरानी परिपाटी टूटे, पुरानी लीक मिटे, नया रास्ता बने। मार के साथ संबंध पुराने हैं। राम के साथ संबंध बनाने हैं।

"जो असार को सार समझते हैं और सार को असार, वे मिथ्या संकल्प के भाजन लोग सार को प्राप्त नहीं होते।"
अगर तुमने सार को असार समझा है, असार को सार समझा है; अगर ऐसी विपरीत तुम्हारी बुद्धि है, तो फिर तुम कैसे सार को प्राप्त हो सकोगे? तुम तो फिर असार को सार समझकर खोजते रहोगे।
इसलिए तो एक बहुत मजे की घटना जीवन में घटती है। वह घटना यह है कि जब
तक तुम्हें धन नहीं मिलता तब तक पता नहीं चलता कि धन असार है। जब मिलता है तब पता चलता है। ठीक भी है। क्योंकि जब तक मिला नहीं तब तक पता कैसे चले? तब तक तो तुम्हें सार दिखायी पड़ता है। जब मिल जाता है, तब बड़ी मुश्किल खड़ी होती है। क्योंकि जिसको सार मानकर इतने दिन खोजा, इतना श्रम उठाया, इतनी स्पर्धा की, इतने जूझे, इतना जीवन गंवाया, वह जब मिलता है, तब अचानक तुम हैरान हो जाते हो कि सार तो कहीं भी नहीं है। फिर भला तुम दूसरों से न कहो। क्योंकि अब दूसरों से कहकर और फजीहत क्या करवानी है! और दूसरे हंसेंगे। लेकिन तुम्हें समझ में आ जाता है।
इस संसार में जिनको तुम सफल कहते हो, उनको जितनी अपनी असफलता दिखायी पड़ती है उतनी किसी को भी दिखायी नहीं पड़ती। जिनको तुम अमीर कहते हो, उनको जितनी अपनी गरीबी का पता चलता है उतना किसी को भी नहीं चलता। जिनको तुम पंडित कहते हो, उनको जितने अपने अज्ञान का बोध होता है, किसी को भी नहीं होता। कहें भले न। कहने के लिए हिम्मत चाहिए। कहने के लिए बड़ा दुस्साहस चाहिए। क्योंकि कहने का मतलब यह होगा कि मैं अपने पूरे जीवन को व्यर्थ घोषित करता हूं, कि अब तक मैंने जो खोजा, जो मैंने श्रम उठाया, वह दो कौड़ी का साबित हुआ। मैं गलती में था। बड़ा मुश्किल होता है यह मानना कि मैं गलती में था। और सफलता के शिखर पर मानना तो अहंकार के बिल्कुल प्रतिकूल हो जाता है।
लेकिन यही कथा है।
असफल ही सोचता है कि सार होगा धन में, सार होगा पद में। जो पद पर हैं,
जो धन पर हैं, वे नहीं सोचते। सोच ही नहीं सकते। भले दिखावा करते हों, लेकिन भीतर से भवन गिर गया है। ऊपर से साज-सजावट बनाए रखते हों, नींव खिसक गयी है। अगर तुममें थोड़ी भी समझ हो और गहरे देखने की क्षमता हो, तो हर सफल आदमी में तुम असफलता को पाओगे। और हर आदमी की यश-कीर्ति में तुम बड़ा संतप्त हृदय पाओगे, रोता हुआ हृदय पाओगे। मुस्कुराहटों में अगर झांकने की क्षमता आ जाए, तो तुम छिपे हुए आंसू देख पाओगे।
"जो असार को सार समझते हैं और सार को असार, वे मिथ्या संकल्प के भाजन लोग सार को प्राप्त नहीं होते।"
होंगे भी कैसे!
"जो सार को सार जानते हैं और असार को असार, वे सम्यक संकल्प के भाजन लोग सार को प्राप्त होते हैं।"
सार क्या है, इसे जान लेना आधा पा लेना है। क्या है सार? अब तक जिंदगी में तुमने जो खोजा है, उसमें से तुम्हें क्या ऐसा लगता है जिसे सार कहा जा सके? धन खोज लिया; कल तुम मरोगे, वह पड़ा रह जाएगा। जो साथ न जा सके वह सार कैसे होगा? प्रशंसा पा ली, लोगों ने तालियां बजायीं और गजरे पहना दिए। गजरे क्षणभर बाद कुम्हला जाएंगे, तालियों की आवाज हो भी न पाएगी और खो जाएगी। और सारी दुनिया भी ताली बजाए, तो भी सार क्या होगा? मिलेगा क्या? उससे तुम्हें कौन सी जीवन-संपदा उपलब्ध होगी? और फिर भरोसा कहां है? जो आज ताली बजाते हैं, वे कल गाली देने लगते हैं।
असल में जिसने भी ताली बजायी, वह गाली देगा ही। वह बदला लेगा। जब ताली बजायी थी तो वह कोई प्रसन्नता में नहीं बजा रहा था। लोग दूसरों से अपने लिए ताली बजवाना चाहते हैं, तब प्रसन्न होते हैं। तुम भी जब कोई ताली तुम्हारे लिए बजाता है तब तुम प्रसन्न होते हो। जब तुम्हें बजानी पड़ती है, तुम मजबूरी में बजाते हो। शायद इस आशा में बजाते हो कि हम दूसरों के लिए बजाएंगे, तो दूसरे हमारे लिए बजाएंगे। चलो अभी हम तुम्हारे लिए बजाए देते हैं, कल तुम हमारे लिए बजा देना। ऐसा पारस्परिक लेन-देन चलता है। हम

तुम्हारी प्रशंसा कर देते हैं, तुम हमारी कर देना। लेकिन कौन किसी दूसरे के सुख के लिए चेष्टा कर रहा है? लोग अपने सुख की चेष्टा कर रहे हैं। इसलिए जो आदमी भी तुम्हारी प्रशंसा करेगा, वह कभी न कभी बदला लेगा। उसके भीतर कांटा गड़ता ही रहेगा कि प्रशंसा करनी पड़ी। देखेंगे किसी उचित समय पर, जब हमारा हाथ ऊपर होगा और तुम्हारा नीचे होगा। यहां कौन अपना है? इस जिंदगी का कुल हिसाब इतना है--
कुछ हसीं ख्वाब और कुछ आंसू
उम्र भर की यही कमाई है
कुछ सुंदर सपने और कुछ आंसू, उम्रभर की यही कमाई है। सपने देखते रहो, सपनों को संजोते रहो और टूटे सपनों के लिए रोते रहो। इधर टूटे सपने इकट्ठे होते जाते हैं, तुम नए सपने देखते रहो। अतीत तुम्हारा आंसू बनता जाता है, भविष्य हसीन ख्वाब। बस, इन दोनों के बीच में तुम जीते हो। कल जो बीत गया कुछ भी पाया नहीं, रेगिस्तान हो गया। आने वाले कल में तुम मरूद्यान बसाए हो, वह भी कल बीता जाता है। वह भी आज हो गया, वह भी कल हो जाएगा--वह भी जा रहा है। मरते वक्त तुम पाओगे, पूरा जीवन एक रेगिस्तान की यात्रा थी--लंबी, थकान भरी, धूल-धवांस भरी। हार, संताप, चिंता सब था, लेकिन और कुछ हाथ न लगा। धूल हाथ लगी।
कुछ अपना नहीं हो पाता। और जो अपना नहीं है, वह सार नहीं हो सकता। सार
तो वही है जो तुम्हारा हो जाए, तुम्हारे भीतर हो जाए, और कभी तुमसे अलग न हो। जो तुम्हारी सत्ता बन जाए, तुम्हारा अस्तित्व बन जाए। सार की हमारी परिभाषा यही है। असार वही है, जो तुमसे बाहर रहे। आज तुम्हारा है, कल पराया हो जाए। हो ही जाएगा। कल किसी और का था। कोई घर यहां मकान नहीं है। सभी सराय हैं। कल कोई और ठहरा था, आज तुम ठहरे हो, कल कोई और ठहर जाएगा।
दुनिया का एतबार करें भी तो क्या करें
आंसू तो अपनी आंख का अपना हुआ नहीं
अपनी आंख का आंसू भी यहां अपना नहीं होता, और अपना क्या हो सकता है? जिनको हम अपना कहते हैं वे भी अपने नहीं हैं। अपने अतिरिक्त अपना यहां कुछ भी नहीं। स्वयं के अतिरिक्त और कोई संपत्ति नहीं है।
इसलिए जिसने जीवन को स्वयं की खोज में लगाया है; उसने ही सार की खोज में लगाया है। और जो और कुछ भी खोज रहा हो स्वयं को छोड़कर, वह चाहे सारी पृथ्वी की संपदा पा ले, सारा साम्राज्य पा ले, आखिर में पाएगा हाथ खाली हैं। हृदय एक रोता हुआ भिखारी का पात्र है, जिसमें कुछ भी न पड़ा। और जीवन ऐसे ही गया।
जो जितनी जल्दी जाग जाए उतना समझदार है। बुद्धि की और प्रतिभा की यही कसौटी है कि कितनी जल्दी तुम जागे। और थोड़े ही कोई बुद्धिमाप है। पश्चिम में बुद्धिमाप को नापने का ढंग है वह बहुत सस्ता है। हमने पूरब में एक अलग ढंग निकाला था। हम आदमी की प्रतिभा इस बात से मापते थे कि कितनी जल्दी उसने पहचाना कि असार असार है और सार सार है। कितनी जल्दी? जो जितनी जल्दी पहचान लिया, उतना ही प्रतिभाशाली है। जो मरते दम तक नहीं पहचान पाता, जो आखिरी घड़ी आ जाती है और कहे चला जाता है--
गो हाथ को जुंबिश नहीं आंखों में तो दम है
रहने दे अभी सागर-ओ-मीना मेरे आगे
वह प्रतिभाहीन है। वह मूढ़ है। उसमें कोई समझ नहीं है। वह कितना ही समझदार हो दुनिया की नजरों में, वह अपने ही भीतर अनुभव करेगा कि उस समझदारी से उसने दूसरों को धोखा भले दिया हो, अस्तित्व को धोखा नहीं दे पाया। अस्तित्व के सामने तो वह नंगा भिखारी ही रहेगा।
"जो सार को सार जानते हैं और असार को असार, वे ही सम्यक संकल्प के भाजन लोग सार को प्राप्त होते हैं।"
पहचान, पाने का पहला कदम है। हीरा हीरा समझ में आ जाए तो खोज शुरू होती है। पत्थर पत्थर समझ में आ जाए, तो छोड़ना शुरू हो गया, छूट ही गया। ठीक को पहचान लेना, महावीर ने सम्यक ज्ञान कहा है। शंकर ने विवेक कहा है। सम्यक दृष्टि। ठीक से देख लेना, क्या अपना हो सकता है। अपने अतिरिक्त और कुछ अपना नहीं हो सकता है। इसलिए वही खोजने योग्य है।

जीसस ने कहा है, तुम सारे संसार को पा लो और खुद को गंवा दो, तो तुमने कुछ भी नहीं पाया। और तुम खुद को पा लो और सारा संसार गंवा दो, तो तुमने कुछ भी नहीं गंवाया। जो अपना नहीं था, वह अपना था ही नहीं। जो अपना था, वही अपना है।
"जिस तरह ठीक प्रकार से न छाए हुए घर में वर्षा का पानी घुस जाता है, उसी प्रकार ध्यान-भावना से रहित चित्त में राग घुस जाता है।"
"जिस प्रकार ठीक से छाए हुए घर में वर्षा का पानी नहीं घुस पाता है, उसी प्रकार ध्यान-भावना से युक्त चित्त में राग नहीं घुस पाता है।"
राग को तुम छोड़ न पाओगे। ध्यान को जगाना पड़ेगा। इतनी पहचान पहले तुम्हें आ जाए कि क्या व्यर्थ है और क्या सार्थक है, फिर तुम ध्यान को जगाओ। फिर राग को छोड़ने में मत लग जाना। क्योंकि वह भूल बहुतों ने की है। राग को पकड़ो, तो भी राग से उलझे रहोगे; राग को छोड़ो, तो भी राग से उलझे रहोगे। असली सवाल राग का नहीं है।
तो बुद्ध बड़ा ठीक उदाहरण दे रहे हैं। सीधा, सरल; कि ठीक से घर के छप्पर
पर इंतजाम न किया गया हो, खपड़ेल ठीक से न छायी हो, तो वर्षा का पानी घुस जाता है। फिर ठीक से आच्छादित हो घर, खपड़ेल ठीक से साज-संवार कर रखी गयी हो, वर्षा का पानी नहीं घुस पाता। ध्यान से छायी हुई आत्मा में राग प्रवेश नहीं करता। राग घुस रहा है तो इसका इतना ही संकेत समझना कि आत्मा पर ठीक से छावन नहीं की गयी है, ध्यान का छप्पर छेद वाला है।
इसलिए राग को छोड़ने की फिक्र मत करना। वह तो ऐसा ही होगा कि ठीक से घर छाया हुआ नहीं है, वर्षा आ गयी, आषाढ़ के मेघ घिर गए, पानी बरसने लगा और तुम घर का पानी उलीचने में लगे हो। तुम उलीचते रहो पानी, इससे कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि घर का छप्पर नए पानी को लिए आ रहा है। राग को उलीचने से कुछ भी न होगा। छप्पर को ठीक से छा लेना जरूरी है।
इसलिए समस्त प्रज्ञावान पुरुषों का जोर ध्यान पर है। और जो महात्मा तुम्हें साधारणतया समझाते हैं कि राग छोड़ो, गलत समझाते हैं। वे तुमसे कह रहे हैं, पानी उलीचो। नाव में छेद है, वे कहते हैं, पानी उलीचो। पर तुम पानी उलीचते रहो, नाव का छेद नया पानी भीतर ला रहा है। पानी तो उलीचो जरूर, पहले छेद को बंद करो। फिर पानी को उलीचने में कोई कठिनाई न होगी। छप्पर को छा दो, फिर जो थोड़ा- बहुत पानी बचा रह गया है, उसे बाहर कर देने में क्या अड़चन होने वाली है? ध्यान जो साध लेता है, उसका राग अपने आप मिट जाता है। राग से जो लड़ता है, उसका राग तो मिटता ही नहीं, ध्यान भी सधना मुश्किल हो जाता है। मेरे पास रोज लोग आते हैं। वे कहते हैं, किसी तरह क्रोध चला जाए। मैं उनसे कहता हूं, तुम क्रोध की फिकर मत करो, तुम ध्यान करो। वे कहते हैं, ध्यान से क्या होगा? आप तो हमें क्रोध छोड़ने की तरकीब बता दें। ऐसे लोग भी आ जाते हैं, वे कहते हैं, हमें ध्यान-व्यान से कुछ लेना-देना नहीं; हमारा तो मन अशांत है, यह भर शांत हो जाए। अब वे क्या कह रहे हैं, उन्हें पता नहीं! अभी चार दिन पहले एक वृद्ध सज्जन ने कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस मेरे मन में चिंता सवार रहती है, सो नहीं सकता ठीक से, कंपता रहता हूं, डरता रहता हूं, बस यह मेरा मिट जाए। न मुझे मोक्ष चाहिए, न मुझे आत्मा के ज्ञान का कुछ लेना-देना है, न मुझे भगवान का कोई प्रयोजन है, बस मेरी चिंता मिट जाए। अब यह आदमी यह कह रहा है कि यह जो वर्षा का पानी घर में भर गया है, यह भर न भरे। मुझे खप्पर छाने नहीं; मुझे मोक्ष, परमात्मा, आत्मा से कुछ लेना- देना नहीं।
अब कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह समझ ही नहीं रहा है कि बीमारी कहां है।
धन छोड़ने में मत लगना, ध्यान को पाने में लगना। क्योंकि छोड़ने में जो शक्ति लगाओगे उतनी ही शक्ति से ध्यान पाया जा सकता है। मुफ्त तो छोड़ना भी नहीं होता, उसमें भी ताकत लगानी पड़ती है। वह ताकत व्यर्थ गंवा रहे हो तुम। पहला काम है, घर के छप्पर को ठीक से छा लो।
जीवन का एक आधारभूत नियम, एक सारभूत नियम कि गलत को छोड़ने में मत लगना, ठीक को पाने में लगना। अंधेरे को हटाने में मत लगना, दीए को जलाने में लगना। एस धम्मो सनंतनो। यही सनातन धर्म है।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
चौथा प्रवचन

अकंप चैतन्य ही ध्यान

पहला प्रश्नः बुद्ध ने मन को जानने-समझने पर ही सारा जोर दिया लगता है। क्या मन से मनुष्य का निर्माण होता है? आत्मा-परमात्मा की सारी बातें क्या व्यर्थ हैं?

बातें व्यर्थ हैं। अनुभव व्यर्थ नहीं। आत्मा, परमात्मा, मोक्ष शब्द
की भांति, विचार की भांति दो कौड़ी के हैं। अनुभव की भांति उनके अतिरिक्त और कोई जीवन नहीं। बुद्ध ने मोक्ष को व्यर्थ नहीं कहा है, मोक्ष की बातचीत को व्यर्थ कहा है। परमात्मा को व्यर्थ नहीं कहा है। लेकिन परमात्मा के संबंध में सिद्धांतों का जाल, शास्त्रों का जाल, उसको व्यर्थ कहा है। मनुष्य इतना धोखेबाज है कि वह अपनी ही बातों से स्वयं को धोखा देने में समर्थ हो जाता है। ईश्वर की बहुत चर्चा करते-करते तुम्हें लगता है ईश्वर को जान लिया। इतना जान लिया ईश्वर के संबंध में, कि लगता है ईश्वर को जान लिया। लेकिन ईश्वर के संबंध में जानना ईश्वर को जानना नहीं है। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई प्यासा पानी के संबंध में सुनते-सुनते सोच ले कि पानी को जान लिया। और प्यास तो बुझेगी नहीं। पानी की चर्चा से कहीं प्यास बुझी है! परमात्मा की चर्चा से भी प्यास न बुझेगी। और जिनकी बुझ जाए, समझना कि प्यास लगी ही न थी।
तो बुद्ध कहते हैं कि अगर जानना ही हो तो परमात्मा के संबंध में मत सोचो, अपने संबंध में सोचो। क्योंकि मूलतः तुम बदल जाओ, तुम्हारी आंख बदल जाए, तुम्हारे देखने का ढंग बदले, तुम्हारे बंद झरोखे खुलें, तुम्हारा अंतर्तम अंधेरे से भरा है रोशन हो, तो तुम परमात्मा को जान लोगे। फिर बात थोड़े ही करनी पड़ेगी।
ज्ञान मौन है। वह गहन चुप्पी है। फिर तुमसे कोई पूछेगा तो तुम मुस्कुराओगे। फिर तुमसे कोई पूछेगा तो तुम चुप रह जाओगे। ऐसा नहीं कि तुम्हें मालूम नहीं है, वरन अब तुम्हें मालूम है, कहो कैसे? गूंगे केरी सरकरा। कहना भी चाहोगे, जबान न हिलेगी। बोलना चाहोगे, चुप्पी पकड़ लेगी। इतना बड़ा जाना है कि शब्दों में समाता नहीं। पहले शब्दों की बात बड़ी आसान थी। जाना ही नहीं था कुछ, तो पता ही नहीं था कि तुम क्या कह रहे हो। जब तुम ईश्वर शब्द का उपयोग करते हो तो तुम कितने महत्तम शब्द का प्रयोग कर रहे हो, इसका कुछ पता न था। ईश्वर शब्द कोरा था, खाली था। अब अनुभव हुआ। महाकाश समा गया उस छोटे से शब्द में। अब उस छोटे से शब्द को मुंह से निकालना झूठा करना है। अब कहना नहीं है। अब तुम्हारा पूरा जीवन कहेगा, तुम न कहोगे। इसलिए बुद्ध ने कहा, बात मत करो। चर्चा की बात नहीं है। पीना पड़ेगा। जीना पड़ेगा। अनुभव करना होगा। जो जानते नहीं, उनकी बात व्यर्थ है। जो जानते हैं, वे उसकी बात नहीं करते। ऐसा नहीं कि वे बात नहीं करते। बुद्ध ने बहुत बात की है। लेकिन परमात्मा के संबंध में न की। मनुष्य के संबंध में की। मनुष्य बीमारी है। परमात्मा स्वास्थ्य है। बीमारी को ठीक पहचान लो, कारण खोज लो, निदान करो, चिकित्सा हो जाने दो; जो शेष बचेगा बीमारी के चले जाने पर--मनुष्य के तिरोहित हो जाने पर तुम्हारे भीतर जो शेष रह जाएगा--वही परमात्मा है। तुम जब तक हो तब तक परमात्मा नहीं है, तुम लाख सिर पटको, तुम लाख शब्दों का संयोजन जमाओ, तुम लाख भरोसा करो। तुम्हारा भरोसा तुम्हारा ही होगा।
इसे थोड़ा समझना।
तुम कहते हो, मैं श्रद्धा करता हूं। लेकिन मैं की कहीं कोई श्रद्धा होती है! मैं तो मूलतः अश्रद्धालु है। मैं संदेह है। उचित होगा कहना कि जब तक तुम हो तब तक श्रद्धा नहीं है। जब तुम न रहोगे, एक गहन सन्नाटा छा जाएगा, तुम्हारी कोई सीमा पता न लगेगी, तुम ऐसे चुप हो जाओगे जैसे कि कभी बोले ही नहीं, जैसे पत्ता भी नहीं खड़का, ऐसा गहन सन्नाटा तुम्हारे भीतर छा जाएगा;

तुम नहीं रहोगे, तब तुम अचानक पाओगे, श्रद्धा के कमल खिले। श्रद्धा के साज पर गीत उठा। श्रद्धा नाची तुम्हारे भीतर। तुम्हारी मौजूदगी बाधा है।
तो बुद्ध कहते हैं, तुम्हारी चर्चा का सवाल नहीं है, तुम्हारे चुप हो जाने का सवाल है। इसलिए बुद्ध मन की बात करते हैं। मन बीमारी है, ध्यान औषधि है, परमात्मा उपलब्धि है। उपलब्धि की क्या बात करनी। मन की बीमारी को ध्यान की औषधि से मिटा देना, परमात्मा मिला ही हुआ है। बात की तो, न की तो, कोई अंतर नहीं पड़ता। जो नहीं जानते, वे बात करें तो भी क्या बात करेंगे? और जो जानते हैं, वे बात करना भी चाहें तो कैसे करेंगे? ऐसा नहीं कि बुद्ध को बात करना नहीं आता। उन जैसा कुशल बात करने वाला कभी हुआ है? शब्दों से वे खेल सकते हैं। कुशल हैं। लेकिन उनका अंतरबोध उन्हें रोकता है।
पंडित बोले चले जाते हैं। उन्हें पता नहीं, क्या कह रहे हैं। बुद्धपुरुष चुप हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें पता है। इतने पवित्रतम को कहा कैसे जा सकता है? ओठों पर लाकर झूठा हो जाएगा। शब्द बड़े छोटे हैं। विराट को समाएंगे, समाएगा नहीं। ऐसे ही जैसे कोई मुट्ठी में आकाश को बांधने चला हो। मुट्ठी तो बंध जाएगी, आकाश बाहर हो जाएगा। ऐसे ही शब्द तो बंध जाते हैं, परमात्मा बाहर छूट जाता है। परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है। और तुम जो परमात्मा की रटन लगाए रखते हो उससे परमात्मा का कुछ लेना- देना नहीं है। वह तुम्हारे मन की ही बीमारी है।
हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
दिल के बहलाने को गालिब ये ख्याल अच्छा है
तुम्हें अच्छी तरह पता है। तुम्हारा स्वर्ग, तुम्हारा मोक्ष, तुम्हारा परमात्मा, इसकी हकीकत तुम्हें अच्छी तरह मालूम है। यह तुम्हारा परमात्मा कुछ भी नहीं है। सुनी हुई बातचीत है। उड़ी हुई अफवाह है। दूसरों से सुन लिया, गुन लिया, शास्त्रों से पढ़ लिया है। शब्द घुस गया है मन में, संस्कार बन गया है।
हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
और तुम भी जानते हो कि तुम्हारे स्वर्ग का क्या अर्थ है। तुम्हारे ही सपने का विस्तार है। तुम्हें पता है कि तुम्हारा परमात्मा क्या है। वह तुम्हारी ही आकांक्षाओं का पहरेदार है। तुम्हें पता है कि तुमने ये शब्द, ये सिद्धांत क्यों पकड़ रखे हैं। क्योंकि तुम भयभीत हो, अकेले हो, डरते हो, सहारा चाहिए। झूठा ही सही।
हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
दिल के बहलाने को गालिब ये ख्याल अच्छा है
लेकिन इस अकेले में दिल को बहला लेते हैं, किसी से भर लेते हैं। तुम्हारा परमात्मा सच नहीं है। क्योंकि तुम अभी बहुत सच हो। तुम अभी जरूरत से ज्यादा यथार्थ हो। तुम उसे जगह न दोगे। तुम ही तो बाधा बने हो। तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हारे और परमात्मा के बीच और कोई भी नहीं खड़ा है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, मन को समझो। मन यानी तुम। मन यानी मनुष्य। और जहां मन चला गया, वहां ध्यान। और जहां ध्यान, वहां परमात्मा।
तुम्हारे होने के दो ढंग हैं। एक मन और एक ध्यान। तुमने कभी ख्याल किया, जब तुम बीमार होते हो, तब भी तुम ही होते हो। और जब तुम स्वस्थ होते हो, तब भी तुम ही होते हो। तो बीमारी और स्वास्थ्य तुम्हारे दो होने के ढंग हैं। बीमारी बेचैनी है। बीमारी एक पीड़ा है। बीमारी एक दुख है, दर्द है। स्वास्थ्य एक शांति है। जैसे भटका-भूला घर लौट आया। जैसे थके-मांदे को वृक्ष की छाया मिली। स्वास्थ्य सुख है। वह भी तुम्हारे होने का ढंग है। तो एक तो तुम्हारे होने का ढंग मनुष्य है। वह यानी बीमारी, मन। और एक तुम्हारे होने का ढंग ध्यान है, स्वास्थ्य है, परमात्मा है। तुम ही जब स्वस्थ होते हो, परमात्मा हो जाते हो। तुम्हीं जब बीमार होते हो, आदमी हो जाते हो।
लहर शांत है। पूरा चांद आकाश में है। झील पर कोई लहरें नहीं उठतीं। दर्पण बन गयी है झील, चांद पूरा का पूरा दिखायी पड़ता है। फिर हवा का एक झोंका। लहर उठ गयी। झील कंप गयी, दर्पण खंडित हो गया। चांद हजार-हजार टुकड़ों में टूट गया। झील वही है। चांद वही है। लेकिन कंपती हुई झील बीमार

झील है। तुम वही हो। परमात्मा वही है। सत्य वही है। सिर्फ तुम कंप रहे हो।
यह कंपते हुए चैतन्य का नाम मन है। और अकंप चैतन्य का नाम ध्यान है। जब झील चुप हो जाती है, लहर नहीं उठतीं, तुम शांत होते हो।
ऐसा थोड़े ही है कि शांत अवस्था में परमात्मा से मिलन होता है। यह तो
मन की ही बातचीत है। यह तुम साथ मत ले जाना।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, इस चर्चा को मत चलाओ। इससे कुछ लाभ तो होता नहीं, हानि बहुत हो जाती है। इससे किसी की कुछ समझ में तो आता नहीं, नासमझी बहुत बढ़ जाती है। यह बात ही मत चलाओ। बस इतना ही कहो संक्षिप्त में, कि कैसे यह मन शांत हो जाए। कैसे ये लहरें सो जाएं। कैसे झील स्वस्थ हो जाए। कैसे प्रतिबिंब बन सके परमात्मा का उसमें।
प्रतिबिंब, यह भी सब बातचीत है। लेकिन कठिनाई यह है कि किसी भी तरह से
उस तरफ इशारा करो, शब्द को लाना पड़े। मगर असलियत यह है कि जब झील पूरी शांत होती है तो चांद ही हो जाती है। अब इसे कैसे कहो? जब तुम पूरे शांत होते हो तो परमात्मा से मिलना नहीं होता, तुम परमात्मा हो जाते हो। अशांति में तुम मनुष्य समझते हो अपने को, परमात्मा नहीं समझ पाते। कैसे समझोगे? इतनी पीड़ा में, और तुम परमात्मा! इतनी दीनता में, और तुम परमात्मा! मनुष्य दीन है। अपने को ईश्वर कैसे मानेगा। ईश्वर तो तभी मान सकता है जब जीवन में परम ऐश्वर्य प्रगट हो। जब भीतर वैभव उठे। और जब भीतर ऐसी घड़ी आए कि लगे कि सब कुछ तुम्हारा है। सब तुम हो। चांद-तारे तुम्हारे भीतर घूमते हैं। और तुम्हारे ही हाथ के इशारे से जगत चलता है। तुम इस जगत की प्राण-प्रतिष्ठा हो। तुम इसके केंद्र पर हो। तुम ऐसे ही अजनबी नहीं हो। तुम कोई बिन बुलाए मेहमान नहीं हो। तुम घर के मालिक हो। तुम मेहमान नहीं हो, मेजबान हो।
झेन फकीर कहते हैं कि मनुष्य की दो अवस्थाएं हैं। एक, कि वह अपने को अतिथि समझे, गेस्ट। और एक, कि अपने को होस्ट समझे, मेजबान। और इतना ही फर्क है। अभी दुनिया में तुम ऐसे हो जैसे जबर्दस्ती हो। अभी तुम ऐसे हो जैसे बुलाए न गए थे और आ गए हो। अभी तुम ऐसे हो जैसे एक दुश्मन हो। लड़ रहे हो। फिर एक होने का ढंग है शांत। तुम लड़ नहीं रहे हो। तुम मेहमान भी नहीं हो, तुम स्वयं मेजबान हो। तुम्हें किसी ने बुलाया नहीं, तुम मालिक हो। तब तुम्हारे भीतर ऐश्वर्य प्रगट हुआ। परमात्मा प्रगट हुआ।
बुद्ध कहते हैं, तुम्हारा ईश्वर तो ऐसा है जैसे अफवाहें सुनी हों।
हस्ती का शोर तो है मगर एतबार क्या
झूठी खबर किसी की उड़ायी हुई सी है
सुनते तो बहुत हैं परमात्मा की बात।
हस्ती का शोर तो है मगर एतबार क्या
भरोसा कैसे आए? श्रद्धा कैसे हो?
झूठी खबर किसी की उड़ायी हुई सी है
यह परमात्मा एक झूठी खबर मालूम पड़ता है, जो किसी ने उड़ा दी और चल पड़ी।
और एक से दूसरे के हाथ में चली जाती है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को दे जाती है। इस पर भरोसा कैसे आए, एतबार कैसे हो?
तो बुद्ध कहते हैं, इस बात में ही मत पड़ो। परमात्मा पर एतबार नहीं लाना है। परमात्मा पर भरोसा नहीं लाना है। लाओगे भी कैसे? जिसे कभी जाना नहीं, जिसे कभी देखा नहीं, जिसे कभी सुना नहीं, जिसे कभी पहचाना नहीं, जिसका कोई संस्पर्श न हुआ, जो हृदय में कभी विराजा नहीं, जिसकी छाया कभी तुम्हारे जीवन पर न पड़ी, उसका भरोसा कैसे करोगे?
झूठी खबर किसी की उड़ायी हुई सी है
लाख चेष्टा करके भी तो श्रद्धा जमेगी न। जमा भी लो किसी तरह, उखड़ी- उखड़ी रहेगी। और नीचे आधार तो नहीं होगा। बेबुनियाद होगी। इस बेबुनियाद श्रद्धा पर जीकर क्या तुम धार्मिक हो जाओगे, आस्तिक हो जाओगे?
अगर ऐसा ही होता होता तो सारी पृथ्वी आस्तिक है। हर आदमी आस्तिक है। कोई ईसाई है, कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है। पृथ्वी पर नास्तिक तो बड़े थोड़े हैं। और जो नास्तिक हैं, अगर उनको भी तुम गौर से देखो, तुम उनको भी आस्तिक ही पाओगे। बाइबिल को न मानते हों, कुरान को न मानते हों, गीता को न मानते हों, तो दास कैपिटल--मार्क्स की किताब--को मानते हैं। कृष्ण को न

पूजते हों, महावीर को न पूजते हों, तो लेनिन को पूजते हैं। अगर बाइबिल की किताब दबाकर न चलते हों, तो चेयरमैन माओ की लाल किताब को दबाकर चलते हैं। फर्क क्या पड़ेगा? महावीर हों कि माओ, और मोहम्मद हों कि मार्क्स, क्या फर्क पड़ता है?
नास्तिक भी जिनको तुम कहते हो, वे भी आस्था ही रखते हैं, झूठी। वे भी आस्तिक ही हैं। विपरीत खड़े होंगे, पीठ किए होंगे, लेकिन उनकी भी श्रद्धा कहीं है। पर वह श्रद्धा भी बस थोथी है। अनुभव के अतिरिक्त आधार कहीं और है नहीं।
तो बुद्ध ने कहा, अनुभव पर रखो आधार। तत्व-चर्चा मत छेड़ो। जब कि तत्व
को जानने का उपाय है तो व्यर्थ की बकवास क्यों? जब हम जान सकते हैं, आंख हमारे पास है, आंख खुलते ही सूरज के दर्शन हो जाएंगे, तो आंख बंद किए सूरज के संबंध में चर्चा क्यों? और आंख बंद रहे तो सूरज के संबंध में लाख चर्चा चले, सदा लगता ही रहेगा--
झूठी खबर किसी की उड़ायी हुई सी है
आंख खुले तो सूरज सत्य है। फिर सारी दुनिया भी कहती हो कि सूरज नहीं है, तो भी अंतर नहीं पड़ता।
सत्य अनुभव में आ जाए तो स्वयंसिद्ध है। फिर सारी दुनिया इनकार कर दे,
तो भी कोई अंतर नहीं पड़ता। फिर तुम्हें कोई डगमगा नहीं सकता। जो अपने भीतर स्वयं थिर हो गया, उसे कभी कोई नहीं डगमगा पाया है। और तुम अपने भीतर थिर नहीं हो। तुम्हारी थिरता झूठी है। सम्हाली हुई है।
बुद्ध ने अनुभव दिया, सिद्धांत नहीं। बुद्ध ने सत्य देना चाहा, शास्त्र नहीं। बुद्ध ने निःशब्द प्रतीति दी है, सिद्धांतों का जाल नहीं। और उसका एक ही मार्ग है कि तुम्हारे मन को तुम्हारे सामने पूरा का पूरा विश्लिष्ट करके रख दिया जाए। अपने मन को तुम पहचान लो, अपनी बीमारी को जान लो, औषधि है। ठीक निदान हो जाए, ठीक औषधि मिल जाए, तुम वही हो जाते हो जिसकी सदियों से चर्चा करते रहे हो।
बुद्ध दार्शनिक नहीं हैं। बुद्ध वैज्ञानिक हैं।

दूसरा प्रश्नः बुद्ध ने अपने संन्यासियों को आहार-विहार, चर्या और आचरण के सूक्ष्म एवं सविस्तार नियम दिए। जैसे चार हाथ तक ही आगे देखना, भिक्षु-भिक्षुणी का आपस में व्यवहार किस ढंग का हो, क्या खाना, क्या पहनना, कहां जाना, कहां न जाना, आदि। आप अपने संन्यासियों के लिए ऐसा कुछ क्यों निश्चित नहीं करते?

बुद्ध ने नियम दिए। नियम देने पड़ते हैं, क्योंकि तुम्हारे पास होश नहीं है। अगर होश हो तो नियम व्यर्थ हो जाते हैं। और बुद्ध ने भी सारे नियमों के पीछे होश पर ही आग्रह किया।
आनंद पूछता है, कोई स्त्री दिखायी पड़ जाए तो क्या करें? तो बुद्ध ने कहा, नीचे देखना। देखना ही मत। और आनंद पूछता है, और अगर ऐसी स्थिति आ जाए कि देखना ही पड़े, तो क्या करना? तो बुद्ध ने कहा, देखना, मगर छूना मत। और आनंद ने कहा, अगर ऐसी घड़ी आ जाए कि छूना ही पड़े, तो क्या करें? तो बुद्ध ने कहा, होश रखना।
तो आखिर में तो होश ही है। देखना मत, छूना मत, ऊपर-ऊपर हैं। अंतिम घड़ी में तो होश ही है। आनंद ने ठीक किया कि वह पूछता ही गया। बुद्ध का असली अनुशासन क्या है फिर? "देखना नहीं!" तब तो अंधे देखते नहीं, अंधे परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे? "छूना मत!" हाथ कटवा डालो। तो क्या लूले-लंगड़े परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे?
नहीं, अंतिम सूत्र तो बुद्ध ने होश का ही दिया। और अगर होश न हो और तुम आंख भी झुका लो तो क्या फर्क पड़ेगा? आंख बंद में भी तो स्त्री दिखायी पड़ती चली जाती है। रात सपने में दिखायी पड़ती है, तब क्या करोगे? आंख तो बंद ही है। अब सपने में तो कुछ उपाय नहीं और आंख बंद करने का। आंख के भीतर ही चल रही है। फिर क्या करोगे? आनंद की जगह अगर मैं होता तो मैं पूछता, सपने की फिर? सपने में स्त्री दिख जाए, फिर क्या करना? और ऐसे यह भी बड़ा सपना है।

बुद्ध समझते हैं। सपने में स्त्री दिख जाए, फिर क्या करना? फिर कैसे आंख झुकाओगे? आंख झुकी ही हुई है। आंख तो बंद ही है, अब और तो कोई बंद करने का उपाय नहीं।
लेकिन बुद्ध की बात साफ है। बुद्ध ने जो बात कही, उससे सब कोटियों के लिए कह दी। जो अत्यंत जड़बुद्धि हैं, उनसे कहा, आंख झुका लेना। यह जड़बुद्धियों के लिए हुआ। जो इतने जड़बुद्धि नहीं हैं, उनसे कहा, देख भी लेना, तो छूना मत। तो हैं ये भी जड़बुद्धि। अंतिम सूत्र असली सूत्र है। क्योंकि उसके पार फिर कुछ नहीं। वह आखिरी अनुशासन हैः स्मरण रखना, होश रखना।
मैंने दो सूत्र छोड़ दिए। क्योंकि दो हजार, ढाई हजार साल का अनुभव कहता है, उनसे कुछ फल न हुआ। मैं बुद्ध से ढाई हजार साल बाद हूं, तो ढाई हजार साल का कुछ अनुभव भी साथ है। ढाई हजार साल में जो घटा वह साफ है। क्या हुआ? जो ऊपर के नियम थे, वे तो टूट गए। और जो ऊपर के नियमों में उलझे, वे व्यर्थ ही परेशान हुए और नष्ट हो गए। जिन्होंने आखिरी सूत्र पकड़ा, वही बचे।
अब मैं तुम्हें उदाहरण दूं कि कैसे घटना घटती है।
एक गांव में बुद्ध ठहरे। एक भिक्षु भिक्षा का पात्र लेकर लौट रहा था वापस। एक चील के मुंह से मांस का टुकड़ा छूट गया। वह भिक्षापात्र में गिर गया टुकड़ा मांस का। अब बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि मांस खाना नहीं। और बुद्ध ने यह भी कहा है कि भिक्षापात्र में जो भी डाल दिया जाए, उसे अस्वीकार नहीं करना। अब क्या करना? बड़ी दुविधा खड़ी हो गयी। भिक्षु आया। उसने बुद्ध से पूछा, अब क्या करें? दो नियमों में विरोध
हो गया। आप कहते हैं, जो भी भिक्षापात्र में कोई डाल दे उसे इनकार नहीं करना।
यह इसलिए कहना पड़ा कि भिक्षु बड़े कुशल हो जाते हैं। जैन मुनियों को देखो, वे इशारा कर देते हैं कि क्या डालो। इशारा कर दिया कि यह मत डालो। मुंह से न बोलेंगे, हाथ से इशारा कर देंगे। क्योंकि बोलने के लिए महावीर ने मना किया है, मांगना मत! तो वे इशारा कर देते हैं कि यह डाल दो, थोड़ा और ज्यादा डाल दो। मगर मुंह से नहीं बोलते। आखिर बेईमान आदमी के लिए नियम क्या करेंगे? कितने कानून हैं दुनिया में। लेकिन चोर हमेशा कानून में से रास्ता निकाल लेता है। आखिर वकील किसलिए हैं? वे रास्ता निकालने के लिए हैं। वह चोर को बताने के लिए कि बनाने दो नियम उनको। हम बैठे हैं। तुम घबड़ाते क्यों हो? आदमी के मन में तर्क है, वह वकील है। वह रास्ता खोज लेता है।
वह भिक्षु आया। उसने कहा कि यह क्या मामला, अब क्या करना? आपने कहा भिक्षापात्र में जो भी डाल दिया जाए... ।
यह बुद्ध ने इसलिए कहा कि नहीं तो लोग मांगते हैं। और बुद्ध का भिक्षु भिखारी हो जाए, भद्दा है। भिक्षु भिखारी नहीं है। वह कोई मांग नहीं रहा है। दे दो तो भला, न दो तो भला। वह आशीर्वाद ही देगा। और अगर वह मांगने लगे, तो फिर बोझ हो जाता है। किसी गरीब के घर के सामने खड़ा हो जाए, और खीर मांगने लगे, और गरीब न दे सके तो पीड़ा होती है। और दे तो कठिनाई हो जाती है। रूखा- सूखा जो गरीब दे दे, वही ले लेना। न दे, तो मन में कुछ बुराई मत लाना, विरोध मत लाना। इसलिए कहा था। बुद्ध को पता भी न था कि जिंदगी ऐसी है कि अब चील कहीं मांस का टुकड़ा गिरा दे। अपवाद है। कोई रोज चील मांस का टुकड़ा गिराएगी भी नहीं।
लेकिन अब उस बौद्ध भिक्षु ने पूछा, अब क्या करें? और आप कहते हैं, मांस खाना नहीं। अब इन दोनों में विरोध हो गया।
नियमों में हमेशा विरोध हो जाएगा। क्योंकि जिंदगी जटिल है। जिंदगी तुम्हारे नियम मानकर थोड़े ही चलती है। भिक्षु मानता होगा नियम, चील थोड़े ही मानती है। चील थोड़े ही कोई बौद्ध भिक्षु है कि बुद्ध के वचन सुनती है! चील अपनी मौज में होगी, छोड़ गयी। और चील को कोई पता भी नहीं है कि भिक्षु के पात्र में गिर जाएगा। भिक्षु के पात्र में गिराया भी नहीं है।
जीवन में संयोग होते हैं। सिद्धांत नहीं चलते, टूट जाते हैं। संयोग रोज बदल जाते हैं। सिद्धांत अधूरे पड़ जाते हैं। सिद्धांत तो ऐसे ही हैं

जैसे छोटे बच्चे के लिए पैंट-कमीज बनाया। वह बच्चा बड़ा हो गया, अब वह पैंट-कमीज छोटा पड़ गया। अब दो ही उपाय हैं। या तो पैंट-कमीज बड़ा करो, और या फिर बच्चे को दबा-दबा कर छोटा रखो। तो पैंट-कमीज बड़ा करने में कठिनाई मालूम होती है। कौन करे बड़ा? बुद्ध तो जा चुके। तो जो वह नियम दे गए हैं उसको रहने दो, चाहे आदमी को ही छोटा रहना पड़े तो हर्जा नहीं। लेकिन नियम तो नहीं बदला जा सकता। कौन बदलेगा नियम? और एक बार बदलने की सुविधा दो तो फिर कहां रोकोगे?
बुद्ध ने सोचा। बुद्ध अक्सर सोचते नहीं। ऐसा उन्होंने आंख बंद कर ली। उन्होंने बहुत सोचा कि यह मामला तो जटिल है। फिर उन्होंने सोचा, अगर मैं कहूं कि तुम चुनाव कर सकते हो पात्र में से, जो योग्य न हो वह छोड़ दिए, तो वह जानते हैं कि यह तो खतरा हो जाएगा। तो लोग जो नहीं खाना-पीना है वह फेंक देंगे और जो खाना-पीना है वह खा-पी लेंगे। और चुनाव भिक्षु को नहीं करना चाहिए। जो मिल गया भाग्य में, वही ठीक है। फिर अगर यह कहूं कि जो मिल जाए वह खा लेना, तो अब इस मांस के टुकड़े का क्या करना? फिर बुद्ध को ख्याल आया कि चीलें कोई रोज तो गिराएंगी नहीं। अब शायद कभी भी न गिरे। हो गया एक दफे, यह संयोग था। इस एक संयोग के लिए नियम बनाना ठीक नहीं। तो बुद्ध ने कहा कि कोई फिकर न करो, जो पात्र में गिर जाए वह खा लेना। अगर मांस गिर गया तो वह तुम्हारे भाग्य का हिस्सा है।
बुद्ध ने सोचा था, चीलें रोज मांस न गिराएंगी। लेकिन अब बौद्ध भिक्षुओं के पात्र में रोज मांस गिरता है। जापान, चीन, बर्मा--रोज। अब श्रावक गिराते हैं। और चूंकि एक दफा बुद्ध ने आज्ञा दे दी थी कि जो पात्र में गिर जाए वह खा लेना, अब श्रावक मांस डालते हैं, मछली डालते हैं, और भिक्षु खाता है। क्योंकि नियम है। इसलिए दुनिया के बड़े से बड़े अहिंसक विचारक बुद्ध की परंपरा में मांसाहार प्रचलित हो गया। चील ने शुरू करवा दिया।
अंततः तो होश ही काम आएगा। बाकी कोई नियम काम न आएंगे। इसलिए मैंने सारी विस्तार की बातें छोड़ दी हैं। क्योंकि मैं जानता हूं, अगर तुम्हें तोड़ना ही है तो तुम तरकीब निकाल लोगे। तो तोड़ने का भी तुमको कष्ट क्यों देना। और तोड़ने से जो अपराध का भाव पैदा होता है, वह क्यों पैदा करना।
मैं तुम्हें कोई नियम ही नहीं देता। ताकि तुम तोड़ ही न सको। मैं तुम्हें सिर्फ होश देता हूं। सम्हाल सको तो ठीक, न सम्हाल सको तो भी ठीक है। लेकिन बेईमानी पैदा न होगी, पाखंड पैदा न होगा।
मुझे रोकेगा तू ऐ नाखुदा क्या गर्क होने से
कि जिनको डूबना है डूब जाते हैं सफीनों में
मांझी से कह रहा है कवि कि तू मुझे बचा न सकेगा डूबने से। क्योंकि--
कि जिनको डूबना है डूब जाते हैं सफीनों में
नाव में ही डूब जाते हैं। तू बचाएगा कैसे? अगर नदी में डूबने का सवाल होता तो तू बचा लेता। लेकिन जिनको डूबना ही है, वे नाव में ही डूब जाते हैं। फिर तू क्या करेगा?
मुझे रोकेगा तू ऐ नाखुदा क्या गर्क होने से
कि जिनको डूबना है डूब जाते हैं सफीनों में
सारे धर्म सफीनों में डूब गए। नाव में डूबे। नियम बनाया, उसी में डूबे। अब यह बहुत हो चुका। मैं तुम्हें नाव ही नहीं देता। अगर डूबना ही हो तो नदी में ही डूबना। नाव में क्या डूबना! कहने को तो रहेगा कि नदी में डूबे। यह भी क्या बात हुई कि नाव में डूबे। नाव तो बचाने को होती है। जो नाव में डूबते हैं, उन्हीं को हम पाखंडी कहते हैं।
तो मैं तुमसे कहता हूं, कम से कम एक बात साफ रखना। या तो होश सम्हालना,
तो तुम धार्मिक। होश न सम्हाल सको, तो तुम अधार्मिक। मैं दोनों के बीच में कोई जगह नहीं छोड़ रहा हूं। पाखंडी के लिए जगह नहीं छोड़ रहा हूं।
पाखंडी कौन है? वह आदमी पाखंडी है, जो है तो अधार्मिक, लेकिन धार्मिक नियमों को पालकर चलता है। रोज मंदिर जाता है। अधार्मिक कैसे कहोगे? यद्यपि मंदिर में कभी उसने प्रार्थना नहीं की। क्योंकि जिसे प्रार्थना करनी आती हो वह घर ही मंदिर हो जाता है उसका। उसे मंदिर जाने की कोई जरूरत

नहीं रह जाती। वह नियम से भोजन करता है। रात भोजन नहीं करता, दिन भोजन करता है। लेकिन इससे उसकी हिंसा नहीं जाती। शायद हिंसा और बढ़ जाती है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मांसाहारी व्यक्ति कम क्रोधी होते हैं। शिकारी को तुम अक्सर कम क्रोधी पाओगे। क्योंकि उसकी हिंसा निकल जाती है। मार लेता है जाकर जंगल में सिंह को। अब जिसने सिंह को मार लिया, वह तुम्हें मारने को उत्सुक भी नहीं होता। तुम्हें मारना भी क्या! अब कोई बैठे हैं दुकान पर ही माला जप रहे हैं, वह कभी कहीं गए नहीं, किसी को मारा नहीं, कोई झगड़ा-झांसा लिया नहीं, वह तैयार बैठे हैं। वह चींटी पर भी टूट पड़ें, सिंह की तो बात दूर! बहाना भर चाहिए उनको। उनकी हिंसा का निकास नहीं हो पाया। नियम देने का एक ही परिणाम हुआ है संसार में, और वह यह है कि लोग नियम
को पूरा कर लेते हैं और होश को गंवा देते हैं।
जीसस के जीवन में उल्लेख है, एक आदमी आया--निकोडेमस। वह बहुत धनी आदमी था। उसने जीसस से कहा कि मुझे भी बताएं कि मेरे जीवन में क्रांति कैसे हो और मैं परमात्मा को कैसे पाऊं। तो जीसस ने कहा कि जो नियम मूसा ने दिए हैं-- दस नियम, दस आज्ञाएं--उनका पालन करो। तुम पढ़े-लिखे हो, तुम्हें पता है। उसने कहा कि मैं उनका अक्षरशः पालन करता हूं, फिर भी जीवन में कोई क्रांति नहीं हुई। न मैं चोरी करता। न मैं किसी स्त्री की तरफ बुरे भाव से देखता। दान देता हूं, प्रार्थना करता हूं, पूजा करता हूं। जैसा धार्मिक जीवन होना चाहिए, निभाता हूं। लेकिन कोई क्रांति नहीं होती।
तो जीसस ने कहा, ठीक है। तब तुम एक काम करो। तुम्हारे पास जो भी है, तुम जाओ घर, उसे बांट आओ और मेरे पीछे चलो।
उस आदमी ने कहा, यह जरा मुश्किल है। तुम्हारे पीछे चलना, और सब बांट कर? वह आदमी उदास हो गया। वह बड़ा धनी था। उसने कहा कि नहीं; कोई ऐसी बात बताओ जो मैं कर सकूं।
जीसस ने कहा, जो तुम कर सकते हो उससे तुम बदलोगे न। क्योंकि वह तो तुम
कर ही रहे हो। अब मैं तुमसे वह कहता हूं, जो तुम कर नहीं सकते। अगर किया, तो बदल जाओगे। अगर नहीं किया, तो तुम जैसे हो वैसे हो। जाओ सब बांट दो। उसने कहा, मेरे पास बहुत धन है। इतने कठोर मत हों। और अभी बहुत काम उलझे हैं, मैं एकदम आपके पीछे आ नहीं सकता। जीसस ने अपने शिष्यों की तरफ देखा और वह प्रसिद्ध वचन कहा, जो तुमने बहुत बार सुना होगा, कि सुई के छेद से ऊंट निकल जाए लेकिन धनी आदमी स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर सकेगा।
धनी नियम तो पाल लेता है, लेकिन धार्मिक नहीं हो पाता। धनी को सुविधा
है नियम पालने की। वह रोज दिन में तीन दफे मंदिर जा सकता है, या पांच दफे नमाज पढ़ सकता है। गरीब तो पांच दफे नमाज भी नहीं पढ़ सकता। फुर्सत कहां है? समय कहां? मंदिर कैसे जाए? दफ्तर जाए, फैक्ट्री जाए, खेत पर जाए कि मंदिर जाए। रोज गीता नहीं पढ़ सकता। समय कहां? भजन नहीं कर सकता, क्योंकि पेट में भूख है। धनी तो भजन कर सकता है, पूजा कर सकता है। खुद न भी करने की इच्छा हो तो नौकर रख सकता है। मजदूर रख सकता है पूजा करने को। नौकर-चाकर रखे हैं लोगों ने, उनको पुजारी कहते हैं। उनसे कहते हैं, तुम पूजा कर दो। उनको तनख्वाह मिलती है। पूजा का फल मालिक को मिलता है। नौकर रख ले सकते हो। कितनी बेहूदगी की बात है। प्रेम और पूजा के लिए भी नौकर! उसे भी तुम दूसरे से करवा लेते हो पैसे के बल पर। तो अगर तुमने एक पुजारी को सौ रुपया महीना दिया, और उसने रोज आकर तीन दफा भगवान की पूजा की, तो अगर ठीक से समझो तो हिसाब ऐसा है कि तुमने भगवान को सौ रुपए दिए। और क्या दिया? तुम्हारे पास थे, तुम दे सकते थे। और शायद यह सौ रुपए देकर तुम करोड़ों पाने की आकांक्षा कर रहे हो। यह भी शायद रिश्वत है।
नियम तो पूरे किए जा सकते हैं। नियम के पूरे करने से कोई धार्मिक नहीं होता। पाखंडी हो जाता है, हिपोक्रेट हो जाता है।
इसलिए मैंने कोई नियम तुम्हें नहीं दिए। या तो तुम धार्मिक होओ, या अधार्मिक। बीच की मैंने तुम्हें सुविधा नहीं दी है। इसलिए मैं तुम्हें वही आखिरी बात कहता हूं जो बुद्ध ने आनंद को कही, होश साधना। आंख बंद करना, न करना; क्या फर्क पड़ता है। मेरी दृष्टि में ऐसा है कि अगर तुमने होश साधा-- आंख खुली रखो, स्त्री को छुओ, धन कमाओ, मकान में रहो, बाजार में बैठो, कोई

अंतर नहीं पड़ता। होश न सधा--आंख बंद रखी, जंगल में भाग गए, धन न छुआ, नंगे खड़े हो गए, सब त्याग दिया, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। होश से ही क्रांति होती है।
इसलिए होश अकेला नियम है, एकमात्र नियम। एस धम्मो सनंतनो। यही एकमात्र सनातन नियम है। यही एकमात्र सनातन धर्म है कि तुम जागकर जीना, और मैं तुमसे कुछ भी नहीं मांगता। विस्तार की बातों में तो तुम बहुत बार धोखा दे गए हो। मैं तुम्हें विस्तार का मौका ही नहीं देता। बस एक छोटा सा शब्द देता हूंः अवेयरनेस, होश। ताकि तुम साफ रहो। सधे तो साफ रहो, न सधे तो साफ रहो। दोनों के बीच में धोखा देने की सुविधा नहीं देता।
इसलिए मैंने कोई नियम नहीं दिए। तुम यह मत समझना कि मैंने नियम नहीं दिए। नियम दिया है। नियम नहीं दिए हैं। और नियम काफी है। कहावत है, सौ सुनार की एक लुहार की। मेरा नियम लुहार वाला है। डिटेल्स और विस्तार की बातों में मैं नहीं पड़ा हूं। क्योंकि तुम उनमें काफी कुशल हो गए हो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान तो ठीक, लेकिन कुछ और बताएं
कि हम क्या करें, क्या खाएं, क्या पीएं, क्या पहनें, कब सोएं, कब जागें? ये व्यर्थ की बातें तुम्हीं सोच लेना। तुम सिर्फ ध्यान करो। अगर तुम्हारा मन शांत और जागरूक होता जाए, तो तुम खुद ही पाओगे कि और नियम अपने आप उसके पीछे आने लगे।
होशपूर्ण व्यक्ति अपने आप शराब न पीएगा। क्योंकि शराब तो होश के विपरीत है। वह तो होश को नष्ट कर देगी। उसे नियम देने की जरूरत नहीं कि शराब मत पीयो। होशपूर्ण व्यक्ति अपने-आप मांसाहार छोड़ देगा। क्योंकि जिसको जरा सा भी होश आया उसे इतना न दिखायी पड़ेगा कि दूसरे का जीवन लेना सिर्फ पेट भरने के लिए! अगर इतना भी न दिखायी पड़े होश में तो वह होश दो कौड़ी का है। उसका क्या मूल्य है? होशपूर्ण व्यक्ति क्या चोरी करेगा? किसी की जेब काटेगा? होशपूर्ण व्यक्ति को अणुव्रत देने की जरूरत नहीं है कि चोरी मत करो, हिंसा मत करो, बेईमानी मत करो। ये विस्तार की बातें तो इसीलिए देनी पड़ती हैं कि होश नहीं है, होश खो गया है। और ये सब तुम पूरी कर सकते हो। इनमें कुछ अड़चन नहीं है। तुम दान कर सकते हो, ईमानदारी कर सकते हो, सेवा कर सकते हो, बस एक चीज में अड़चन आती है--तुम होश नहीं साध सकते।
और अगर मैं तुम्हें एक हजार एक विस्तार की बातें दे दूं, तो तुम कहोगे,
एक हजार एक में से एक हजार का तो हम पालन कर रहे हैं, अगर एक ध्यान का नहीं भी कर रहे, तो क्या हर्जा है?
मैं तुम्हें एक ही देता हूं, ताकि जीवन-स्थिति साफ रहे। पाखंड के पैदा होने का उपाय न हो। मैं तुम्हें नियम नहीं देता, ताकि तुम नियम तोड़ न सको। मैं तुम्हें नियम नहीं देता, ताकि तुम नियम पालकर धोखा न दे सको। मैं तुम्हें नियम नहीं देता, सिर्फ एक सूत्र देता हूं। शास्त्र नहीं देता, सिर्फ सूत्र देता हूं--होश।
महावीर से किसी ने पूछा है, साधु कौन, असाधु कौन? तो महावीर ने वह नहीं कहा जो जैन-मुनि कह रहे हैं--कि जो दिन को भोजन करे वह साधु, जो रात को भोजन करे वह असाधु; जो पानी छानकर पीए वह साधु, जो पानी छानकर न पीए वह असाधु। नहीं, महावीर ने विस्तार की बातें न कहीं। महावीर ने एक लुहार की बात कही। महावीर ने कहा, असुत्ता मुनिः सुत्ता अमुनिः। जो सोया-सोया जी रहा है, वह असाधु; जो जागा-जागा जी रहा है--असुत्ता--वह साधु, वह मुनि।
यही मैं तुमसे कहता हूं। यही बुद्ध ने भी कहा है। लेकिन पच्चीस सौ वर्ष का अनुभव मेरे पास है जो उनके पास नहीं था। अगर आज बुद्ध हों तो वे यह नहीं कहेंगे कि पहले देखना मत, छूना मत। आज वे पहले ही कह देंगेः आनंद, अब व्यर्थ की बकवास में न जा--तू इतने प्रश्न पूछे, फिर मैं असली बात कहूं-- पहले ही कहे देता हूं, होश रखना।

तीसरा प्रश्नः बुद्ध कहते हैं, अल्पतम पर, अत्यंत जरूरी पर ही जीयो।
आप कहते हैं, कंजूसी से, कुनकुने मत जीयो, अतिरेक में जीयो। हम दोनों के बीच कैसा तालमेल बिठाएं?

तालमेल बिठाने को कहा किसने? बुद्ध ठीक लगें, बुद्ध की बात मान लो। मैं ठीक लगूं, मेरी बात मान लो। तालमेल बिठाने को कहा किसने? एलोपैथी, होमियोपैथी में तालमेल बिठालना भी मत। तालमेल की चिंता बड़ी गहरी है तुम्हारे मन में, कि किसी तरह तालमेल बिठा लें। तुम्हें लेना-देना क्या है तालमेल से? जो दवा तुम्हारे काम पड़ जाए, उसे स्वीकार कर लेना। तुम्हें कोई सारी दुनिया की पैथीज में तालमेल थोड़े ही बिठालना है।
बुद्ध ने कहा है, जीयो न्यूनतम पर, यह एक छोर। क्योंकि छोर से ही छलांग लगती है। किसी चीज के मध्य से न कूद सकोगे, छोर पर आना पड़ेगा। अगर इस छत से कूदना है, तो कहीं भी छोर पर आना पड़ेगा, वहां से छलांग लगेगी। हर चीज के दो छोर हैं।
बुद्ध ने कहा, अल्पतम, न्यूनतम, कम से कम पर आ जाओ, वहां से छलांग लग जाएगी। मैं कहता हूं, अतिरेक। अंतिम पर आ जाओ, वहां से छलांग लग जाएगी।
बुद्ध कहते हैं, दीन, दरिद्र, भिक्षु हो जाओ। मैं कहता हूं, सम्राट बन जाओ।
मगर दोनों छोर हैं। बुद्ध कहते हैं, इधर हट आओ। मैं कहता हूं, उधर बढ़ जाओ।
तालमेल मत बिठालना। नहीं तो तुम बीच में खड़े हो जाओगे। तुम कहोगे, अब
यह भी कहते हैं कि बिल्कुल छोड़ दो। मैं कहता हूं, कुछ छोड़ने की जरूरत नहीं।
तुम कहोगे, आधा पकड़ो, आधा छोड़ो। इधर बीच में खड़े हो जाओ। यह समन्वय, यह तालमेल तुम्हें मार डालेगा। कोई जरूरत नहीं है तालमेल बिठालने की। बुद्ध परिपूर्ण हैं। मेरी बात जोड़ने से कुछ फायदा न होगा, नुकसान होगा। प्रत्येक व्यवस्था पूरी है। बुद्ध ने जो दिया है, वह पूरी व्यवस्था है। उसमें रत्तीभर कमी नहीं है। वह यंत्र अपने आप में परिपूर्ण है। मेरी बातों को उसमें मत जोड़ देना। मैं तुम्हें जो दे रहा हूं, वह परिपूर्ण है। उसमें बुद्ध को कुछ जोड़ने की जरूरत नहीं है।
दुनिया के सारे धर्म अपने आप में पूरी इकाई हैं। और झंझट तब खड़ी होती
है, जब तुम्हें कोई समझाने वाला मिल जाता है और कहने लगता है, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सनमति दे भगवान। तब तालमेल शुरू हुआ। उपद्रव शुरू हुआ। अल्लाह पर्याप्त है। उसमें राम को जोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं। राम पर्याप्त हैं। उसमें अल्लाह को जोड़ने की कोई जरूरत नहीं।
और महात्मा गांधी भी जोड़ न पाए, कहते रहे। जुड़ सकता नहीं। मरते वक्त
जब गोली लगी, तो अल्लाह न निकला, राम निकला। उस वक्त दोनों निकल जाते, अल्लाहराम! वह नहीं हुआ। वे जुड़ते नहीं। वे इकाइयां अलग-अलग हैं। मरते वक्त जब गोली लगी, तब वह भूल गए, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम। तब राम ही निकला। वही निकट था। अल्लाह तो राजनीति थी। राम हृदय था। अल्लाह तो जिन्ना को समझाने को कहे जाते थे। भीतर तो राम की ही गूंज थी। और जिन्ना को यह चालबाजी दिखायी पड़ती थी, इसलिए उसको कुछ असर न पड़ा।
मेरे पास तुम तालमेल बिठालने की बात ही छोड़ दो। मैं कोई समन्वयवादी नहीं हूं। मैं कोई सारे धर्मों की खिचड़ी नहीं बनाना चाहता हूं। प्रत्येक धर्म का भोजन अपने आप में परिपूर्ण है। वह तुम्हें पूरी तृप्ति देगा। जब मैं बुद्ध पर बोल रहा हूं, या जब मैं ईसा पर बोलता हूं, या महावीर पर बोलता हूं, तो मेरा प्रयोजन यह नहीं कि तुम इन सबको जोड़ लो। इन पर मैं अलग-अलग बोल रहा हूं इसीलिए, ताकि हो सकता है किसी को बुद्ध की बात ठीक पड़ जाए, किसी को महावीर की ठीक पड़ जाए, किसी को कृष्ण की ठीक पड़ जाए। जिसको जहां से ठीक पड़ जाए। रास्ते थोड़े ही गिनने हैं। गुठलियों का थोड़े ही हिसाब रखना है। आम खाने हैं। तो तुम तालमेल बिठाओगे किसलिए?
तुम्हें बुद्ध की बात जमती है, फिक्र छोड़ो मेरी। कुछ लेना-देना नहीं मुझसे फिर। फिर तुम उसी मार्ग पर चले जाओ। वहीं से तुम्हें परमात्मा मिल जाएगा। वह रास्ता परिपूर्ण है। उसमें रत्तीभर जोड़ना नहीं है।
अगर तुम्हें बुद्ध की बात नहीं जमती, मेरी बात जमती है, तो भूल जाओ सब बुद्धों को। क्योंकि उनकी याददाश्त भी बाधा बनेगी।
और मन का एक बड़े से बड़ा उपद्रव यही है कि वह कभी किसी एक दिशा के प्रति पूरा समर्पित नहीं होता। एक कदम बाएं जाते हो, एक कदम दाएं जाते हो, कभी आगे जाते, कभी पीछे जाते। जिंदगी के आखिर में पाओगे, वहीं खड़े-खड़े घिसटते रहे हो जहां पैदा हुए थे।

गति ऐसे नहीं होती। गति तो एक दिशा में होती है। चुन लिया पश्चिम, तो पश्चिम सही। फिर भूल जाओ बाकी तीन दिशाएं हैं भी। माना कि हैं। और कुछ लोग उन दिशाओं में भी चल रहे हैं, वह भी माना। लेकिन वे दिशाएं तुमने छोड़ दीं। तुम अब पश्चिम जा रहे हो, तो तुम पश्चिम ही जाओ। ऐसा न हो कि एक हाथ पूरब जा रहा है, एक पश्चिम जा रहा है। एक टांग दक्षिण जा रही है।
तालमेल तो न बैठेगा, उस तालमेल की चेष्टा में तुम बुरी तरह खंडित हो जाओगे। और यही गति मनुष्य की हो गयी है। आज से पहले, जब दुनिया इतनी एक-दूसरे के करीब न थी, और जमीन एक छोटा सा गांव नहीं हो गयी थी, और जब एक धर्म से दूसरा धर्म परिचित नहीं था, तब बहुत लोगों ने परमज्ञान को पाया। जैसे- जैसे जमीन सिकुड़ी और छोटी हुई, और एक-दूसरे के धर्म से लोग परिचित हुए, वैसे ही धार्मिकता कम हो गयी। उसका कारण यह है कि सभी के मन में सभी दिशाएं समा गयीं। कुरान भी पढ़ते हो तुम, गीता भी पढ़ते हो। न तो गीता में डूब पाते, न कुरान में डूब पाते। जब कुरान पढ़ते हो तब गीता की याद आती है, जब गीता पढ़ते हो तब कुरान की याद आती है। और तालमेल बिठालने में लगे रहते हो। नहीं, दुनिया का प्रत्येक धर्म अपने आप में समग्र है। न उसमें कुछ घटाना है, न उसमें कुछ जोड़ना है। वह पूरी व्यवस्था है। तुम्हें जंच जाए, उसमें उतर जाना है। और बाकी सबको भूल जाना है। यही तो अर्थ है गुरु चुनने का कि तुमने देख लिया, पहचान लिया; खोजा, सोचा, चिंतन किया, मनन किया, पाया कि किसी से मेरा तालमेल बैठता है।
दो व्यवस्थाओं में तालमेल नहीं बिठालना है। तुममें और किसी व्यवस्था में तालमेल बैठ जाए इसकी समझ पैदा करनी है कि हां, इस आदमी से मन भाता है, रस लगता है। और हर आदमी को अलग-अलग रस लगेगा।
अब मीरा को तुम बुद्ध में लगाना चाहो तो न लगा सकोगे। और अगर तुम सफल
हो जाओ, तो मीरा का दुर्भाग्य होगा; वह भटक जाएगी। उसे तो कृष्ण से ही लग सकता था। नाच उसके रोएं-रोएं में समाया था। बुद्ध उस नाच को मुक्त नहीं कर सकते थे। बुद्ध की व्यवस्था में नाच की सुविधा नहीं है। वह उनके लिए है, जो नाच छोड़ने में रस रखते हैं। वह उनके लिए है, जो गति छोड़ने में रस रखते हैं। मीरा को न जमती बात। बुद्ध की कोई बांसुरी ही नहीं है। बुद्ध के पास नाचने में बात बे-मौजूं होती।
बुद्ध की मूर्ति के पास नाचोगे तो तुम्हें भी अजीब सा लगेगा, असंगत लगेगा। यह मूर्ति नाचने के लिए नहीं है। इस मूर्ति के पास तो चुप होकर बैठ जाना है। इसके पास तो पत्थर हो जाना है। इसके पास तो ऐसे अकंप हो जाना है कि पता ही न चले कि तुम आदमी हो कि संगमरमर हो। तो ही तुम बुद्ध के रास्ते पर जा सकोगे।
अगर नाचने की थोड़ी भी भावदशा हो तो कृष्ण को देखना। फिर वहां मोर-मुकुट वाले कृष्ण से कुछ बात बन सकती है। वह आदमी इसीलिए है। उनकी बांसुरी फिर तुम्हारे भीतर छिपे नाच को मुक्त कर देगी। और मुक्ति का कोई अर्थ नहीं होता। मुक्ति का यही अर्थ होता है, तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो जाए, खिल जाए। अगर तुम एक कमल अपने भीतर छिपाए हो, तो वह खिल जाए हजार-हजार पखुड़ियों में, उसकी सुगंध लुट जाए हवाओं में। अगर तुम नाच छिपाए हो तो नाच प्रकट हो जाए। अगर कोई गीत अनगाया पड़ा है तो गा दिया जाए। अगर कोई मौन सधने को बैठा है, तो सध जाए। तुम्हारी जो नियति है वह पूरी-पूरी उपलब्ध हो जाए। हर आदमी की अलग-अलग नियति है। हर आदमी का अलग-अलग ढंग है। हर आदमी अनूठा है, बेजोड़ है। इसलिए तुम्हें अपना तालमेल किससे बैठ सकता है--किस गुरु से, किस शास्ता से, किसका अनुशासन तुम्हें मौजूं आता है। और अगर तुम इसमें जरा भी भूल-चूक किए तो बड़ी उलझन में पड़ जाओगे। तुम एक खिचड़ी बन जाओगे। तुम्हारे भीतर बहुत सी चीजें होंगी, लेकिन सब खंड-खंड होंगी। और तुम्हारे भीतर एक प्रतिमा निर्मित न हो पाएगी।
तुम थोड़ा सोचो, बुद्ध की गर्दन हो, कृष्ण के पैर हों, महावीर का हृदय हो, जीसस के हाथ हों, मोहम्मद की वाणी हो, सब गड़बड़ हो जाएगा, तुम पागल हो जाओगे। एकदम पागल हो जाओगे। तुम मुक्त तो न हो पाओगे, विक्षिप्त हो जाओगे।

इसलिए दुनिया के सारे धर्मों ने एक बात पर जोर दिया है कि अगर यह बात ठीक लगती है, तो बस पूरा समर्पण चाहिए। ठीक नहीं लगती है, कहीं और खोज लो।
असली सवाल पूरा समर्पण है। जहां भी जाओ, पूरा समर्पण कर दो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम तो सभी गुरुओं के पास जाते हैं।
सभी गुरु समान हैं। बड़ी ज्ञान की बातें कर रहे हैं वे, कि जो आप कहते हैं वही तो वे भी कहते हैं। न वे मुझे समझते हैं, न वे किसी और को समझते हैं कुछ। उन्होंने अभी समझा ही नहीं। यह तो अंतिम बात है।
मंजिल पर सभी गुरु एक हैं, मार्गों पर एक नहीं हैं। और जिसको चलना है, उसको मंजिल का सवाल नहीं है, मार्ग का सवाल है। अंत में पहुंचकर एक हैं। कृष्ण की बांसुरी का गीत भी वहीं पहुंचा देगा, जहां बुद्ध का मौन पहुंचाता है। लेकिन यह मंजिल की बात है। तुम वहां नहीं हो। भूलकर वहां अपने को समझ मत लेना। जहां नहीं हो, वहां समझने से कुछ लाभ नहीं। जहां हो, तुम जहां खड़े हो, वहां से रास्ता चाहिए, मंजिल नहीं। वहां तो अल्लाह अलग है, राम अलग है। हां, मंजिल पर जो पहुंच गए हैं वहां सब एक है। लेकिन वहां कोई भजन थोड़े
ही कर रहा है, अल्लाह ईश्वर तेरे नाम। मंजिल पर तो सब खो गया। वहां अल्लाह भी खो गए हैं, राम भी खो गए। जब अल्लाह ही मिल गया, राम ही मिल गया, तो फिर न राम बचे न अल्लाह बचे। वहां तो सब शास्त्र खो जाते हैं। लेकिन वह उपलब्धि की बात है।
तालमेल तुम बिठालना मत। मेरी तो दृष्टि यही है कि तुम भरपूर जीओ। तुम ऐसे जीओ जैसे बाढ़ आयी नदी होती है। तुम जीवन को उसकी त्वरा में जीओ। तुम ऐसे जीओ जैसे किसी ने मशाल को दोनों तरफ से जलाया हो। तुम जीने में कंजूसी मत करो।
मैं तुमसे त्याग को नहीं कहता। मैं तुमसे कहता हूं, तुम भोग में इतने गहरे उतरो कि भोग का अनुभव ही त्याग बन जाए। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। तुम ऐसा भोगो कि तुम जान लो कि भोग व्यर्थ है। और भोग छोड़ना न पड़े। तुम्हारा ज्ञान ही भोग का छूटना हो जाए। तुम जीवन से भागो मत, भगोड़े मत बनो। तुम जीवन में जमकर खड़े हो जाओ, ताकि जीवन से आंखें मिल जाएं और तुम जीवन को पूरी तरह देख ही लो कि यह सपना है। फिर सपने को छोड़ना थोड़े ही पड़ता है, सपना तो छूट ही गया। जो व्यर्थ है, दिखायी पड़ते ही कि व्यर्थ है, गया। छोड़ने का अगर फिर भी सवाल रहे, तो समझना अभी व्यर्थता दिखायी नहीं पड़ी। अभी थोड़ी सार्थकता दिखायी पड़ती है। इसलिए छोड़ने का सवाल है। सार्थक को छोड़ना पड़ता है। व्यर्थ छूट जाता है।
तो मैं तुमसे कहता हूं, जीवन को उसकी परिपूर्णता में जानो। तुम बहुत बार अनेक लोगों के प्रभाव में आ गए हो, और कच्चे ही जीवन को छोड़कर भाग गए हो। यह कोई पहला मौका नहीं है। क्योंकि जमीन पर तुम नए नहीं हो। बड़े प्राचीन हो। बहुत बार बहुत बुद्धों के प्रभाव में तुम आ गए हो। जो बुद्ध को घटा था वह तो परिपूर्ण जीवन से घटा था। यह थोड़ा समझो।
बुद्ध तो सम्राट थे। सुंदरतम स्त्रियां उनके पास थीं। और अगर उतनी सुंदर स्त्रियों के बीच उन्हें दिखायी पड़ गया कि सौंदर्य सब सपना है, तो कुछ आश्चर्य नहीं। अब एक भिखारी है, जिसने स्त्रियों को केवल दूर से देखा है। जिसे कोई स्त्री उपलब्ध नहीं हुई। या उपलब्ध भी हुई हो तो एक साधारण सी स्त्री उपलब्ध हुई है, जिसमें स्त्री होना नाममात्र को है, जिससे उसके सपने नहीं भरे; न हृदय भरा, न प्राण तृप्त हुए, न भोग गहरा गया। आकांक्षा घूमती रही, भटकती रही सब तरफ। हजार-हजार चेहरे आकांक्षा में उभरते रहे, सपनों में जगते रहे।
अब यह बुद्ध की बातें सुन ले यह आदमी। तो बुद्ध प्रभावी हैं, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। उस ज्ञान की अवस्था में आदमी में एक जादू हो जाता है। वह जिसकी तरफ देख ले, वही खिंचा चला आता है। वह जिसको छू दे, उसी के भीतर एक नया आयाम खुल जाता है।
तुमने बुद्ध को सुन लिया, और बुद्ध ने कहा कि सब व्यर्थ है। बुद्ध यह जानकर कह रहे हैं, धन उन्होंने जाना है कि व्यर्थ है। तुमने केवल धन की कामना की है, जाना-वाना नहीं कि व्यर्थ है। जानने के लिए तो होना पहले चाहिए। वह है ही नहीं तुम्हारे पास। भिक्षापात्र लिए खड़े हो। सम्राट थे

बुद्ध। वे छोड़कर रास्ते पर आ गए। तुम रास्ते पर ही थे, और तुमने बुद्ध की वाणी सुन ली, और तुम प्रभावित हो गए, तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हारा त्याग बुद्ध का त्याग नहीं हो सकता। तुम्हारे त्याग में भोग छिपा ही रहेगा। तब क्या होगा? तब यह होगा कि तुम त्याग भी करोगे और सोचोगे, त्याग के बाद स्वर्ग मिलने वाला है। स्वर्ग में भोगेंगे अप्सराएं, महल। तुम्हारे ऋषि-मुनि यही कर रहे हैं। इंद्र अगर उनसे डर जाता है तो अकारण नहीं। क्योंकि वे मुक्त होने की इच्छा नहीं रखे हुए हैं, वे इंद्र के सिंहासन पर बैठने की इच्छा लिए बैठे हैं। इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है पुराणों में, वह तो प्रतीक है। वह यह बता रहा है कि ऋषि-मुनि वस्तुतः ऋषि-मुनि नहीं हैं। वे भी आकांक्षा कर रहे हैं स्वर्ग में सिंहासन की। और जहां आकांक्षा है, वहां प्रतिस्पर्धा है। और जो पहले से सिंहासन पर बैठा है वह जरूर घबड़ाएगा। अब तुम अगर राष्ट्रपति होना चाहो तो राष्ट्रपति घबड़ाएगा, कि ये आने लगे सज्जन, डरो! अब तुम अगर अप्सराओं की कामना करने लगे कि उर्वशी को भोगना है, तो इंद्र घबड़ाएगा। उसकी उर्वशी छीनने की चिंता में तुम लगे हो। वह तुम्हें डंवाएगा, डिगाएगा, आएगा।
पुराण की कथाएं अर्थपूर्ण हैं। वे इतना ही कह रही हैं कि ऋषि अभी ऋषि नहीं। अन्यथा इंद्र को क्या प्रतिस्पर्धा उससे होती? यह मुक्त होना ही नहीं चाहता था। यह तो त्याग का सौदा कर रहा है। यह जो संसार में नहीं पा सका, संसार छोड़कर पाने की कोशिश कर रहा है। पर इसकी आकांक्षा तो वही की वही है।
वासना बिना पके नहीं मरती। और जब पककर मरती है तभी मरती है। फिर पीछे दाग भी नहीं छोड़ जाती। तब तुम ऐसे निर्दोष निकलते हो, ऐसे ताजे, जैसे सुबह-सुबह अभी-अभी खिला हुआ फूल हो।
तो मैं तुमसे कहता हूं, भागना मत। जीवन को जानना है, जीना है। मैं कोई चार्वाकवादी नहीं हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जीवन के पार कुछ भी नहीं है। मैं कह रहा हूं, जीवन के पार कुछ है, लेकिन जीवन तो पार करो पहले। जीवन के पार जो है वह तभी दिखायी पड़ेगा जब जीवन से पार हो जाओगे। आधे से भाग गए, सीमा तक न पहुंचे और भाग गए, तो तुम जीवन में ही भटकते रहोगे। सीमा के पार ही अतिक्रमण संभव है
तो मेरी दृष्टि भोग के माध्यम से त्याग तक जाने की है। और दूसरा कोई माध्यम इतना कारगर नहीं है। इसलिए बुद्ध तो होते हैं, लेकिन कितने लोग उनके पीछे बुद्धत्व को उपलब्ध हो पाते हैं? ना के बराबर। क्योंकि दिशाएं बड़ी भिन्न-भिन्न हैं। बुद्ध तो महल छोड़कर भिखारी होते हैं। और दूसरा आदमी भिखारी ही था और बुद्ध के पीछे हो लेता है। उन दोनों के अनुभव अलग हैं। बुद्ध के त्याग में तो भोग का अनुभव छिपा है। भिखारी के त्याग में कुछ भी नहीं, भिक्षापात्र छोड़ रहा है। उसके पास कुछ त्याग को था भी नहीं। उसका त्याग धोखा है।
तो मैं तुमसे अतिरेक में जीने को कहता हूं। जीवन है जब तक उसे पूरा- पूरा जी लो। जीते ही तुम उससे मुक्त हो जाओगे।
तर्के-मय ही इसे समझना शेख
इतनी पी है कि पी नहीं जाती
तर्के-मय ही इसे समझना शेख
ऐ धर्मगुरु, इसको तू शराब का त्याग ही समझ।
इतनी पी है कि पी नहीं जाती
अब इतनी पी ली है कि अब पीने का कोई उपाय न रहा। जीवन को इतना पी डालो
कि पीने का फिर कोई उपाय ही न रह जाए। पीकर ही तुम मुक्त होओ। लेकिन अगर तुम्हें बुद्ध की बात ठीक जमती हो, तो मजे से उस मार्ग पर चले जाओ। लेकिन ध्यान रखना अपना, कि क्या तुम्हारे पास बुद्ध जैसा जीवन का अनुभव है? भोग का ऐसा गहन अनुभव है?
तुम्हें पता है बुद्ध के जीवन की कहानी?
ज्योतिषियों ने कहा कि यह छोड़कर संन्यासी हो जाएगा। तो बाप चिंतित हुआ। शुद्धोदन ने बड़े-बड़े ज्ञानियों से सलाह ली कि क्या करें?

निश्चित ही वे ज्ञानी भगोड़े होंगे। शास्त्रों में यह कहा नहीं है, यह मेरी दृष्टि है। वे ज्ञानी भगोड़े होंगे, क्योंकि अक्सर ज्ञानी भगोड़े होते हैं। त्यागी महात्माओं को बुला लिया होगा। उनसे पूछा। वे कोई सम्राट न थे, जिन्होंने संसार जानकर छोड़ा था। उन्होंने जीवन को बेबसी में छोड़ा होगा, असहाय अवस्था में छोड़ा होगा। पा नहीं सके इसलिए छोड़ा होगा। अंगूर खट्टे थे, पहुंच नहीं सके, इसलिए। पहुंच जाते तो उन्होंने भी बड़ी चेष्टा की थी! उन्होंने सलाह दी कि आप ऐसा करो, सब भोगों का इंतजाम कर दो। भोग में डूब जाएगा, संन्यासी अपने आप न होगा।
इससे मैं कहता हूं कि वे त्यागी रहे होंगे। अगर बुद्ध के बाप ने मुझसे पूछा होता तो मैं कहता कि भोग से इसको दूर रखो। स्त्रियों को पास मत आने दो। हां, फिल्म दिखानी हो दिखा दो। पर्दे पर दिखायी पड़े, छू न सके स्त्री को। क्योंकि पर्दे से सपना नहीं मिटता, बनता है। स्त्री को पास मत आने देना। इसको सुख-सुविधा में मत डालो। गिट्टियां तुड़वाओ, सड़क पिटवाओ, मेहनत-मजदूरी करवाओ, इसको महल में मत टिकने दो। इसकी महल की आकांक्षा कभी न मरेगी। क्योंकि जिसको जाना नहीं, उसकी आकांक्षा होती है, मरती नहीं। यह कभी संन्यासी न होगा।
लेकिन त्यागी महात्माओं ने कहा... उन्होंने बेचारों ने अपने अनुभव से कहा। जो उन्हें नहीं मिला था, उन्होंने सोचा, अगर हमको मिलता--सुंदर स्त्रियां मिलतीं, महल मिलते--तो हम संन्यासी होते? उनका तर्क साफ है। संन्यासी वे इसलिए हुए कि न सुंदर स्त्रियां मिलीं, न महल मिले। वही इसके लिए भी जमा दो, यह भटक जाएगा उसी में। यह अपना अनुभव वे बता रहे हैं, कि हम भी भटक जाएं अगर इंतजाम अभी कोई कर दे। भीतर तो वही चाह रही होगी। मुझे पता नहीं कौन लोग थे वे? उनके नाम का भी कोई उल्लेख नहीं, लेकिन बात जाहिर है कि वे आदमी बीच से भाग गए होंगे, जीवन का अनुभव न रहा होगा।
बुद्ध के बाप ने उनकी मान ली, लड़का खोया। बना दिए महल चार। हर मौसम के लिए अलग। जितनी राज्य में सुंदर युवतियां थीं, सब इकट्ठी कर दीं। बुद्ध लड़कियों के बीच ही बड़े हुए। लेकिन ऊब गए। सुंदरतम स्त्रियां उनके पास थीं। उन्होंने सारे सपने तोड़ दिए।
सुंदरतम स्त्री भी तुम्हारे पास हो, दो दिन से ज्यादा थोड़े ही सुंदर मालूम पड़ती है। दो दिन के बाद सब स्त्रियां साधारण हो जाती हैं। स्त्री का सौंदर्य बच सकता है, अगर तुम्हें दूर रखा जाए। वह कामना में है, अनुभव में नहीं। कितनी ही सुंदर स्त्री हो, क्या करोगे! दो दिन के बाद साधारण हो जाती है। कोई पति अपनी पत्नी को देखता है? कितनी ही सुंदर हो, और कभी-कभी हैरान भी होता है कि दूसरे क्यों रास्ते पर रुक-रुककर मेरी स्त्री को देखने लगते हैं। क्योंकि उसे तो कुछ नहीं दिखायी पड़ता। दूसरों को दिखायी पड़ता है। दूसरे की पत्नी सदा ही सुंदर मालूम पड़ती है। और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम्हारी सुंदर पत्नी तुम्हें सुंदर नहीं मालूम पड़ती, घर की नौकरानी साधारण तुम्हें सुंदर मालूम पड़ने लगती है। क्योंकि उसमें फासला है।
दूर रखो, चीजें सुंदर रहती हैं। दूर के ढोल सुहावने! पास आते ही सपने टूट जाते हैं। यथार्थ खुल जाता है। बुद्ध उन सारी सुंदर स्त्रियों को देखकर ऊब गए। परेशान हो गए। भागने का मन होने लगा। एक रात उठे, तो देखा सारी सुंदर स्त्रियां उनके आसपास पड़ी हैं। किसी के मुंह से लार बह रही है, किसी की आंख में कीचड़ जमा है, किसी का मुंह खुला है और घर्राटा निकल रहा है, वे एकदम भागे वहां से। उन्होंने कहा कि इनके पीछे मैं दीवाना हुआ हूं! कोई भी ऋषि-मुनि हो जाए ऐसी अवस्था में! धन था, स्त्रियां थीं, वैभव था,
ऊब गए। दिखायी पड़ गया, इसमें कुछ भी नहीं है। एक बात साफ हो गयी कि रोज मौत करीब आ रही है। और यह सब व्यर्थ है। सत्य को खोजना जरूरी है। अमृत को खोजना जरूरी है।
तो बुद्ध तो इस कारण संन्यासी हुए। वे तो मेरे ही संन्यासी हैं। लेकिन बुद्ध से प्रभावित होकर जो संन्यासी हुए, वे मेरे संन्यासी नहीं हैं। उन्होंने बुद्ध की रौनक देखी, चमक देखी, प्रतिभा देखी, बुद्ध की शांति देखी; ईर्ष्या जगी, लोभ जगा, मन में उनके भी हुआ--ऐसे ही शांत हम भी हो जाएं। लेकिन उन्हें पता नहीं, इस शांति के पीछे बड़ा गहरा अनुभव है भोग का।

एक बड़ा रेगिस्तान पार कर के आए हैं वे। एक बड़ा अनुभव का विस्तार है पीछे।
और तुम जल्दबाजी नहीं कर सकते।
तुम, अगर तुम ठीक समझो तो जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह वही है जो बुद्ध
के जीवन का सार है। मैं तुमसे वह नहीं कह रहा हूं जो बुद्ध कहते हैं। मैं तुमसे वह कह रहा हूं जो बुद्ध हैं।
इसलिए मैं कहता हूं, भागो मत। जहां हो, जो क्षण मिला है, उसे इतनी त्वरा से भोग लो कि तुम उसके आर-पार देखने में समर्थ हो जाओ। जीवन पारदर्शी हो जाए। बस वहीं से संन्यास की सुवास उठनी शुरू होती है। और तब भागने की भी कोई जरूरत नहीं है।
रवींद्रनाथ का एक गीत है, जिसमें बुद्ध वापस लौटते हैं, और यशोधरा उनसे पूछती है कि मैं सिर्फ एक ही सवाल तुमसे पूछने को रुकी हूं। बारह वर्ष तुम्हारी प्रतीक्षा की है, बस एक सवाल के लिए, कि तुमने जो जंगल में भागकर पाया, क्या तुम अब कह सकते हो कि यहीं रहते तो नहीं मिल सकता था? अब तो तुम्हें मिल गया। अब मुझे एक ही सवाल तुमसे पूछना है कि जो तुमने वहां पाया, क्या वह यहीं नहीं मिल सकता था? और रवींद्रनाथ ने कविता में बुद्ध को मौन रखा है। कुछ कहलवाया नहीं। कहें भी क्या? बात तो ठीक ही यशोधरा कह रही है, वह यहां भी मिल सकता था।
सत्य सब जगह है। समझ चाहिए। और समझ अनुभव का सार है। इसलिए मैं तुम्हें अनुभव से तोड़ना नहीं चाहता। चाहता हूं कि तुम जितनी जल्दी अनुभव में उतर जाओ, जितने गहरे उतर जाओ, उतनी ही जल्दी अतिक्रमण का क्षण करीब आ जाए। संन्यास बहुत पास है। संसार का अनुभव तुम्हारा पूरा होना चाहिए। संन्यास संसार के विपरीत नहीं है। संन्यास संसार के पार है। विपरीत नहीं, आगे। जहां संसार समाप्त होता है, जहां संसार का मील का पत्थर आता है, जहां लिखा है--यहां समाप्त होती है सीमा--वहीं संन्यास शुरू होता है। लेकिन संसार पूरा करना ही होगा। अगर अभी पूरा न करोगे, फिर लौटकर आओगे।
बुद्ध को भी शायद तुमने सुना हो। पच्चीस सौ साल हो गए। तुम पच्चीस बार लौट चुके। तुम मुझे भी सुन रहे हो। अगर मेरी बात तुमने न गुनी, तुम फिर-फिर लौटकर आओगे। परमात्मा तुम्हें वापस इस स्कूल में भेजता ही रहेगा, जब तक तुम उत्तीर्ण ही न हो जाओ। इसलिए मैं कहता हूं, जल्दी करो। भागने की नहीं, भोगने की। जागने की। अनुभव को निरीक्षण करने की। अगर ठीक से अनुभव किया जाए तो किसी अनुभव को दोहराने की जरूरत नहीं। एक ही बार अगर पूरे मन से जागकर कोई अनुभव कर लिया जाए, तुम उससे मुक्त हो जाओगे। क्योंकि फिर पुनरुक्ति तो वही-वही है।

आखिरी प्रश्नः बुद्ध ने स्त्रियों को संन्यास देने से टालना चाहा। शंकर भी स्त्रियों को संन्यास देने के पक्ष में नहीं थे। संन्यास जीवन की स्त्रियों से ऐसी क्या विपरीतता है? क्या स्त्रियों से उसका कोई तालमेल नहीं है, या कम है? क्या उन्हें संन्यास लेने की जरूरत पुरुषों की अपेक्षा कम है?

पुरुष और स्त्री का मार्ग मूलतः अलग-अलग है। पुरुष का मार्ग ध्यान का है; स्त्री का मार्ग प्रेम का। पुरुष का मार्ग ज्ञान का है; स्त्री का मार्ग भक्ति का। उन दोनों की जीवन-चित्तदशा बड़ी भिन्न है, बड़ी विपरीत है। पुरुष को प्रेम लगता है बंधन; स्त्री को प्रेम लगता है मुक्ति। इसलिए पुरुष प्रेम भी करता है तो भी भागा-भागा, डरा-डरा कि कहीं बंध न जाएं। और स्त्री जब प्रेम करती है तो पूरा का पूरा बंध जाना चाहती है, क्योंकि बंधन में ही उसने मुक्ति जानी है। तो पुरुष की भाषा जो है वह है--कैसे छुटकारा हो? कैसे संसार से मुक्ति मिले? और स्त्री की जो खोज है वह है--कैसे वह डूब जाए पूरी-पूरी, कुछ भी पीछे न बचे?
तो संन्यास मूलतः पुरुषगत है। इसलिए बुद्ध भी झिझके। स्त्रियां प्रभाव में आ गयीं--स्त्रियां जल्दी प्रभाव में आती हैं, क्योंकि उनके पास ज्यादा संवेदनशील हृदय है--वे मांगने लगीं कि हमें भी संन्यास दो। बुद्ध डरे। महावीर ने तो उनसे साफ कहा कि दे भी दूं, तो भी तुम्हारी मुक्ति इस

जन्म में नहीं होगी, जब तक तुम पुरुष न हो जाओ। पुरुष-पर्याय से ही मुक्ति होगी।
कारण साफ है। महावीर का मार्ग भक्ति का नहीं है, और बुद्ध का मार्ग भी भक्ति का नहीं है। इसलिए अड़चन है। स्त्री के लिए उनके मार्ग पर कोई सुविधा नहीं है। और स्त्री जब भी मुक्ति को उपलब्ध हुई है तो वह मीरा की तरह नाचकर, प्रेम में परिपूर्ण डूबकर मुक्त हुई है। संसार से भागकर नहीं, संबंध से छूटकर नहीं, संबंध में पूरी तरह डूबकर। वह इतनी डूब गयी कि मिट गयी।
मिटने के दो उपाय हैं। या तो तुम भीतर की तरफ जाओ, अपने केंद्र की तरफ जाओ, और उस जगह पहुंच जाओ जहां तुम ही बचे। जहां तुम ही बचे और कोई न बचा, वहां तुम भी मिट जाओगे, क्योंकि मैं के बचने के लिए तू की जरूरत है। तू के बिना मैं नहीं बच सकता। अगर तू बिल्कुल छूट गया--यही संन्यास है, बुद्ध का, महावीर का; मेरा नहीं। बुद्ध-महावीर का यही संन्यास है कि अगर तू बिल्कुल मिट जाए तुम्हारे चित्त से तो मैं अपने आप गिर जाएगा; क्योंकि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तू के बिना मैं का कोई अर्थ नहीं रह जाता; मैं गिर जाएगा, तुम शून्य को उपलब्ध हो जाओगे।
स्त्री का मार्ग दूसरा है। वह कहती है, मैं को इतना गिराओ कि तू ही बचे, प्रेमी ही बचे, प्रीतम ही बचे। और जब मैं बिल्कुल गिर जाएगा और तू ही बचेगा, तो तू भी मिट जाएगा; क्योंकि तू भी अकेला नहीं बच सकता। मंजिल पर तो दोनों पहुंच जाते हैं--शून्य की, या पूर्ण की--मगर राह अलग है। स्त्री मैं को खोकर पहुंचती है। पुरुष तू को खोकर पहुंचता है। पहुंचते दोनों वहां हैं जहां न मैं बचता है, न तू बचता है।
जिसने दिल को खोया उसी को कुछ मिला
फायदा देखा इसी नुकसान में
यह स्त्री की बात है--
जिसने दिल को खोया उसी को कुछ मिला
फायदा देखा इसी नुकसान में
इसलिए बुद्ध-महावीर शंकित थे, संदिग्ध थे--स्त्री को लाना? और उनका डर स्वाभाविक था। क्योंकि स्त्री आयी कि प्रेम आया। और प्रेम आया कि उनके पुरुष भिक्षु मुश्किल में पड़े। वह डर उनका स्वाभाविक था। वह डर यह था कि अगर स्त्री को मार्ग मिला और स्त्री संघ में सम्मिलित हुई, तो वे जो पुरुष भिक्षु हैं, वे आज नहीं कल स्त्री के प्रेम के जाल में गिरने शुरू हो जाएंगे। और वही हुआ भी। बुद्ध ने कहा था कि अगर स्त्रियों को मैं दीक्षा न देता तो पांच हजार साल मेरा धर्म चलता, अब पांच सौ साल चलेगा। पांच सौ साल भी मुश्किल से चला। चलना कहना ठीक नहीं है, लंगड़ाया, घिसटा। और जल्दी ही पुरुष अपने ध्यान को भूल गए।
पुरुष को उसके ध्यान से डिगाना आसान है। स्त्री को उसके प्रेम से डिगाना मुश्किल है।
अगर तुम मुझसे पूछते हो, तो मैं यह कहता हूं कि बुद्ध और महावीर ने यह स्वीकार कर लिया कि स्त्री बलशाली है, पुरुष कमजोर है। अगर स्त्री को दिया मार्ग अंदर आने का, तो उन्हें अपने पुरुष संन्यासियों पर भरोसा नहीं--वे खो जाएंगे। स्त्री का प्रेम प्रगाढ़ है। वह डुबा लेगी उनको। उनका ध्यान-व्यान ज्यादा देर न चलेगा। जल्दी ही उनके ध्यान में प्रेम की तरंगें उठने लगेंगी।
स्त्री बलशाली है। होना भी चाहिए। वह प्रकृति के ज्यादा अनुकूल है। पुरुष जरा दूर निकल गया है प्रकृति से--अपने अहंकार में। स्त्री अपने प्रेम में अभी भी पास है। इसलिए स्त्री को हम प्रकृति कहते हैं। पुरुष को पुरुष, स्त्री को प्रकृति। प्रकृति का डर था महावीर और बुद्ध दोनों को। उनके संन्यासियों का डांवाडोल हो जाना निश्चित था।
लेकिन मैं भयभीत नहीं हूं; क्योंकि मैं कहता हूं, स्त्रियां प्रेम के मार्ग से जाएं। और जिनका ध्यान डगमगा जाए, अच्छा ही है कि डगमगा जाए; क्योंकि ऐसा ध्यान भी दो कौड़ी का जो डगमगा जाता हो। वह डगमगा ही जाए वही अच्छा। जब डूबना ही है तो नौका में क्या डूबना, नदी में ही डूब जाना। मैं

मानता हूं कि प्रेम स्त्री का तुम्हें घेरे और तुम्हारा ध्यान न डगमगाए, तो कसौटी पर उतरा सही। और जो प्रेम से न डगमगाए ध्यान, वही ध्यान समाधि तक ले जाएगा। जो प्रेम से डगमगा जाए, उसे अभी समाधि वगैरह तक जाने का उपाय नहीं। वह भाग आया होगा, प्रेम से बचकर, प्रेम की पीड़ा से बचकर--प्रेम से डरकर भाग आया होगा।
इसलिए मेरे लिए कोई अड़चन नहीं है। मैंने पहला संन्यास स्त्री को ही दिया। ये महावीर और बुद्ध को कहने को कि सुनो, तुम घबड़ाते थे, हम पुरुष को पीछे देंगे।
पुरुष ध्यान करे, स्त्री प्रेम करे--क्या अड़चन है? स्त्री तुम्हारे पास प्रेम का पूरा माहौल बना दे, वातावरण बना दे, तो भी तुम्हारे ध्यान की लौ अडिग रह सकती है; कोई प्रयोजन नहीं है कंपने का। सच तो यह है कि जब प्रेम की हवा तुम्हारे चारों तरफ हो, तो ध्यान और गहरा हो जाना चाहिए। लेकिन अगर तुम अधकचरे भाग आए संसार से, तो डगमगाओगे। तो उनके लिए मेरे पास कोई जगह नहीं। उनको मैं कहता हूं, तुम वापस जाओ।
प्रेम को मैं कसौटी बनाता हूं ध्यान की, और ध्यान को मैं कसौटी बनाता हूं प्रेम की। पुरुष अगर ध्यान में हो, तो स्त्री कितना ही प्रेम करे, पुरुष डगमगाएगा नहीं। उसके निष्कंप ध्यान से ही करुणा उतरेगी स्त्री की तरफ, वासना नहीं। और वही करुणा तृप्त करती है। वासना किसी स्त्री को कभी तृप्त नहीं करती।
इसलिए तो कितनी ही वासना मिल जाए, स्त्री बेचैन बनी रहती है। कुछ खोया-खोया लगता है।
मेरा जानना है कि स्त्री को जब तक परमात्मा ही प्रेमी की तरह न मिले,
तब तक तृप्ति नहीं होती। और जब तुम किसी ध्यानी व्यक्ति के प्रेम में पड़ जाओ तो परमात्मा मिल गया।
तो ध्यान प्रेम को बढ़ाएगा। क्योंकि ध्यान तुम्हारे प्रेमी को दिव्य बना देता है। और प्रेम ध्यान को बढ़ाएगा, क्योंकि प्रेम जो तुम्हारे चारों तरफ एक परिवेश निर्मित करता है, उस परिवेश में ही ध्यान का अंकुरण हो सकता है।
इसलिए मैं ध्यान और प्रेम में कोई विरोध नहीं देखता। ध्यान और प्रेम में एक गहरा समन्वय देखता हूं। होना ही चाहिए। जब स्त्री और पुरुष में इतना गहरा संबंध है, तो ध्यान और प्रेम में भी इतना ही गहरा संबंध होना चाहिए। और जब स्त्री और पुरुष से मिलकर एक जीवन पैदा होता है, एक बच्चा पैदा होता है, तो मेरी समझ है कि ध्यान और प्रेम के मिलने से ही पुनर्जीवन उपलब्ध होता है, तुम्हारा नव-जन्म होता है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
पांचवां प्रवचन

बुद्धपुरुष स्वयं प्रमाण है ईश्वर का

इध सोचति पेच्च सोचति पापकारी उभयत्थ सोचति।
सो सोचति सो विहांंति दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो।। 13।।

इध मोदति पेच्च मोदति कतपुंं उभयत्थ मोदति।
सो मोदति सो पमोदति दिस्वा कम्मविसुद्धिमत्तनो।। 14।।

इध तप्पति पेच्च तप्पति पापकारी उभयत्थ तप्पति।
पापं मे कतन्ति तप्पति भीय्यो तप्पति दुग्गतिड्गतो।। 15।।

बहुम्पि चे सहितं भासमानो न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो" व गावो गणयं परेसं न भागवा सामांंस्स होति।। 16।।

अप्पम्पि चे सहितं भासमानो धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
रागंच दोसंच पहाय मोहं सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा स भागवा सामांंस्स होति।। 17।।

जिंदगी क्या किसी मुफलिस की कबा है
जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबंद लगे जाते हैं
जिंदगी क्या किसी भिखारी का लबादा है, जिसमें हर घड़ी दर्द के नए-नए थेगड़े लगे जाते हैं? जिंदगी ने तो चाहा था कि तुम सम्राट बनो। जिंदगी भिखारी का लबादा नहीं है। लेकिन जिंदगी भिखारी का लबादा हो गयी है। तुमने उसे भिखारी का लबादा बना दिया है। जिंदगी सम्राट पैदा करती है, और आदमी भिखारी हो जाता है। सभी सम्राट की तरह पैदा होते हैं, और मरते भिखारी की तरह हैं। हर बच्चा संसार में एक नया साम्राज्य लाता है। और हर ब.ूढा एक दुख की गाथा अपने साथ लिए विदा हो जाता है। जिंदगी का कुल जोड़ दुख हो जाता है। जिंदगी की भूल नहीं है। जीने के ढंग में भूल है। जीने का ढंग न आया। गलत ढंग से जीए। तो जहां स्वर्ण बरस सकता था, वहां हाथ में केवल राख लगी। जहां फूल खिल सकते थे, वहां केवल कांटे मिले। और जहां परमात्मा के मंदिर के द्वार खुल जाते, वहां केवल नर्क निर्मित हुआ।
तुम्हारी जिंदगी तुम्हारे हाथ में है। जिंदगी कोई निर्मित घटना नहीं है, अर्जित करनी होती है। जिंदगी मिलती नहीं, बनानी होती है। मिलती तो है कोरी स्लेट, कोरा कागज। क्या तुम उस पर लिखते हो, वह तुम्हारे हाथ में है। तुम दुख की गाथा लिख सकते हो। तुम आनंद का गीत लिख सकते हो।
नहीं, यह बात गलत है--
जिंदगी क्या किसी मुफलिस की कबा है
जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबंद लगे जाते हैं
यह बात गलत है।
लेकिन यह बात अगर आदमी को देखें तो बिल्कुल सही मालूम होती है। कभी कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कबीर और ढंग से जीता है और सारी जिंदगी आनंद का एक उत्सव हो जाती है। कबीर ने कहा है, खूब जतन से ओढ़ी कबीरा, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। जतन--खूब जतन से। कितने होश से तुम जीवन को जीते हो, कितने जतन से, उस पर ही निर्भर करेगा। अगर दुखी हो, तो ध्यान रखना, जतन से नहीं जी रहे हो। दुख बढ़ता जाता है, तो ध्यान रखना, गलत दिशा पकड़ ली है। किसी और को दोष मत देना। क्योंकि किसी और को दोष देकर कोई कभी बदल न पाया। किसी और को दोष मत देना, क्योंकि किसी और को दोष देने का अर्थ, जीवन का रूपांतरण फिर कभी भी न हो पाएगा। अगर आंख में आंसू हों तो कारण अपने हृदय में खोजना। कौन रोता है किसी और की खातिर ऐ दोस्त
सबको अपनी ही किसी बात पे रोना आया

अगर ओठों पर मुस्कुराहट हो, तो भी कारण भीतर है। आंखों में आंसू हों,
तो भी कारण भीतर है। जिसने देखा कि कारण बाहर है, वही अधार्मिक है। जिसने यह बात समझ ली कि मेरी जिंदगी में जो भी घट रहा है वह मेरा ही कृत्य है, वह मेरे ही होश और जतन या बेहोशी और गैर-जतन का परिणाम है, वह व्यक्ति धार्मिक हो गया। फिर दुख ज्यादा देर तुम्हारे पास न रह सकेगा। फिर तुम अचानक पाओगे एक क्रांति शुरू हुई। कल तक जो एक मुफलिस की कबा थी, एक भिखारी का वस्त्र थी, वही एक सम्राट का स्वर्णिम वस्त्र बनने लगी। कल तक जहां सिवाय कंकड़-पत्थर के कुछ भी न मिला था, वहीं हीरे-जवाहरात उपलब्ध होने लगे।
जहां से तुम गुजरे हो वहीं से बुद्ध भी गुजरते हैं। पर देखने की आंख अलग- अलग है। होश का ढंग अलग-अलग है।
दो तरह से आदमी जी सकता है। एक ढंग है ऐसे जीने का कि जैसे कोई नींद में जीता हो, मूर्च्छित जीता हो, चला जाता हो भीड़ में धक्के खाते; न तो पता हो कहां जा रहा है, न पता हो क्यों जा रहा है, न पता हो कि मैं कौन हूं; भीड़ में धक्के खा रहा हो और चला जा रहा हो। रुकना मुश्किल हो, इसलिए चला जा रहा हो। रुककर भी क्या करेंगे, रुककर भी क्या होगा, इसलिए चला जा रहा हो। कुछ करने को नहीं है, इसलिए कुछ किए जा रहा हो। एक तो जिंदगी ऐसी है बेहोश।
और एक जिंदगी होश की है कि प्रत्येक कृत्य सुनियोजित है, और प्रत्येक कृत्य सुविचारित है, और प्रत्येक कृत्य के पीछे एक जागरण है--जानते हुए किया गया है, अनजाने नहीं किया गया; अचेतन से नहीं निकला है, अंधेरे से नहीं आया है, भीतर के होश से पैदा हुआ है।
मूर्च्छा से हुआ कृत्य पाप है। बेहोशी से पैदा हुआ कृत्य पाप है। फिर चाहे संसार उसे पुण्य ही क्यों न कहे! क्योंकि कृत्य कहां से पैदा होता है इससे उसका स्वभाव निर्मित होता है। लोग क्या कहते हैं, यह बात अर्थपूर्ण नहीं है।
राह पर तुमने एक भिखारी को दान दे दिया। लोग तो कहेंगे पुण्य किया। लेकिन अगर दान मूर्च्छा से निकला है, होश से नहीं निकला, तो पुण्य नहीं है, पाप है। तुमने दान अगर इसलिए दे दिया है कि चार लोग वहां देखते थे और प्रशंसा होगी, दान किसी करुणा से नहीं आया है बल्कि अहंकार से आया है, तो पाप हो गया। तुमने अगर इसलिए दे दिया है कि देने की आदत हो गयी है, इनकार करते नहीं बनता; देने में प्रतिष्ठा जुड़ गयी है, इनकार करते नहीं बनता, लोग जानते हैं कि तुम दाता हो; मूर्च्छा से हाथ खीसे में चला गया और तुमने दे दिया; न तो देखी उस आदमी की पीड़ा, न देखा उस आदमी के मांगने का प्रयोजन; जैसे शराब में मस्त कोई जाता हो बेहोश और दान दे दिया हो--सुबह याद भी न रही--तो पुण्य नहीं हुआ।
कृत्य का गुण तय होता है तुम्हारे भीतर कहां से कृत्य आया। अगर होश में आया हो, तो उठना-बैठना भी पुण्य हो जाता है। और अगर बेहोशी में आया हो, तो प्रार्थना और पूजा भी पाप हो जाती है। मूल उदगम असली सवाल है। कहां से आ रहा है कृत्य। जो कृत्य मूर्च्छित, वही पाप। जो कृत्य जाग्रत, वही पुण्य। बुद्ध कहते हैं, "इस लोक में शोक करता है, और परलोक में भी; पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने मैले कर्मों को देखकर शोक करता है, वह अपने मैले कर्मों को देखकर पीड़ित होता है।"
इस लोक में भी, परलोक में भी।
पापी के जीवन को हम थोड़ा समझें, क्योंकि वही अधिकांश में हमारा जीवन है। पाप का अर्थ है, मूर्च्छा। तो जब मूर्च्छा में तुम कुछ करते हो, उस घड़ी मूर्च्छा के कारण कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। मूर्च्छित को कैसे कुछ उपलब्ध होगा? जैसे एक आदमी बेहोशी में बगीचे से गुजर जाए। फूल सुगंध बांटते रहेंगे, पर उसे न मिलेगी। सूरज की किरणें नाचती रहेंगी, पर वह नाच उसके लिए हुआ न हुआ बराबर है। बगीचे की सुगंध, बगीचे की ठंडी हवा उसे घेरेगी, उसे छुएगी, लेकिन वह होश में नहीं है। वर्तमान में जो नहीं है, वह उत्सव से वंचित रह जाएगा। और जो होश में नहीं है, वह वर्तमान में नहीं हो सकता। वर्तमान में होना और होश में होना एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं।
तो पापी कभी जी ही नहीं पाता। केवल जीने की योजना बनाता है। या जो जीवन उसने कभी नहीं जीया उसकी स्मृति को संजोता है, या जो जीवन वह कभी नहीं

जीएगा, उसकी कल्पना करता है, सपने निर्मित करता है। लेकिन जीता कभी नहीं। क्योंकि जीना तो अभी और यहीं है। तो पापी जीवन से ही वंचित रह जाता है। ध्यान रखना, बुद्ध यह नहीं कह रहे हैं--जैसा कि साधारण धर्मगुरु कहते हैं--कि पापी दुख पाता है; क्योंकि उसने पाप किया, परमात्मा उसे पाप का फल देगा। बुद्ध की परमात्मा को बीच में लाने की प्रवृत्ति नहीं है। बुद्ध तो यह कह रहे हैं कि पापी इस लोक में भी और उस लोक में भी सुख से वंचित रह जाता है। और सुख से वंचित रह जाना दुख है। आनंद से वंचित रह जाना पीड़ा है। महोत्सव से वंचित रह जाना महानर्क में पड़ जाना है। कोई नर्क में डालता नहीं, न ही कोई दंड दे रहा है, न ही कोई तुम्हारे कृत्यों का लेखा-जोखा रख रहा है, लेकिन पापी के जीने का ढंग ऐसा है कि वह चूक जाता है। और जो इस लोक में चूक जाता है वह परलोक में भी चूकेगा। क्योंकि चूकने की आदत मजबूत हो जाती है।
तुम थोड़ा ख्याल करो। तुम कभी वर्तमान में होते हो? भोजन कर रहे होते हो, लेकिन मन कहीं और। प्रार्थना कर रहे होते हो, लेकिन मन कहीं और। सिर झुक रहा होता है मंदिर में, लेकिन तुम वहां नहीं। अगर कभी परमात्मा आए भी तुम्हें खोजते हुए, तो तुम घर पर न मिलोगे। तुम घर पर कभी हो ही नहीं। अगर वह तुम्हारी प्रार्थना सुन ले--और मैं जानता हूं बहुत बार उसने तुम्हारी प्रार्थना सुनी है, हर बार सुनी है--लेकिन जब भी वह आता है तुम्हें घर नहीं पाता। तुम कहीं और हो। तुम्हें खुद ही पता नहीं कि तुम कहां हो। तुम्हारा कोई पता-ठिकाना नहीं है, तुम्हें खोजे भी तो कहां खोजे? तुम ऐसे ही हो जैसे किसी मेहमान को निमंत्रण दे आए हो, और जब मेहमान घर आता है तो तुम्हें घर पाता ही नहीं। मेजबान कभी घर मिलता ही नहीं। जीवन को तुम खोजते हो, जीवन तुम्हें खोज रहा है।
इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लो।
तुम जीवन को खोज रहे हो, जीवन तुम्हें खोज रहा है। और तुम जीवन को खोजने में ही गंवा रहे हो। खोजने की जरूरत नहीं है, जीवन मिला ही हुआ है। उसने सब तरफ से तुम्हें घेरा है। वही सब तरफ से बरस रहा है। रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में जीवन की ही पुलक है, जीवन का ही नृत्य है। कहां तुम खोजने जा रहे हो? जहां भी जाओगे, गलत जाओगे। जाना गलत है। होना सही है। जाने में ही तो तुम वर्तमान से चूक जाते हो। तुम कहते हो कल, कल सुख पाएंगे। न तो बीते कल मिला, न आने वाले कल मिलने वाला है, क्योंकि कल कभी आता नहीं। आता हुआ लगता है। सदा आता है--लगता है आया, आया, आता कभी नहीं। जो आता है, वह आज है। जो आता है, वह अभी है। इस क्षण को तुम कल के लिए मत स्थगित कर देना। जिसने आज को जीने के लिए कल पर छोड़ा, वही पापी है। तब फिर ऐसा मन अतीत की स्मृतियां करता है।
और बड़े मजे की बात यह है कि तुम जिन बातों की स्मृतियां करते हो, उन बातों में भी तुम मौजूद न थे। वह भी तुम्हारा ख्याल है। क्योंकि जब वे बातें घट रही थीं, तब तुम कहीं और थे।
मेरे एक मित्र के साथ मैं ताजमहल गया था। तीन-चार घंटे हम वहां थे। पूरे चांद की रात थी। लेकिन वे ताजमहल को न देख पाए, क्योंकि उनको फोटो लेने थे। मैंने उनको कहा भी कि फोटो तो तुम्हारे घर-गांव में ही मिलते थे, बिकते थे। इतनी दूर आने की जरूरत न थी। और जो फोटो बाजार में मिलते हैं वे ज्यादा बेहतर फोटोग्राफरों ने लिए हैं। तुम सिक्खड़ हो। तुम्हारे फोटोग्राफ का मतलब भी क्या! पर वे बोले कि नहीं, घर चलकर शांति से देखेंगे। ताजमहल सामने है, वे चित्र ले रहे हैं! वे घर चलकर शांति से देखेंगे! और तब वे सोचेंगे, कैसा प्यारा ताजमहल! और वह कभी उन्होंने देखा नहीं। वह कैमरे ने देखा होगा। वे तो वहां थे ही नहीं। वे एलबम बना रहे हैं।
तुम कभी ख्याल किए कि तुम पीछे लौट-लौटकर देखते हो, बचपन कितना प्यारा था! पर बचपन में तुम वहां थे? कि ताजमहल के फोटो लिए! कोई भी बच्चा वहां नहीं है। वह जवानी के सपने देख रहा है। वह बड़े होने की कामना कर रहा है। वह जल्दी-जल्दी बड़ा हो जाना चाहता है। क्योंकि उसे लगता है, बड़े बड़ा आनंद लूट रहे हैं। बड़ों के पास शक्ति है, सामर्थ्य है। मेरे पास कुछ भी नहीं। वह जल्दी में है। वह जल्दी बड़ा होना चाह रहा है।

छोटे बच्चे खड़े हो जाते हैं कुर्सियों पर, अपने बाप से कहते हैं, हम तुमसे बड़े हैं। वह बड़े होने की कामना उनमें गहरी हो गयी है। छोटे बच्चे सिगरेट पीने लगते हैं, सिर्फ इसलिए कि सिगरेट बड़े का प्रतीक है। बड़े पी रहे हैं उसको। वह ताकतवर आदमी का सिंबल है, उसका प्रतीक है। बच्चे सिगरेट पीने लगते हैं, क्योंकि उससे अकड़ मालूम होती है कि वे भी बड़े हो गए।
मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। सुबह-सुबह घूमने गया था। एक छोटे बच्चे
को मैंने आते देखा। इतनी सुबह, और बच्चा इतना छोटा--छह-सात साल से ज्यादा का न रहा होगा--और उसका ढंग ऐसा कि मैं भी देखता रह गया। हाथ में एक छड़ी लिए था, बड़े-बूढ़े की तरह चल रहा था, और उसने छोटी सी मूंछ भी लगा रखी थी। जब मैंने उसे गौर से देखा तो वह भागकर एक वृक्ष के पीछे छिप गया। मैं उसके पीछे गया। तो वह अपने घर में चला गया। मैं उसके पीछे उसके घर पहुंचा। उसने जल्दी से अपनी मूंछ निकालकर खीसे में रख ली।
मैंने पूछा कि मामला क्या है? तू कर क्या रहा है? उसके पास कोई उत्तर नहीं है। शायद उसे भी पता नहीं है। बड़े होने का ढोंग कर रहा है। बड़ा होने की आकांक्षा जग गयी है। छोटे होने में पीड़ा है। सभी बड़े होना चाहते हैं। यही बच्चा कल बड़ा होकर बचपन की बातें करेगा, कि बचपन स्वर्ग था। उस स्वर्ग के केवल चित्र लिए हैं, वह स्वर्ग कभी जीया नहीं। बूढ़े हो जाओगे तब तुम जवानी के चित्रों का एलबम देखोगे। वह जवानी भी तुमने कभी जी नहीं। जब वहां थे, तब वहां थे नहीं। यही रोग पाप है।
तुमसे बहुत और व्याख्याएं लोगों ने कही हैं पाप की। शायद किसी ने तुमसे यह व्याख्या न कही हो। लोगों ने कहा है, बुरा करना पाप है। मैं नहीं कहता। क्योंकि मैं मानता हूं, बुरा करना तुम्हारे गलत होने से पैदा होता है। इसलिए वह गौण है। गलत होना पाप है, गलत करना नहीं। और जो ठीक हो गया, उसके जीवन से पाप विदा हो जाते हैं।
इसलिए असली सवाल ठीक करने का नहीं है, असली सवाल ठीक होने का है। इस भेद को ध्यान में रख लेना। क्योंकि यह भेद बुनियादी है। अगर तुम गलत को ठीक करने में लग गए तो तुम जन्मों-जन्मों तक गलत को ठीक करते रहोगे, गलत ठीक न होगा; क्योंकि तुम गलत हो, वहां से और गल्तियां पैदा होती रहेंगी। यह तो ऐसा ही है जैसे एक शराबी आदमी है, वह शराब पीना तो बंद नहीं करता, सम्हलकर चलने की कोशिश करता है। सभी शराबी करते हैं। तुमने अगर कभी शराब पी है तो तुम्हें पता होगा, जितने शराबी सम्हलकर चलते हैं कोई नहीं चलता। हालांकि वे गिरते हैं। मगर सम्हलकर वे बहुत चलने की कोशिश करते हैं। जिसने शराब नहीं पी है, वह सम्हलकर चलने की कोशिश ही क्यों करेगा? वह सम्हलकर चलता ही है। इसकी कोशिश थोड़े ही करनी होती है। जो होश में है उससे पुण्य होता ही है, पुण्य करना थोड़े ही होता है। किया पुण्य भी दो कौड़ी का हो जाता है। करने में ही तो अहंकार समा जाता है।
जो होश में है उससे पुण्य ऐसे ही होता है जैसे, बुद्ध कहते हैं, गाड़ी
के पीछे चाक चले आते हैं, आदमी के पीछे छाया चली आती है। जो गलत है, बेहोश है, उससे पाप भी ऐसे ही होता है जैसे गाड़ी के पीछे चाक चले आते हैं। गाड़ी गुजरती है तो चाक के निशान रास्ते पर बन जाते हैं। वह अपने आप हो जाते हैं। तुम निशानों को पोंछने में मत लग जाना, क्योंकि गाड़ी चलती ही जा रही है। तुम निशान पोंछते जाओगे, गाड़ी नए रास्ते पर नए निशान बनाती चली जाएगी। तुम छाया से मत लड़ने लगना, क्योंकि जब तक तुम्हीं नहीं खो गए हो, छाया कैसे खो जाएगी? जब तुम्हीं खो जाओगे, तभी छाया खो जाएगी।
बड़ी पुरानी कथाएं हैं, जिनमें यह कहा है कि ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति
की छाया नहीं बनती। उसका यह मतलब नहीं है कि वह धूप में चलता है तो उसकी छाया नहीं बनती। इसका मतलब यही है कि ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति का कोई कृत्य नहीं रह जाता। सिर्फ अस्तित्व रह जाता है। वह होता है। और उसका होना इतना महिमावान हो जाता है कि उसकी कोई रेखा नहीं छूटती। पुण्य की रेखा भी नहीं छूटती। क्योंकि जिसकी भी रेखा छूट जाए वही पाप हो गया। कृत्य बनता ही नहीं। कर्म होता ही नहीं। इसी को कृष्ण ने गीता में कहा है कि जब तुम फलाकांक्षा छोड़ दोगे, तो तुम्हारा कर्म अकर्म हो जाता है। जैसे हुआ ही नहीं। जैसे पानी पर किसी ने लकीर खींची, खिंच भी न पायी और मिट गयी।

पाप का अर्थ है, इस ढंग से जीना कि जहां तुम हो वहां तुम नहीं हो। कहीं और... कहीं और... सदा कहीं और... । बूढ़े हो जाओगे तब जवानी की सोचोगे। जवान हो गए तब बचपन की सोचोगे। जब तुम मरने की घड़ी से घिरोगे, मृत्यु की शय्या पर, तब तुम्हें जीवन की याद आएगी।
यह बात विरोधाभासी लगती है, मगर बड़ी सच है। बहुत लोग मरकर ही पाते हैं,
कि जिंदा थे। जिंदगी में उनको कभी इसका पता न चला। मरे तभी उनको अनुभव हुआ--अरे! जिंदा थे। बहुत लोग जब चीजें हाथ से छूट जाती हैं तभी होश से भरते हैं कि अरे! हाथ में थी और चली गयी। यह बड़ी आश्चर्य की बात है! और जब तक हाथ में नहीं आती है कोई चीज तब तक भी वे कामना करते हैं; और जब हाथ से छूट जाती है तब भी याद करते हैं; और जब हाथ में होती है तब उनके जैसे जीवन के द्वार बंद हो जाते हैं। यही पाप है।
बुद्ध कहते हैं, "इस लोक में भी शोक करता है और परलोक में भी। पापी दोनों जगह शोक करता है।"
वह यहां भी चूक रहा है, वहां भी चूकेगा। क्योंकि चूकने का अभ्यास निरंतर गहन होता जा रहा है। तुम यह मत सोचना कि तुम्हें स्वर्ग मिल सकता है। मिल सकता होता तो अभी मिल सकता था। तुम यह मत सोचना कि स्वर्ग कल मिलेगा, और मरने के बाद मिलेगा। क्योंकि स्वर्ग तो चारों तरफ मौजूद है-- अभी और यहीं। इसी क्षण स्वर्ग बरसा है तुम्हारे चारों तरफ। तुम्हें चारों तरफ से घेरा है स्वर्ग ने, पर तुम मौजूद नहीं हो। और तुम अगर आज मौजूद नहीं हो, तो कल मरने के बाद तुम कैसे मौजूद हो सकोगे? मौजूद होने का कोई अभ्यास ही नहीं है। मरने के बाद भी तुम वही होओगे जो तुम हो।
इसी को तो हम कहते हैं, बार-बार जन्म लोगे। बार-बार जन्म लेने का अर्थ है, तुम फिर-फिर वही हो जाओगे जो तुम थे। तुम दोहराओगे। तुम पुनरुक्ति करोगे। तुम्हारे जीवन में क्रांति न होगी, पुनरुक्ति होगी। तुम्हारा जीवन रोज-रोज नए का आविर्भाव न होगा, केवल पुरानी राख का जमता जाना। तुम्हारा जीवन अंगार की तरह न होगा, तुम्हारा जीवन राख के ढेर की तरह होगा। तुम वही-वही करते रहोगे जो तुमने पहले भी किया है, और भी पहले किया है।
तुम अगर आज अचानक तुम्हारी आंख पर पट्टी बांध दी जाए और तुम्हें स्वर्ग में ले जाकर छोड़ दिया जाए, क्या तुम सोचते हो तुम सुखी हो जाओगे? इसे थोड़ा विचारना। तुम स्वर्ग में भी सुखी न हो सकोगे। तुम वहां भी नर्क खोज लोगे। क्योंकि तुम्हें आता ही नहीं उस बात को देखना जो मौजूद हो। अन्यथा तुम स्वर्ग में छोड़े ही गए हो। यह मैं कोई कल्पना नहीं कर रहा हूं, तुम स्वर्ग में छोड़े ही गए हो। और आंख पर पट्टी भी नहीं बांधी हुई है।
फिर से एक बार सूरज को देखो। फिर से एक बार फूलों को देखो। फिर से एक बार पक्षियों के गीत सुनो, जैसे कभी न सुने हों। फिर से एक बार नए और ताजे होकर जिंदगी से संपर्क साधो। फिर से एक बार अभी और यहीं उत्सव में डूब जाओ। अचानक तुम पाओगे, स्वर्ग था। चूकते हम इसलिए न थे कि स्वर्ग दूर था। चूकते हम इसलिए थे कि स्वर्ग में थे, लेकिन वर्तमान में होने की कला न आती थी।
"इस लोक में भी शोक करता है और परलोक में भी; पापी दोनों जगह शोक करता है। वह अपने मैले कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।"
अतीत को याद करता है तो सिवाय मैले कर्मों के कुछ दिखायी नहीं पड़ता है। सोया हुआ आदमी मैले कर्म ही कर सकता है। उसकी पूरी कथा, उसका पूरा इतिहास मैले कर्मों का होता है। जैसे किसी ने नींद में चित्र बनाया हो। देखता है, कुछ समझ में नहीं आता। एक बेबूझ पहेली मालूम पड़ती है, स्याही के धब्बे मालूम पड़ते हैं। रंग बेतरतीब हैं। कुछ समझ में नहीं आता। जैसे किसी पागल ने बनाया हो। यद्यपि पागल मिल जाएंगे उसकी प्रशंसा करने को भी। क्योंकि दूसरे भी इतने सोए हुए हैं। तुम्हारे जीवन की प्रशंसा करने वाले लोग मिल जाएंगे, क्योंकि वे भी तुम जैसे हैं।
मैंने सुना है कि पिकासो के चित्रों की एक प्रदर्शनी पेरिस में हुई।
एक चित्र के पास बड़ी भीड़ थी। और लोग बड़ी प्रशंसा कर रहे थे। और तब पिकासो आया और उसने आकर चित्र को सीधा टांगा, वह गलती से उलटा टंगा था। लोग उसकी

प्रशंसा कर रहे थे। उनमें से किसी को यह भी पता न चला कि वह उलटा टंगा है।
पिकासो के चित्र उलटे या सीधे, फर्क करना मुश्किल है। पिकासो भी कैसे करता था, यह भी मुश्किल है। जैसे किसी पागल ने रंग डाले हों।
कहा जाता है, एक दफे एक अमरीकी करोड़पति ने पिकासो से दो चित्र मांगे।
कितना ही मूल्य देने को वह तैयार था। उसने नया भवन बनाया था, दो चित्रों की जरूरत थी। पिकासो के पास एक ही चित्र तैयार था। वह भीतर गया, उसने कैंची से उसके दो टुकड़े कर दिए। उसने लाकर दोनों चित्र दे दिए, और दो चित्र के दाम ले लिए।
पक्का करना मुश्किल है। पिकासो चार भी कर देता तो भी पता नहीं चलता। पिकासो के चित्रों में मनुष्य की पूरी विक्षिप्तता प्रगट हुई है। और अगर उसके चित्रों का इतना समादर हुआ, तो उसका कुल कारण इतना था कि मनुष्य के मन की जैसी दशा है, उसका ठीक-ठीक चित्रण उसके चित्रों में हो गया है। पिकासो के चित्रों को अगर थोड़ी देर गौर से देखते रहो तो तुम परेशान होने लगोगे। और थोड़ी देर गौर से देखो, तो तुम घबड़ाने लगोगे। अगर तुम देखते ही रहो रातभर टकटकी लगाकर, सुबह तक पागल हो जाओगे। जैसे किसी ने बेहोशी में, विक्षिप्तता में रंग फेंक दिए हैं। लेकिन यही तुम्हारी जिंदगी है। बुद्ध कहते हैं, "पापी अपने मैले कर्मों को देखकर शोक करता है।"
देखता है पीछे तो सिवाय अंधेरे के कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। अंधेरे में अपनी ही विक्षिप्त आवाजें और चीत्कार सुनायी पड़ते हैं। अंधेरे में अपने ही पैरों के पदचिह्न बने दिखायी पड़ते हैं। उनसे ऐसा नहीं लगता कि कोई नाचा हो, उनसे ऐसा लगता है जैसे जंजीरों में बंधा हुआ कोई कैदी गुजरा हो। उन कृत्यों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि किसी जीवन में फूल खिले हों। उन्हें देखकर ऐसे ही लगता है कि कोई जीवन अनखिला ही डूब गया है। उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि सुबह हुई ही नहीं और सांझ हो गयी है। सूरज निकला ही नहीं और डूब गया; कली खिली ही नहीं और मुर्झा गयी। शोक होता है पीछे देखकर। और आगे की आशा बांधे रखता है पापी।
परलोक पापी की आशा है। कोई परलोक नहीं है। जो है, अभी है, यहां है। सब अभी है, यहां है। कोई परलोक नहीं है। परलोक पापी की आशा है; भविष्य पापी की कल्पना है। वर्तमान पुण्यात्मा का जीवन है। भविष्य पापी की आकांक्षा है। भविष्य की आकांक्षा तभी पैदा होती है जब वर्तमान बांझ होता है। जब वर्तमान में कुछ भी नहीं होता, तो आदमी आगे की अपेक्षा करता है। क्योंकि बिना आशा के फिर जीएगा कैसे! अभी तो कुछ भी नहीं है।
अगर तुम आज ही अपने को देखो, तो आत्महत्या करने का मन होगा, कुछ भी तो नहीं है। तुम कहते हो कोई फिकर नहीं। आज तक कुछ भी नहीं हुआ, कल होगा। हिम्मत बढ़ती है। सिर फिर खड़ा हो जाता है, पैर फिर मजबूत हो जाते हैं। आज तक सब व्यर्थ हुआ, कोई चिंता की बात नहीं, कल आ रहा है। कल के साथ सारी आशाएं फलीभूत होंगी; सब बीज अंकुरित होंगे; सब कलियां खिलेंगी। कल आ रहा है। और कल कभी आता नहीं। और रोज कल को तुम आगे सरकाए चले जाते हो। ऐसे ही एक दिन तुम मर जाते हो।
परलोक पापी की आशा है। यह सुनकर तुम्हें हैरानी होगी। पुण्यात्मा परलोक की बात ही नहीं करता। पुण्यात्मा कहता है, यहीं है, अभी है। पुण्यात्मा यह नहीं कहता कि परमात्मा आकाश में बैठा है। पुण्यात्मा कहता है, परमात्मा ने सब तरफ से घेरा है, श्वास-श्वास में वही भीतर जा रहा है, वही बाहर जा रहा है। पापी कहता है, परमात्मा आकाश में बैठा है। पुण्यात्मा तुममें झांकता है और परमात्मा को पाता है। पापी चारों तरफ देखता है, कहीं कोई परमात्मा नहीं दिखायी पड़ता। सब तरफ दुश्मन दिखायी पड़ते हैं। वह कल्पना करता है परमात्मा की, वह आकाश में बैठा है। क्योंकि इतने दुश्मनों के बीच जीना मुश्किल है, कोई सहारा चाहिए। कल्पना में सहारे खोजता है पापी। सत्य में उसके लिए कोई सहारा नहीं है, क्योंकि सत्य में होने का उसे ढंग ही न आया। उतना जतन न आया।
बस इसी धुन में रहा मर के मिलेगी जन्नत
तुझको ऐ शेख न जीने का करीना आया

उसे जीने का करीना न आया; ढंग न आया; जीने की शैली न आयी। वह इसी आशा में रहा कि मरेंगे, तब जन्नत, तब स्वर्ग होगा। जिसने स्वर्ग को यहां न पाया, वह कहीं भी न पा सकेगा। जिसने यहां खोया, वह सब जगह खो देगा।
"इस लोक में और परलोक में भी पापी शोक करता है।"
"इस लोक में मुदित होता है, और परलोक में भी; पुण्यात्मा दोनों लोक में मुदित होता है।"
ये बुद्ध के वचन बड़े प्यारे हैं। इस लोक में मुदित होता है, खिलता है, नाचता है, आनंदित होता है।
"इस लोक में मुदित होता है, और परलोक में भी।"
क्योंकि परलोक इसी लोक का विस्तार है। परलोक इसी लोक की संतान है। परलोक इसी लोक से आता है, निकलता है, पैदा होता है। जैसे बीज से अंकुर निकलता है। जैसे मां के गर्भ से बेटा पैदा होता है, ऐसे ही वर्तमान से भविष्य पैदा होता है। इसी लोक से, इसी क्षण से आने वाला क्षण आ रहा है। इसी क्षण में छिपा है। जैसे बीज में वृक्ष छिपा है, ऐसा वर्तमान में भविष्य छिपा है। इस लोक में परलोक छिपा है। पदार्थ में परमात्मा छिपा है।
"इस लोक में मुदित होता है, परलोक में मुदित होता है; पुण्यात्मा दोनों लोक में मुदित होता है।"
क्यों? जिसे यहां मुदित होना आ गया, उसे सब जगह मुदित होना आ गया। असली सवाल लोक का नहीं है, असली सवाल प्रमुदित होने की कला का है। जिसे हंसना आ गया; जिसे नाचना आ गया; जिसने जीवन की धुन को पकड़ लिया; और जो जीवन के गीत में तालबद्ध होना सीख गया; जो जीवन के साथ छंद का अनुभव करने लगा; जिसके पैर जीवन के नाच के साथ पड़ने लगे; जीवन की बांसुरी ने जिसके हृदय को छू लिया; वह सभी जगह प्रमुदित होता है। तुम उसे नर्क में न डाल सकोगे। शास्त्र कहते हैं, पुण्यात्मा स्वर्ग जाता है, पापी नर्क जाता है। बात बिल्कुल भिन्न है। पापी कहीं और जा नहीं सकता। ऐसा नहीं कि नर्क भेजा जाता है। कहीं भी भेजो, पापी नर्क पाता है। ऐसा नहीं कि पुण्यात्मा को स्वर्ग भेजा जाता है। कौन बैठा है सब हिसाब करने को! कौन इस सब व्यवस्था को बिठाता रहेगा! किसको पड़ी है! पुण्यात्मा को कहीं भी भेजो, वह स्वर्ग पहुंच जाता है।
मैं एक कहानी पढ़ता था। यूरोप का एक बहुत बड़ा विचारक हुआ, एडमंड बर्क।
वह रोज सुनने जाता था एक पादरी को। पादरी ने एक दिन चर्च में कहा कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। एडमंड बर्क खड़ा हो गया। उसने कहा, मुझे एक बात पूछनी है। आपने दो बातें कहीं, कि जो लोग पुण्यात्मा हैं, और परमात्मा में भरोसा करते हैं, वे स्वर्ग जाते हैं। मैं पूछता हूं कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा नहीं करते, वे कहां जाते हैं? और मैं यह भी पूछना चाहता हूं कि जो परमात्मा में भरोसा करते हैं और पुण्यात्मा नहीं हैं, वे कहां जाते हैं?
एडमंड बर्क की जिज्ञासा एकदम प्रामाणिक थी। पादरी भी ठगा सा रह गया।
अब क्या कहे? उसे बड़ी उलझन हो गयी। अगर वह कहे कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा नहीं करते, वे भी स्वर्ग जाते हैं; तो स्वभावतः बर्क कहेगा, फिर परमात्मा में भरोसे की जरूरत क्या है? पुण्य ही काफी है। और अगर मैं कहूं कि जो लोग पुण्यात्मा हैं और परमात्मा में भरोसा नहीं करते, वे स्वर्ग नहीं जाते; तो बर्क कहेगा, तो फिर पुण्य की झंझट में पड़ने की क्या जरूरत? परमात्मा में भरोसा काफी है। पादरी ने कहा, मुझे तुमने उलझन में डाल दिया। थोड़ा मुझे सोचने का समय दो; कल।
रातभर पादरी सो न सका। आदमी निष्ठावान रहा होगा। चालाक नहीं, बुद्धिमान रहा होगा। बहुत सोचा, लेकिन उलझन न हल हुई। सुबह-सुबह, भोर होते- होते, रातभर का जागा सोचता-सोचता नींद लग गयी। नींद में उसने एक सपना देखा कि वह एक ट्रेन में बैठा है। उसने लोगों से पूछा, यह ट्रेन कहां जा रही है? उन्होंने कहा, यह स्वर्ग जा रही है। उसने कहा, चलो अच्छा हुआ! यही तो मुझे पूछना था। यह अच्छा ही हुआ, आंख से ही देख लूंगा। तो उसने सोच रखे नाम मन में--जैसे सुकरात; परमात्मा में भरोसा नहीं करता था, आदमी पुण्यात्मा था।

जैसे बुद्ध; इससे और पुण्य की साकार प्रतिमा कहां पाओगे? लेकिन आदमी परमात्मा में भरोसा नहीं करता था। तो उसने कहा, ठीक है, अगर ये बुद्ध और ये सुकरात स्वर्ग में मिल गए तो उत्तर साफ हो जाता है, कि परमात्मा में भरोसे की जरूरत नहीं। अगर ये स्वर्ग में न मिले, तो भी उत्तर साफ हो जाता है कि पुण्य से कुछ भी न होगा, असली चीज परमात्मा में भरोसा है।
स्वर्ग के स्टेशन पर उतरा, बड़ी हैरानी हुई। स्टेशन बड़ा उदास था। जैसे
कई जमानों की धूल जमी हो, किसी ने साफ न की हो। थोड़ा हैरान हुआ। जाकर गौर से देखा तख्ती पर, तो स्वर्ग ही लिखा है। गांव में प्रविष्ट हुआ, बड़ी बेरौनक थी बस्ती। कहीं फूल खिलते न मालूम पड़ते थे। और किसी घर से वीणा के स्वर न उठते थे। कहीं कोई नाचता न मिला। मिले भी ऐसे--धर्मगुरु, पादरी, मुनि; मगर कोई रौनक न मिली। ऐसे जैसे मुर्दे चल रहे हों। कहीं कोई महोत्सव न मिला। जिंदगी ऐसी लगी जैसे एक बोझ हो वहां। उसने पूछा कई से कि सुकरात, गौतम बुद्ध? लोगों ने कहा, नाम सुने नहीं। यहां नहीं हैं। दूसरी जगह, नर्क में खोजो।
भागा स्टेशन आया। पूछा कि नर्क की गाड़ी? भाग्य से खड़ी थी, जा ही रही थी। वह बैठ गया। नर्क पहुंचा तो बड़ा हैरान होने लगा। जैसे किसी महोत्सव में प्रवेश हो रहा हो। बड़ा स्वच्छ था स्टेशन। जीवन मालूम पड़ता था। फूल खिले थे, गीत बजते थे, लोग चलते थे तो उनके पैरों में गति थी, रौनक थी, रंग-बिरंगापन था, जीवन का इंद्रधनुष जैसे खिला था। वह बड़ा हैरान हुआ कि यह तो कुछ गड़बड़ है। नाम में, तख्ती में कुछ भूल-चूक हो गयी। इसको स्वर्ग होना चाहिए। उसने पूछा कि सुकरात और बुद्ध? उन्होंने कहा कि हां, वे यहां हैं। और नाम में कोई गलती नहीं हुई है। उनके आने से ही यह नर्क स्वर्ग हो गया। नींद खुल गयी उसकी। घबड़ाहट में नींद खुल गयी कि यह क्या मामला है? सपना तो खो गया। जब वह सुबह चर्च गया, उसने कहा कि भई, मैं कुछ और न कह सकूंगा, लेकिन रात एक सपना आया है वह मैं दोहरा देता हूं उत्तर में। सपने में मुझे ऐसा दिखायी पड़ा; कहां तक सही है, कहां तक झूठ है, कुछ कह नहीं सकता। मेरी कोई सामर्थ्य भी नहीं इसका निर्णय लेने की। इतना मुझे दिखायी पड़ा और वह यह कि जहां भी पुण्यात्मा पुरुष पहुंच जाते हैं, वहीं स्वर्ग है। जहां पापी पहुंच जाते हैं, वहीं नर्क है। पापी नर्क जाते हैं, ऐसा नहीं। पापी अपना नर्क अपने साथ लेकर चलते हैं। और पुण्यात्मा स्वर्ग जाते हैं, ऐसा नहीं। पुण्यात्मा अपना स्वर्ग अपने साथ लेकर चलते हैं। तुम उन्हें कहीं भी फेंक दो।
और मुझे भी बात जंचती है। सपना नहीं, सच मालूम होती है। बुद्ध को तुम नर्क में भी डाल दो तो तुम नर्क में न डाल सकोगे। यह असंभावना है। बुद्ध वहां स्वर्ग खड़ा कर लेंगे। बुद्ध अपना स्वर्ग अपने साथ लेकर चलते हैं, वह बुद्ध के जीवन की हवा है। वह उनके आसपास चलता हुआ मौसम है। उसको तुम उनसे छीन न सकोगे। नर्क बदल जाएगा, बुद्ध न बदलेंगे। तुम बुद्ध को दुखी नहीं कर सकते, तो तुम नर्क में कैसे डाल सकते हो? तुम तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं को सुखी नहीं कर सकते, तुम स्वर्ग कैसे भेज सकते हो?
बस इसी धुन में रहा मर के मिलेगी जन्नत
तुझको ऐ शेख न जीने का करीना आया
हे धर्मगुरु, तुझे जीने का करीना न आया। तू इसी आशा में रहा कि मरकर मिलेगा स्वर्ग। जिसने जीते जी स्वर्ग न पाया, वह मरकर कैसे पा लेगा? जब जीते जी चूक गए तो मुर्दा होकर कैसे पा लोगे? स्वर्ग तो होता है तो जीवन से जुड़ता है, मौत से नहीं। स्वर्ग होता है तो जीवन से निकलता है। मौत से कैसे निकलेगा? स्वर्ग मरघटों में नहीं है। स्वर्ग वहां है जहां जीवन नाचता है हजार-हजार रंगों में। स्वर्ग वहां है जहां जीवन की धुन बज रही है हजार-हजार स्वरों में। स्वर्ग वहां है जहां तुम जितने गहरे जीवंत हो जाते हो। स्वर्ग सिकुड़ना नहीं है, फैलाव है। इसलिए हिंदुओं ने अपने परम सत्य
को ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ होता है, विस्तीर्ण। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता ही गया है। जिसकी कोई सीमा नहीं आती।
तुमने कभी ख्याल किया, दुख सिकुड़ता है, आनंद फैलता है। दुख का स्वभाव
है सिकुड़ना। जब तुम दुखी होते हो, तब तुम चाहते हो द्वार-दरवाजे बंद करके

बैठ जाओ। कोई मिलने न आए, किसी से बात न करनी पड़े, बाजार न जाना पड़े। तब तुम अपने को बंद कर लेना चाहते हो। सिकुड़कर पड़ जाना चाहते हो बिस्तर में। अगर बहुत ही दुखी हो जाता है आदमी, तो मरने की चेष्टा करने लगता है। कब्र में समा जाना चाहता है, ताकि फिर कभी कोई दुबारा न मिले। अकेला हो जाऊं। इसलिए दुखी आदमी आत्मघात कर लेता है। लेकिन जब सुख भरता है, जब महासुख उतरता है, जब तुम नाचते होते हो, तब तुमसे कोई कहे घर में बैठो; तुम कहोगे, नहीं, अभी तो जाना है, अभी तो बांटना है, अभी तो फैलना है।
तुमने देखा, महावीर और बुद्ध जब दुखी थे, जंगल भाग गए। लेकिन जब आनंदित हुए, जब उतरा अमृत उनके जीवन में, लौट आए वापस बस्ती में। इस पर किसी ने कभी कोई सोचा नहीं, कि जब वे दुखी थे तब जंगल भाग गए थे--अकेले में। उसकी बड़ी कथाएं शास्त्रों में हैं, कि उन्होंने सब छोड़ दिया और जंगल चले गए। लेकिन इस संबंध में शास्त्र कुछ भी नहीं कहते कि एक दिन उन्होंने जंगल छोड़ दिया और बस्ती में वापस आ गए।
वह दूसरी घटना और भी महत्वपूर्ण है। क्योंकि जब आनंद उनके जीवन में उतरा तो बांटने का भाव भी आया। आनंद के साथ आती है करुणा। आनंद के साथ आती है एक अभीप्सा कि बांटो, लुटो। जो मिला है, उसे दूसरों को दे दो। क्योंकि आनंद का एक स्वभाव हैः बांटो, बढ़ता है; न बांटो, घटता है। लुटाओ, बढ़ता है; छिपाओ, मरता है।
ब्रह्म हमने नाम दिया है परम सत्य को। सच्चिदानंद कहा है, और ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ है, जो विस्तीर्ण होता चला गया। जो कहीं सिकुड़ता ही नहीं, जो फैलता ही चला जाता है। विस्तार जिसका स्वभाव है। जीवन जब तुम्हारा खिलता है, तो फूल की तरह फैलता है, सुगंध लुटती है। जब तुम मुर्झाते हो दुख में, तो बंद हो जाते हो, सिकुड़ जाते हो, जड़ हो जाते हो। प्रवाह रुक जाता है।
इसे ध्यान रखना--
"इस लोक में मुदित होता है।"
मुदित शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। यह फूल की दुनिया से आया हुआ शब्द है-- प्रमुदित। मुदित का अर्थ होता है--खिलना, फूलना, फैलना।
"इस लोक में मुदित होता है।"
मुदित शब्द की ध्वनि भी खिलाने वाली है।
"और परलोक में भी।"
क्योंकि परलोक कहीं और थोड़े ही है। इसी लोक से निकलता है। इसी लोक कीशृंखला है। इसी लोक का अगला कदम है। तुम्हारा आध्यात्मिक जीवन तुम्हारे सांसारिक जीवन का ही अगला कदम है। तुम्हारा मंदिर तुम्हारे घर का ही अगला कदम है। घर के खिलाफ जो मंदिर है, वह मंदिर मंदिर नहीं है। संसार के खिलाफ जो अध्यात्म है, वह अध्यात्म नहीं। आज के खिलाफ जो कल है, वह झूठा है। इस लोक के खिलाफ जो परलोक है, वह परलोक सिर्फ तुम्हारी आकांक्षाओं में, सपनों में होगा, सत्य में नहीं है। क्योंकि सत्य में तो सब जुड़ा है। तुम्हारा घर और मंदिर एक ही जीवन-यात्रा के दो पड़ाव हैं। संसार और परमात्मा एक ही यात्रा के दो कदम हैं।
"इस लोक में मुदित होता है, और परलोक में भी; पुण्यात्मा दोनों लोक में मुदित होता है। वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर मुदित होता है, प्रमुदित होता है।"
और जब तुम लौटकर पीछे देखते हो--अगर तुम्हारे जीवन के ढंग में रोशनी रही हो, अगर जतनपूर्वक तुम जीए हो, अगर होशपूर्वक तुमने कदम उठाए हैं--तो तुम जब लौटकर देखते हो, तो एक प्रकाश से भरी यात्रा, हर कदम पर हीरे जड़े! और तुम्हारे कदमों में शराबी की डगमगाहट नहीं दिखायी पड़ती, होश की थिरता मालूम होती; और यात्रा सिर्फ यात्रा नहीं मालूम होती, तीर्थयात्रा मालूम होती है।
लौटकर भी पुण्यात्मा प्रमुदित होता है। पीछे भी स्वर्ग था, आगे भी स्वर्ग है, क्योंकि अभी स्वर्ग है। जिसका स्वर्ग अभी है, उसके दोनों तरफ स्वर्ग फैल जाता है। और जिसका स्वर्ग अभी नहीं है, उसके दोनों तरफ नर्क फैल जाता है। इस क्षण में सब कुछ निर्भर है। यह क्षण निर्णायक है।

"इस लोक में संतप्त होता है, और परलोक में भी; पापी दोनों लोक में संतप्त होता है। मैंने पाप किया, कह-कहकर संतप्त होता है। दुर्गति को प्राप्त कर वह फिर संतप्त होता है।"
"भले ही कोई बहुत सी संहिता कंठस्थ कर ले, लेकिन प्रमादवश उसका आचरण न करे तो वह दूसरों की गौएं गिनने वाले ग्वाले के समान है, और वह श्रामण्य का अधिकारी नहीं होता।"
भले ही कोई पूरा वेद कंठस्थ कर ले, संहिता कंठस्थ कर ले, लेकिन उसका आचरण न करे; कितना ही ज्ञानी हो जाए, लेकिन ज्ञान उसका जीवन न बने, तो वह पाप में ही जीएगा। जानने से पुण्य का कोई संबंध नहीं है। जीने से संबंध है।
खुश्क बातों में कहां ऐ शेख कैफे-जिंदगी
वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है
पीने के संबंध में कितनी ही बातें याद कर लो, शराब के सब फार्मूले कंठस्थ कर लो, परमात्मा के संबंध में जो कहा गया है याद कर लो, कितनी ही संहिता कंठस्थ कर लो--वह तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है।
खुश्क बातों में कहां...
वो तो पीकर ही मिलेगा जो मजा पीने में है
तो बुद्ध कहते हैं कि जब तक जो तुमने जाना वह तुम्हारा जीवन न हो, जब
तक तुम्हारे जीने और तुम्हारे जानने में अंतर होगा, तब तक तुम भटकोगे। जब तुम्हारा जानना ही जीवन होगा, और तुम्हारा जीना ही जानना होगा; जब तुम्हारे होने में और तुम्हारे बोध में कोई अंतर न रह जाएगा; जब संहिता कंठ में न होगी, हृदय में होगी; जब वेद केवल मस्तिष्क की खुजलाहट न होगी, हृदय का भाव बनेगा; तब चाहे शब्द भूल जाएं, सिद्धांत विस्मृत हो जाएं, लेकिन तुम जीते-जागते प्रमाण होओगे, तुम सिद्धांत होओगे। तुम्हारे पास चाहे ईश्वर को प्रमाणित करने का कोई तर्क न हो, लेकिन तुम्हीं तर्क हो गए होओगे। तुम्हारी मौजूदगी प्रमाण बनेगी।
इसीलिए तो बुद्ध ईश्वर की बात नहीं करते। वे स्वयं ईश्वर के प्रमाण हैं। उन्हें देखकर जिसको भरोसा न आया, उसे तर्क देकर भी भरोसा कैसे दिलाया जा सकेगा?
एक युवक ने बुद्ध से पूछा है एक दिन कि मुझे आनंद, निर्वाण, मोक्ष, इन
पर कोई भरोसा नहीं आता। आप कृपा करें और मुझे समझाएं। बुद्ध ने कहा, मुझे देखो; और अगर मुझे देखकर भरोसा न आया, तो मेरे कहने से कैसे भरोसा आ जाएगा? मैं यहां मौजूद हूं प्रमाण की तरह। और अगर तुम मुझे नहीं देख पाते, तो तुम मुझे सुन कैसे पाओगे? जिसने मुझे देखा, उसे सुनने की जरूरत न रही। और जिसने सुनने का ही ध्यान रखा, वह मुझे देख न पाएगा।
"भले ही कोई बहुत सी संहिता कंठस्थ कर ले, लेकिन प्रमादवश उसका आचरण न करे।"
जानना तो बड़ा सरल है। क्योंकि जानने से अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। मैं जानने वाला हो गया; मुझे चारों वेद याद हैं; दूसरे अज्ञानी हैं, मैं ज्ञाता हूं--जानने में एक अकड़ है, एक अहंकार है, प्रमाद है।
इसलिए तुम पंडित को बड़ा अकड़ा हुआ पाओगे। अकड़ कोढ़ी है, नपुंसक है। भीतर कुछ भी नहीं है, लेकिन पंडित को तुम बड़ा अकड़ा पाओगे। वह सब तरफ कहे बिना कहे घोषणा करता है कि मैं जानता हूं। जानने से तो अहंकार कटता नहीं, बढ़ता है। जीने से गिर जाता है।
जो परमात्मा के रास्ते पर या सत्य के रास्ते पर एक कदम भी चलेगा, वह झुकने लगेगा। जो शास्त्र के रास्ते पर लाख कदम भी चले, झुकना तो दूर रहा और भी अकड़ जाएगा। शास्त्र खोपड़ी को और भी भर देते हैं, मिटाते नहीं। शास्त्र हृदय से और दूर कर देते हैं, पास नहीं लाते। शास्त्रों में सत्य नहीं मिलता किसी को। शास्त्रों से तो और अहंकार मजबूत हो जाता है।
"भले ही कोई बहुत सी संहिता कंठस्थ कर ले, लेकिन प्रमादवश उसका आचरण न करे तो वह दूसरों की गौएं गिनने वाले ग्वाले के समान है।"
बड़ा प्यारा प्रतीक है। जैसे ग्वाला तुम्हारे गांवभर की गउओं को इकट्ठा करके जंगल ले जाता है, दिनभर चराता है, गिनती रखता है, लौटा लाता है;

कहता है, पांच सौ गौएं चराकर लौटा। एक गऊ तुम्हारी नहीं है उसमें! सब दूसरों की हैं। वेद कितने ही सुंदर हों, दूसरे की गौएं हैं। उपनिषद कितने ही सुंदर हों, दूसरे की गौएं हैं। तुम्हारा क्या है? ग्वाले ही बने रहोगे? मालिक कब बनोगे?
शब्द सीख लेने से आदमी ग्वाला ही रह जाता है। और गौएं कितनी ही हों, अपनी एक भी नहीं। सब उधार, सब दूसरों की, लेकिन ग्वालों में भी अकड़ होती है। अगर एक ग्वाला सौ गौएं रखता है और दूसरा ग्वाला पांच सौ, तो पांच सौ वाला ज्यादा अकड़ा रहता है। वह कहता है, तू है क्या मेरे सामने? सौ गौएं चराता है, मैं पांच सौ चराता हूं।
मगर गौएं सब दूसरों की हैं, सौ हों कि पांच सौ हों। तुम चतुर्वेदी हो,
कि त्रिवेदी, कि द्विवेदी, इससे क्या फर्क पड़ता है? गौएं सब दूसरों की हैं। अपनी कोई एक भी गाय हो तो ही जीवन को पुष्ट करती है; तो ही उसका दूध तुम्हें मिल सकता है; तो ही तुम उसके मालिक हो। वह दुबली-पतली हो, दीन-दरिद्र हो, अपनी हो, तो भी किसी की स्वस्थ स्वीडन से आयी गाय के मुकाबले भी बेहतर है।
पीने वाले एक ही दो हों तो हों
मुफ्त सारा मयकदा बदनाम है
ज्ञानी बहुत दिखायी पड़ते हैं।
पीने वाले एक ही दो हों तो हों
वेद के जानने वाले, उपनिषद, कुरान के जानने वाले बहुत हैं।
पीने वाले एक ही दो हों तो हों
मुफ्त सारा मयकदा बदनाम है
शराबघर में जितनों को तुम बैठे देखते हो सबको पीने वाले मत समझ लेना। उनमें से कई तो पानी ही पी रहे हैं, और नाटक कर रहे हैं। नाटक कर रहे हैं कि गहरे नशे में हैं। और पानी पीकर सिर हिलाने से कुछ भी नहीं होता।
ज्ञान के मयखाने में, सत्य की शराब जहां बिकती है, मिलती है, वहां पीने वाले बहुत मुश्किल से कभी एक दो मिलेंगे। क्योंकि पीने वाले को मिटना पड़ता है। वह रास्ता खतरनाक है। जोखिम का है, जुआरी का है।
तो बहुत से तो केवल पीने का बहाना करते हैं, डगमगाकर चलते हैं, नाटक करते हैं। पंडितों को गौर से देखना। शराब कभी पी ही नहीं; शराब का शास्त्र कंठस्थ किया है। और उसी से मतवाले होकर चल रहे हैं। बातचीत सुनी है, नशा छा गया है। इस नशे की भ्रांति में मत पड़ना।
"जो दूसरों की गौएं गिनने वाले ग्वाले के समान है, वह श्रामण्य का अधिकारी नहीं हो सकता।"
इस शब्द को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। भारत के पास दो शब्द हैं-- ब्राह्मण और श्रमण। कभी ब्राह्मण शब्द बड़ा अनूठा था। उसका अर्थ था, जिसने ब्रह्म को जाना। लेकिन फिर शब्द गिरा, पतित हुआ। फिर उसका अर्थ इतना ही हो गया कि जो शास्त्रों का जानकार है, ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ है। ब्रह्म के जानने से उसका कोई संबंध न रहा। वह शब्द पतित हो गया। उसका अर्थ खो गया। उद्दालक ने अपने बेटे श्वेतकेतु को कहा है कि ध्यान रख, हमारे घर में
बस कहलाने वाले ब्राह्मण पैदा नहीं हुए। हमारे घर में सच में ही ब्राह्मण पैदा हुए हैं। तो तू याद रखना, कहीं तू यह मत समझ लेना कि तू ब्राह्मण-कुल में पैदा हुआ, इसलिए ब्राह्मण हो गया। ब्राह्मण होना पड़ेगा। ब्राह्मण-कुल में पैदा होने से कोई ब्राह्मण होता है! ब्रह्म को जानने से कोई ब्राह्मण होता है। ब्रह्म के कुल में जब तक तुम पैदा न हो जाओ, जब तक ब्रह्म ही तुम्हारा कुल न हो जाए, जब तक ब्रह्म की कोख से ही तुम पुनरुज्जीवित न होओ, पुनर्जन्म न लो, तब तक ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता।
लेकिन यह हो गया था। सभी शब्दों के साथ ऐसा ही होता है। तो बुद्ध और महावीर को एक नया शब्द खोजना पड़ा। वह शब्द है, श्रमण। वह ब्राह्मण के विपरीत है। श्रमण का अर्थ होता है, जिसने श्रम करके अर्जन किया है ज्ञान को। उधार नहीं लिया। जो ऐसे ब्राह्मण के घर में पैदा होकर वेद कंठस्थ नहीं कर लिया है, बल्कि जिसने वेद को जीया और जाना है।

श्रम से आया है श्रमण। श्रमण का अर्थ होता है, जिसने अर्जित किया है ज्ञान। उधार, बासा, चुराया नहीं। किसी और की जूठन इकट्ठी नहीं कर ली है। वह चाहे जूठन फिर ऋषियों की ही क्यों न हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। जूठन जूठन है। जिसने अपने जीवन-सत्य को स्वयं ही पहचाना है, साक्षात्कार किया है, श्रम से जिसने अर्जित किया है, वह श्रमण।
तो बुद्ध कहते हैं, "जो दूसरों की गौएं गिनने वाले ग्वाले के समान है,
वह श्रामण्य का अधिकारी नहीं होता।"
वह भला ब्राह्मण अपने को कहता रहे, लेकिन श्रमण हम उसको न कहेंगे।
फिर श्रमण की भी वही दुर्गति हो गयी। सभी शब्दों की वही गति हो जाती है। अब जैन-मंदिरों में, बौद्ध-विहारों में श्रमण बैठे हैं; वे वैसे ही हो गए जैसे ब्राह्मण थे। उन्होंने कुछ जाना नहीं है, बुद्ध के शब्द कंठस्थ कर लिए, महावीर की वाणी कंठस्थ कर ली। खुद कोई अनुभव नहीं है। कोई एक किरण भी नहीं उतरी अनुभव की। शब्दों का अंधेरा है; अनुभव की एक किरण नहीं। शास्त्रों की बड़ी भीड़ है, बोझ है, लेकिन शून्य का एक भी स्वर नहीं। तो दब गए हैं शास्त्रों से, लेकिन शून्य की मुक्ति उन्हें उपलब्ध नहीं हुई।
जो "ब्राह्मण" की दुर्गति हुई थी वही अब "श्रमण" की हो गयी। सभी शब्दों की हो जाती है। क्योंकि जल्दी ही आदमी को यह समझ में आ जाता है-- मुफ्त ज्ञान, चुराया ज्ञान इकट्ठा कर लेना सस्ता है। उसमें दांव पर कुछ भी नहीं लगाना पड़ता। कूड़ा-करकट कहीं से भी इकट्ठा कर लाए। लेकिन अगर ज्ञान स्वयं पाना हो, तो अपने को गंवाना पड़ता है। जो अपने को खोने को राजी है, वही सत्य को पाने का अधिकारी होता है, वही श्रामण्य का अधिकारी होता है, वही ब्राह्मण कहलाने का हकदार होता है।
"भले ही किसी को थोड़ी सी ही संहिता कंठस्थ हो, लेकिन धर्म का आचरण हो, राग, द्वेष और मोह को छोड़कर सम्यक ज्ञान और विमुक्त चित्त वाला हो, तथा इस लोक और परलोक में किसी भी चीज के प्रति निरभिलाष हो, तो वह श्रामण्य का अधिकारी होता है।"
लुफ्ते-मय तुझसे क्या कहूं जाहिद
हाय कमबख्त तूने पी ही नहीं
वह जो शराब का मजा है--लुफ्ते-मय--क्या कहूं जाहिद!
हाय कमबख्त तूने पी ही नहीं
इतना ही फर्क है जानने और जीने में। कितनी ही हम ब्रह्म की चर्चा करें, अगर तुमने भी थोड़ा स्वाद नहीं लिया, बात जमेगी नहीं। कितने ही हम ब्रह्म के चित्र तुम्हारे सामने उभारना चाहें, लेकिन अगर थोड़ी सी तुम्हारे भीतर भी किरण नहीं उतरी, अगर थोड़ी सुगबुगाहट तुम्हारे भीतर के बीज ने अनुभव नहीं की, अगर थोड़ा तुम्हारा बीज भी नहीं टूटा, तो तुम समझ न पाओगे। तुम सुन लोगे, लेकिन भरोसा न कर पाओगे।
भरोसा तो तभी आता है जब तुम्हारा अनुभव भी गवाही बने। तुम्हारा अनुभव
भी कहे कि हां, ठीक है। तुम्हारा अनुभव कहे, विचार नहीं। तर्क से तो मैं तुम्हें समझा दूं; लेकिन तर्क से कहीं प्यास बुझी है! शब्द से तो मैं तुम्हें भरोसा दिला दूं; लेकिन शब्दों के भरोसों से कहीं पेट भरा है! शास्त्र कितना ही ब्रह्म की चर्चा करते रहें, लेकिन तुम्हें किसी दिन पीनी पड़ेगी यह शराब, तुम्हें भी डोलना पड़ेगा उस नशे में, तुम्हें भी होश-हवास खोकर, लोक-लाज खोकर--मीरा ने कहा, सब लोक लाज खोयी--तुम्हें भी पग घुंघरू बांध नाचना पड़ेगा, मतवाला होना पड़ेगा, तो ही उस मदिरा का स्वाद तुम्हें आएगा। आचरण पर जोर इसीलिए है।
भले ही किसी को थोड़ी सी ही संहिता कंठस्थ हो, या न हो; वेद सुना हो, न सुना हो; लेकिन धर्म का जीवन हो, होशपूर्ण जीवन हो, आनंदपूर्ण जीवन हो, उत्सवपूर्ण जीवन हो, प्रमुदित जीवन हो।
"राग, द्वेष और मोह को छोड़कर... ।"
क्योंकि उनसे ही दर्द के पैबंद लगे जाते हैं; वे जो रोग, द्वेष और मोह हैं, उनसे ही तुम्हारे लबादे पर दर्द के पैबंद लगे जाते हैं।
"तथा इस लोक और परलोक में किसी भी चीज के प्रति निरभिलाष हो... ।"

क्योंकि जिसकी आशा आगे भागी जा रही है, वह यहां इसी क्षण मौजूद जीवन से अपरिचित रह जाएगा। वह कभी परिचित न हो पाएगा। जीवन यहां, तुम कहीं और। तो बुद्ध ने कहा है, इतनी सी भी अभिलाषा न रह जाए--परलोक पाने की, स्वर्ग पाने की। परमात्मा को पाने की भी अभिलाषा न रह जाए।

इसीलिए, बुद्ध जानते हुए कि परमात्मा है और चुप रहे। क्योंकि शब्द निकाला मुंह से कि तुम्हारी वासना उसे पकड़ती है। जानते हुए कि मोक्ष है, बुद्ध चुप रहे। नहीं कि उन्हें कहना नहीं आता था। ऐसा भी नहीं कि बेजुबां थे। चुप रहे, क्योंकि तुमसे कुछ भी कहो, तुम तत्क्षण उसे अपनी वासना का विषय बना लेते हो। अगर मैं ईश्वर के तुमसे गुणगान करूं, तुम्हारा मन कहता है तो फिर ईश्वर को पाना है; चाहे कुछ भी हो जाए ईश्वर को पाकर रहेंगे। तुम पूछने आ जाते हो, क्या करें जिससे ईश्वर मिल जाए?

ईश्वर भी तुम्हारी वासना बन जाता है। जब कि लाख तुम्हें समझाया जा रहा है कि जब तुम निर्वासना हो जाओगे तब ईश्वर अपने आप आ जाता है, तुम्हें उसे खोजने जाना नहीं पड़ता। मोक्ष का अर्थ है, जब तुममें कोई अभिलाषा न रहेगी। और तुम मोक्ष की ही अभिलाषा करने लगते हो। तो तुमने तो जड़ ही काट दी।

बुद्ध कहते हैं, जो निरभिलाष हो।

बाकी अभी है तर्के-तमन्ना की आरजू
क्योंकर कहूं कि कोई तमन्ना नहीं मुझे

अमीर के ये शब्द हैं। बड़े महत्वपूर्ण।

बाकी अभी है तर्के-तमन्ना की आरजू

अभी इच्छा एक है बाकी, कि सब इच्छाएं छूट जाएं--तर्के-तमन्ना की आरजू--सब तमन्नाएं मिट जाएं, यह एक तमन्ना अभी बाकी है।

क्योंकर कहूं कि कोई तमन्ना नहीं मुझे

इसलिए अभी कैसे कह सकता हूं कि मेरी अब कोई वासना नहीं। एक वासना अभी मेरी शेष है। अमीर ने जरूर बुद्ध को समझकर यह कहा होगा।

इतनी भी वासना न रह जाए तो ही कोई निर्वासना को उपलब्ध होता है। कोई भी वासना न रह जाए--परमात्मा की, मोक्ष की, निर्वाण की, आत्मा की, ज्ञान की, ध्यान की--कोई वासना न रह जाए।

क्यों? क्योंकि वासना का स्वभाव ही तुम्हें जीवन से वंचित करवाना है। वासना का अर्थ है, चुकाना; जो यहां था, उससे हटा देना। वासना का अर्थ है, तुम्हें गैर-मौजूद करना, तुम्हें कहीं और ले जाना।

और जीवन यहां था। जब जीवन तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा था, तब वासना तुम्हें किन्हीं और ध्वनियों को सुनने को उत्प्रेरित करती है। वह जो द्वार पर दस्तक पड़ती है वह तुम चूक जाते हो। वासना के शोरगुल में वह जो धीमी सी आवाज प्रतिपल तुम्हारे भीतर से उठ रही है--तुम्हारे परमात्मा की आवाज, तुम्हारी आवाज--वह वासना के शोरगुल में सुनायी नहीं पड़ती। कभी वासना बाजार की होती है, संसार की; कभी परमात्मा की, निर्वाण की; कभी धन की; कभी धर्म की; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

धर्म की वासना उतनी ही वासना है जितनी धन की। मोक्ष की कामना उतनी ही कामना है जितनी कोई और कामना। कामना कामना में कोई भी भेद नहीं है। क्योंकि कामना का मूल स्वभाव, जो मौजूद है उससे तुम्हें चुकाना है। और निर्वासना का अर्थ है, जो मौजूद है उसमें होना। जो अभी है, जो यहां है, उसके साथ तालमेल बिठा लेना, उसके साथ स्वरबद्ध हो जाना, छंदबद्ध हो जाना।

इस क्षण के पार तुम न जाओ, परमात्मा तुम्हें मिल जाएगा। तुम उसकी फिकर छोड़ो, वह मिला ही हुआ है। तुम इस क्षण में डूब जाओ, मोक्ष तुम्हारे घर आ जाएगा। वह सदा से आया ही हुआ था। तुम्हीं अपने घर न थे।

भले ही किसी को थोड़ी सी भी संहिता कंठस्थ न हो, लेकिन धर्म उसके जीवन में हो, होशपूर्ण जीवन हो उसका--जाग्रत--तो वेद जानने की जरूरत नहीं। क्योंकि तुम स्वयं वेद हो जाते हो। तुम जो बोलोगे, होगा वेद। तुम जो कहोगे, होगा उपनिषद। उठोगे, पैदा हो जाएंगी भगवदगीताएं। बैठोगे, कुरान जन्म जाएंगे। क्योंकि तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। किन्हीं ऋषियों ने

उसका ठेका नहीं लिया है। तुम ऋषि होने की क्षमता लेकर पैदा हुए हो। अगर तुम न हो पाए, तो तुम्हारे अतिरिक्त कोई और जिम्मेवार नहीं।
तुम बीज लेकर आए हो बुद्धत्व का। ठीक भूमि न दो, ठीक अवसर न दो, बीज बीज
रह जाए, और फूल न खिल पाएं, तो किसी और को जिम्मेवार मत ठहराना। तुम्हारे अतिरिक्त न तुम्हारा कोई मित्र है, और न कोई शत्रु। तुम्हारे अतिरिक्त न तुम्हें कोई मिटा सकता है, न कोई बना। तुम्हारे अतिरिक्त न कोई दुख है, न कोई सुख। तुम ही नर्क हो तुम्हारे, तुम्हीं स्वर्ग। ऐसा बोध तुम्हारे भीतर जन्मे तो श्रामण्य का अधिकार मिलता है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
छठवां प्रवचन

‘आज’ के गर्भाशय से ‘कल’ का जन्म

पहला प्रश्नः आपने स्त्री के लिए प्रेम और पुरुष के लिए ध्यान का मार्ग बताया। मेरी तकलीफ यह है कि न प्रेम में पूरा डूब पाती हूं, न ध्यान में गहराई आती है। कृपया बताएं मेरे लिए मार्ग क्या है?

धर्म ज्योति ने पूछा है। धर्मगुरुओं का डाला हुआ जहर बाधा बन रहा है।
उस जहर से जब तक छुटकारा न हो, प्रेम तो असंभव है। क्योंकि प्रेम की सदा से निंदा की गयी है। प्रेम को सदा बंधन कहा गया है। और चूंकि प्रेम की निंदा की गयी है और प्रेम को बंधन कहा गया है, इसलिए स्त्री भी सदा अपमानित की गयी है। जब तक प्रेम स्वीकार न होगा तब तक स्त्री भी सम्मानित नहीं हो सकती, क्योंकि स्त्री का स्वभाव प्रेम है। और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि स्त्रियां जितनी धर्मगुरुओं से प्रभावित होती हैं उतना कोई भी नहीं होता। और उनकी जड़ पर ही वे कुठाराघात किए चले जाते हैं।
लेकिन एक बार तुम्हारे मन में जहर फैल जाए, और ऐसा ख्याल आ जाए कि प्रेम बंधन है, तो तुमने पुरुष की भाषा सीख ली। और हृदय तुम्हारा स्त्री का है। तब तुम अड़चन में पड़ो, स्वाभाविक है। पुरुष के लिए सही है यही बात कि प्रेम बंधन है। स्त्री के लिए प्रेम मुक्ति है। और जो पुरुष के लिए जहर है, वह स्त्री के लिए अमृत है। और स्त्री का तो अब तक कोई धर्म पृथ्वी पर पैदा नहीं हुआ, और स्त्रियों का तो कोई तीर्थंकर नहीं हुआ, और कोई अवतार नहीं हुआ; इसलिए स्त्री के हृदय की बात को किसी ने प्रगट भी नहीं किया।
सारे धर्म पुरुषों के हैं। और स्वभावतः पुरुष ने अपने दृष्टिकोण को रखा है। वह पुरुष के लिए बिल्कुल सही है। पुरुष जैसे ही प्रेम में पड़ता है वैसे ही बंधन खड़े हो जाते हैं। क्योंकि पुरुष का अहंकार प्रेम में बंधन देखता है। पूरा डूब तो नहीं पाता--डूब जाए तो प्रेम मुक्ति हो जाए, तो प्रेम मोक्ष हो जाए--डूब तो नहीं पाता, मजबूरी में, बेबसी में झुकता है, लेकिन भीतर अहंकार पीड़ा पाता है। और सदा लगता है, यह तो कारागृह हो गया। इससे कैसे छूटूं?
स्त्री के लिए प्रेम बंधन नहीं मालूम होता, क्योंकि स्त्री पूरी ही झुक जाती है। समर्पण उसका स्वभाव है। कोई अहंकार पीछे नहीं बचता, तो बंधेगा कौन? जो बंध सकता था वह तो प्रेम में गिर ही गया। पुरुष कभी झुक नहीं पाता, इसलिए बंधा हुआ मालूम पड़ता है। मिट जाए तो बंधने को ही कोई नहीं बचता, प्रेम बांधेगा क्या? और जब बंधने को कोई नहीं बचता, तो प्रेम मुक्त करता है, प्रेम परम-स्वातंष्य हो जाता है, लेकिन समर्पण के बाद।
पुरुष की अड़चन है, संकल्प तो कर सकता है, समर्पण नहीं कर सकता। स्त्री
की अड़चन है, समर्पण तो कर सकती है, संकल्प नहीं कर सकती। मगर इसको अड़चन बनाने की जरूरत नहीं है। जो जहां है वहीं से मार्ग खोजना चाहिए। दूसरे की भाषा मत सीखना, अन्यथा अड़चन होगी।
धर्म ज्योति के साथ यही हुआ है। महात्माओं के सत्संग में रही है। महात्माओं ने पूरे मन को विकृत कर दिया है। उन्होंने जो भी सिखाया है, वह पीछा नहीं छोड़ रहा है। मेरी बात भी सुन रही है; लेकिन महात्मा बीच में खड़े हैं, वे मेरी बात को भीतर प्रवेश नहीं होने देते। उनका संस्कार पुराना है। और ऐसा भी नहीं है कि एक जन्म का हो--बहुत जन्मों का हो सकता है। और जब तक ये महात्माओं की भीड़ विदा न होगी, तब तक प्रेम तो संभव नहीं हो पाएगा।
और प्रेम भी कहीं चुल्लू-चुल्लू किया जाता है, थोड़ा-थोड़ा किया जाता है? प्रेम तो बाढ़ है। प्रेम तो कोई हिसाब-किताब नहीं रखता। वहां कोई गणित नहीं है। प्रेम तो तुम पूरे डूब जाओ तो ही है, नहीं तो नहीं है। लेकिन प्रेम शब्द में ही घबड़ाहट मालूम होती है। सदियों-सदियों के संस्कार हैं। तो जब मैं तुमसे प्रेम की बात करता हूं, तब भी तुम समझते हो, ऐसा नहीं है। तब भी बात तुम तक पहुंच जाती है, ऐसा नहीं है। पुरुषों तक न पहुंचे, कोई अड़चन नहीं। क्योंकि ध्यान से उनके लिए सुविधा है। प्रेम से ज्यादा सुविधा

है उनके लिए ध्यान के द्वारा। भक्ति पुरुषों को जमती ही नहीं। प्रेम के साथ तालमेल नहीं बैठता। और कभी अगर अपवादरूप कोई पुरुष भक्त हो गया हो, तो अपवादरूप ही कोई स्त्री ध्यानी हुई है। लेकिन उससे नियम निर्मित नहीं होता।
पुरुष ध्यान से जाएगा। ध्यान है परम संकल्प। ध्यान का अर्थ समझ लो। ध्यान का अर्थ है, अकेले हो जाने की क्षमता। दूसरे पर कोई निर्भरता न रह जाए। दूसरे का ख्याल भी विस्मृत हो जाए। सभी ख्याल दूसरे के हैं। ख्याल मात्र पर का है। जब पर का कोई विचार न रह जाए, तो स्व शेष रह जाता है। और उस स्व के शेष रह जाने में स्व भी मिट जाता है; क्योंकि स्व अकेला नहीं रह सकता, वह पर के साथ ही रह सकता है। जिस नदी का एक किनारा खो गया, उसका दूसरा भी खो जाएगा। दोनों किनारे साथ-साथ हैं। अगर सिक्के का एक पहलू खो गया, तो दूसरा पहलू अपने आप नष्ट हो जाएगा। दोनों पहलू साथ-साथ हैं। जिस दिन अंधकार खो जाएगा, उसी दिन प्रकाश भी खो जाएगा।
ऐसा मत सोचना कि जिस दिन अंधकार खो जाएगा उस दिन प्रकाश ही प्रकाश बचेगा। इस भूल में मत पड़ना। क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस दिन मौत समाप्त हो जाएगी, उसी दिन जीवन भी समाप्त हो जाएगा। ऐसा मत सोचना कि जब मौत समाप्त हो जाएगी तो जीवन अमर हो जाएगा। इस भूल में पड़ना ही मत। मौत और जीवन एक ही घटना के दो हिस्से हैं--अन्योन्याश्रित हैं। एक-दूसरे पर निर्भर हैं। तो जब पर बिल्कुल छूट जाता है, तो स्वयं की उस निजता में अंततः स्वयं का होना भी मिट जाता है। शून्य रह जाता है। ध्यान की यही अवस्था है, उसको हमने समाधि कहा है।
दो शब्द बनाने चाहिए। ध्यान-समाधि और प्रेम-समाधि। समाधि तो दोनों में एक ही है, लेकिन दोनों के मार्ग बड़े अलग हैं। पुरुष को जो समाधि उपलब्ध होती है, जो बुद्ध को उपलब्ध हुई, वह है ध्यान-समाधि। पर को छोड़ा, स्व छूट गया, समाधि उपलब्ध हुई।
मीरा को जो समाधि उपलब्ध हुई, वह है प्रेम-समाधि। पर को नहीं छोड़ा, स्वयं को समर्पित किया। इतना समर्पित किया कि स्व न बचा, पर ही बचा। और जब पर अकेला बचा तो पर भी मिट गया; समाधि उपलब्ध हो गयी। जहां दो मिट जाते हैं वहां समाधि। लेकिन मीरा की समाधि प्रेम से आयी। बुद्ध की समाधि ध्यान से आयी। समाधि तो एक है, लेकिन मार्ग बड़ा अलग-अलग है।
बुद्ध की बात सुन-सुनकर प्रेम से आस्था उठ गयी। पुरुष की उठ जाए, कोई हर्जा नहीं, लाभपूर्ण है। लेकिन स्त्री की उठ जाए तो खतरा है। क्योंकि पुरुष के स्वभाव के तो अनुकूल है ध्यान का मार्ग, स्त्री के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। और स्त्री-पुरुष विपरीत हैं। इसीलिए तो उनमें इतना आकर्षण है। वे ऋण और धन विद्युत की तरह हैं। दिन और रात की तरह हैं। जीवन और मृत्यु की तरह हैं। विपरीत हैं। और इसीलिए तो इतना आकर्षण है। विपरीत में ही आकर्षण होता है। समान में तो विकर्षण हो जाता है। समान से तो ऊब हो जाती है। विपरीत में खोज और जिज्ञासा जारी रहती है।
अच्छा है कि पुरुष और स्त्री विपरीत हैं, अन्यथा संसार में सब रस खो जाए। स्त्री और पुरुष जितने विपरीत हों उतना ही सुखद है। जितना उनके बीच फासला हो, जितनी दोनों के बीच दूरी हो, और दोनों जितने एक-दूसरे से भिन्न हों, उतना ही उनके बीच संबंध की गरिमा निर्मित होगी, संबंध के शिखर निर्मित होंगे।
मनुष्य ने अपने अतीत में स्त्री और पुरुष को जितना भिन्न बन सके बनाने की कोशिश की थी। इसलिए प्रेम की बड़ी अनूठी घटनाएं घटीं। पश्चिम में आधुनिक युग में स्त्री और पुरुष को पास लाने की चेष्टा की गयी है, प्रेम समाप्त हुआ जा रहा है। क्योंकि स्त्री-पुरुष करीब-करीब समान मालूम होने लगे हैं। स्त्री-पुरुष समान होने चाहिए न्याय की दृष्टि में, समान नहीं होने चाहिए स्वभाव की दृष्टि से। बड़े असमान हैं। बड़े भिन्न हैं।
असमान का यह अर्थ नहीं है कि स्त्री पुरुष से नीची है, या पुरुष स्त्री से ऊंचा है। असमान का अर्थ है कि दोनों बड़े भिन्न हैं, जैसे रात और दिन, रोशनी और अंधेरा। इतना ही फासला है। कानून उनको समान माने, लेकिन मनोविज्ञान उन्हें समान नहीं कह सकता। और अगर समान बनाने की चेष्टा की

गयी, तो जितने स्त्री-पुरुष समान होते जाएंगे उतना ही स्त्री पुरुष जैसी हो जाएगी, पुरुष स्त्री जैसा हो जाएगा; उन दोनों के बीच का आकर्षण खो जाएगा। उन दोनों के बीच जो एक मधुर तनाव है--प्रेम भी है और संघर्ष भी है, मधुर तनाव है; लगाव भी है और विरोध भी है; कभी फूल भी खिलते हैं, कभी कांटे भी चुभ जाते हैं; पास भी आते हैं, दूर भी हटते हैं; निमंत्रण भी है, अस्वीकार भी है--उन दोनों के बीच यह जो बड़ा खेल चलता है जीवन का, यह जो सारी लीला है जीवन की, वह मधुर है। वह शुभ है, सुंदर है। और उस सबका आधार यह है कि स्त्री समर्पण करने में कुशल है। स्त्री हारकर जीतती है। उसके जीतने का ढंग वही है। वह चरणों में रख देती है अपने को और सिरताज हो जाती है। वह अपने को खो देती है और पुरुष के रोएं-रोएं में समा जाती है।
इसी से पुरुष घबड़ाता है। क्योंकि पुरुष जानता है, उसका समर्पण खतरनाक है। उसके समर्पण में ही बंधन पैदा हो जाता है। पुरुष अपने को बंधा अनुभव करता है। क्योंकि उसका अहंकार है। वह स्वाभाविक है कि वह अपने को बचाए, लड़े, संघर्ष करे। उसकी यात्रा अलग है। पुरुष बहिर्मुखी है, स्त्री अंतर्मुखी है। पुरुष और स्त्री जब एक-दूसरे को प्रेम भी कर रहे हों, तो पुरुष आंख खोलकर प्रेम करता है, स्त्री आंख बंद करके।
जब भी स्त्री भाव में होती है, आंख बंद कर लेती है। क्योंकि जब भी भाव में होती है तब वह अंतर्मुखी हो जाती है। वह प्रेम भी जिस व्यक्ति को करती है, उसको भी जब ठीक से देखना चाहती है तो आंख बंद कर लेती है। यह भी कोई देखने का ढंग हुआ! मगर यही स्त्री का ढंग है। क्योंकि ऐसे आंख बंद करके ही वह उस चिन्मय को देख पाती है; आंख खोलकर तो मृण्मय दिखायी पड़ता है। और स्त्री जब भी किसी को प्रेम करती है तो परमात्मा से कम नहीं मानती। आंख बंद करके परमात्मा दिखायी पड़ता है। आंख खोलो तो मिट्टी की देह है।
लेकिन पुरुष का रस भीतर में कम है, बाहर में ज्यादा है। पुरुष आंख खोलकर प्रेम करना चाहता है। प्रेम के क्षण में भी चाहता है कि रोशनी हो, ताकि वह स्त्री की देह को ठीक से देख सके। तो पुरुषों ने तो स्त्रियों की नग्न मूर्तियां बहुत बनायी हैं, स्त्रियों ने पुरुषों की एक भी नग्न मूर्ति नहीं बनायी। और पुरुषों ने तो स्त्रियों के नाम पर कितना अश्लील पोर्नोग्रेफी, और साहित्य, और चित्र, और पेंटिंग्स की हैं। स्त्रियों ने एक भी नहीं की। क्योंकि पुरुष का रस देह में है, रूप में है, रंग में है, बहिर में है।
स्त्रियों को तो भरोसा ही नहीं आता कि शरीर के चित्रण में इतनी उत्सुकता क्यों है? क्योंकि स्त्री को तो शरीर के पार के देखने की सुविधा है। उसके पास एक झरोखा है, जहां से वह देह को भूल जाती है और परमात्मा को देख लेती है। पुरुषों ने नहीं समझाया है स्त्री को कि पति परमात्मा है। यह स्त्रियों की प्रतीति है; कि जिसको भी उन्होंने प्रेम किया उसमें परमात्मा देखा। जहां प्रेम की छाया पड़ी, वहीं परमात्मा प्रगट होता है। जहां प्रेम की भनक आयी, वहीं परमात्मा के आने का प्रारंभ हो जाता है। प्रेम की पगध्वनि में परमात्मा की पगध्वनि अपने आप सुनायी पड़ने लगती है। लेकिन पुरुष बंधा अनुभव करता है। उसकी यात्रा बहिर्यात्रा है। उसे चांद-तारों पर जाना है। उसे दूर को जीतना है। उसे संसार को विजय करना है। ऐसे अगर घर में बंध जाएगा तो फिर यह दूर की यात्रा का क्या होगा? बाजार में कौन जीतेगा? दिल्ली में कौन विराजमान होगा? कहां जाएगा? कौन भागेगा? इस आपाधापी को कौन करेगा?
तो जैसे ही जितना ही महत्वाकांक्षी पुरुष हो, उतना ही स्त्री से बचेगा। महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ हो, स्त्री से बचेगा। क्योंकि अगर स्त्री ने बांध लिया, तो स्त्री काफी संसार है। फिर उसके पार संसार बचता नहीं। वैज्ञानिक महत्वाकांक्षी हो, अन्वेषण में लगा हो, स्त्री से बचेगा। ध्यान करने वाला ध्यानी हो, स्त्री से बचेगा। क्योंकि स्त्री इस पूरी तरह घेर लेती है कि फिर कुछ और करने की सुविधा नहीं रह जाती। ध्यान न करने देगी, शास्त्र न पढ़ने देगी, चुनाव न लड़ने देगी, धन न कमाने देगी। क्योंकि चारों तरफ से घेर लेगी। स्त्री तुम्हारे चारों तरफ प्रेम का एक घर बनाती

है। उसमें तुम्हें लगता है कि तुम घुटे-घुटे अनुभव करते हो, क्योंकि तुम्हारी महत्वाकांक्षा मरती है।
वही पुरुष स्त्री के प्रेम के लिए राजी हो सकता है जो अहंकार को छोड़ने
को राजी हो। यह पुरुष के लिए बहुत कठिन है। इसका एक ही उपाय है उसके लिए, ध्यान; कि वह गहरे ध्यान में उतरे।
तो मेरे देखने में ऐसा है कि अगर पुरुष गहरे ध्यान में उतर जाए, तो ही प्रेम के योग्य हो पाता है। और स्त्री अगर प्रेम में उतर जाए, तो ही ध्यान के योग्य हो पाती है।
स्त्री सीधे ध्यान न कर सकेगी। तुम उसे लाख समझाओ कि चुप होकर शांत बैठ जाओ, वह कहेगी, लेकिन किसके लिए? किसको याद करें? किसका स्मरण करें? किसकी प्रतिमा सजाएं? किसका रूप देखें भीतर?
मंदिरों में जो प्रतिमाएं हैं वे सभी स्त्रियों ने रखी हैं। परमात्मा
के नाम के जितने गीत हैं वे सब स्त्रियों ने गाए हैं। भजन है, कीर्तन है, उसका अनूठा रस स्त्रियों ने लिया है। और पुरुष और स्त्री के बीच बड़ी बेबूझ पहेली है। वे एक-दूसरे को समझ नहीं पाते हैं। समझें भी कैसे? तुम जिस स्त्री के साथ जीवनभर रहे हो, या जिस पुरुष के साथ जीवनभर रहे हो, उसको भी समझ नहीं पाते। क्योंकि भाषा अलग है, यात्रा अलग है; दोनों के सोचने का, होने का ढंग अलग है।
जिस दिन दुनिया में ठीक-ठीक समझ आएगी उस दिन स्त्री का मनोविज्ञान अलग होना चाहिए, पुरुष का मनोविज्ञान अलग। उन दोनों के मन अलग हैं। इसलिए सिर्फ मनोविज्ञान कहने से कुछ भी न होगा। मनोविज्ञान से क्या पता चलता है? किसका मनोविज्ञान? स्त्री का या पुरुष का? स्त्री के मन का ढांचा ही अलग है। पुरुष के मन का ढांचा अलग है।
इसलिए पुरुष महावीर और बुद्ध बन जाता है। महावीर को हमने नाम दिया है--जिन। जिसने जीत लिया। बुद्ध को हमने नाम दिया--बुद्ध। जो जाग गया। लेकिन मीरा से पूछो, जीता? मीरा कहेगी, हारे। कृष्ण को, और जीतने की बात ही बेहूदी है! परमात्मा को जीतने की बात ही बेहूदी है! जीतने की भाषा में ही आक्रमण और हिंसा है।
अब थोड़ा समझो।
महावीर जैसे अहिंसक को भी हमने जिन कहा है। लेकिन जिन शब्द में ही हिंसा है--जीता, विजय। वह भाषा ही क्षत्रिय की है। वह भाषा पुरुष की है। अब महावीर जैसे परम ध्यान को उपलब्ध हुए, ज्ञान को उपलब्ध हुए, लेकिन भाषा तो पुरुष की ही रहेगी।
मीरा से पूछो, जीता? मीरा कहेगी, तुम समझे ही नहीं; प्रेम में कहीं कोई जीतता है? हारते हैं। मगर हार ही वहां जीत है। मीरा से पूछो, जागी? मीरा कहेगी, जागना वहां कहां है? वहां तो खोना है; वहां तो मिटना है। वहां तो बेहोशी ही होश है।
अब इसको थोड़ा समझ लेना। मीरा के लिए बेहोश हो जाना होश है, और हार जाना जीत जाना है।
महावीर और मीरा को मिला दो, इनके बीच बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी। इनके बीच चर्चा न चल सकेगी। इनकी भाषा अलग होगी। जैसे दोनों दो अलग भाषाएं बोलते हों। एक जर्मन बोल रहा हो और एक जापानी, और कहीं कोई तालमेल न बैठता हो। बैठेगा नहीं।
पुरुष के लिए स्त्री पहेली रही है। स्त्री के लिए पुरुष पहेली है। स्त्री सोच ही नहीं पाती कि तुम किसलिए चांद पर जा रहे हो? घर काफी नहीं? वही तो यशोधरा ने बुद्ध से पूछा, जब वे लौटकर आए, कि जो तुमने वहां पाया वह यहां नहीं मिल सकता था? ऐसा जंगल भागने की क्या पड़ी थी? यह घर क्या बुरा था? अगर शांत ही होना था तो जितनी सुविधा यहां थी, इतनी वहां जंगल में तो नहीं थी। तुमने कहा होता, हम तुम्हें बाधा न देते। हम तुम्हें एकांत में छोड़ देते। हम सारी सुविधा कर देते कि तुम्हें जरा भी बाधा न पड़े। लेकिन बुद्ध को अगर यशोधरा ऐसा इंतजाम कर देती कि जरा भी बाधा न पड़े--यशोधरा अपनी छाया भी न डालती बुद्ध पर--तो भी बुद्ध बंधे-बंधे अनुभव करते। क्योंकि वे

अनजाने तार यशोधरा के चारों तरफ फैलते जाते, और भी ज्यादा फैल जाते। वह छाया की तरह चारों तरफ अपना जाल बुन देती। घबड़ाकर भाग गए।
जो भी कभी भागा है जंगल की तरफ, प्रेम से घबड़ाकर भागा है। और क्या घबड़ाहट है? कहीं प्रेम बांध न ले। कहीं प्रेम आसक्ति न बन जाए। कहीं प्रेम राग न हो जाए। स्त्रियों को जंगल की तरफ भागते नहीं देखा गया। क्योंकि स्त्री को समझ में ही नहीं आता, भागना कहां है? डूबना है। डूबना यहीं हो सकता है। और स्त्री ने बहुत चिंता नहीं की परमात्मा की जो आकाश में है, उसने तो उसी परमात्मा की चिंता की जो निकट और पास है।
स्त्री को रस नहीं मालूम होता कि चीन में क्या हो रहा है? उसका रस होता है, पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है? पास। तुम्हें कई दफा लगता भी है--पति को--कि ये भी क्या फिजूल की बातों में पड़ी है कि पड़ोसी की पत्नी किसी के साथ चली गयी, कि पड़ोसी के घर बच्चा पैदा हुआ, कि पड़ोसी नयी कार खरीद लाया--ये भी क्या फिजूल की बातें हैं? वियतनाम है, इजराइल है, बड़े सवाल दुनिया के सामने हैं। तू नासमझ! पड़ोसी के घर बच्चा हुआ, यह भी कोई बात है? लाखों लोग मर रहे हैं युद्ध में। इस एक बच्चे के होने से क्या होता है?
स्त्री को समझ में नहीं आता कि पड़ोसी के घर बच्चा पैदा होता है, इतनी बड़ी घटना घटती है--एक नया जीवन अवतीर्ण हुआ; कि पड़ोसी की पत्नी किसी के साथ चली गयी--एक नए प्रेम का आविर्भाव हुआ; तुम्हें इसका कुछ रस ही नहीं है! इजराइल से लेना-देना क्या है? इजराइल से फासला इतना है कि स्त्री के मन पर उसका कोई अंकुरण नहीं होता, कोई छाप नहीं पड़ती। दूरी इतनी है।
स्त्री परमात्मा जो बहुत दूर है आकाश में उसमें उत्सुक नहीं है। परमात्मा जो बहुत पास है, बेटे में है, पति में है, परिवार में है, पड़ोसी में है, उसमें उसका रस है। क्योंकि दूर जाने में उसकी आकांक्षा नहीं है। यहीं डूब जाना है।
और जिसे डूबना है, वह कहीं भी डूब सकता है। लेकिन जिसे जीतना है, वह हर कहीं नहीं जीत सकता। जीतने के लिए तो इंतजाम करना पड़ेगा युद्ध का। जीतने के लिए तो संघर्ष की व्यवस्था करनी पड़ेगी। हारने के लिए थोड़े ही कोई व्यवस्था करनी पड़ती है। जीतने के लिए व्यवस्था करनी पड़ती है, हारना तो कभी भी हो सकता है--निहत्थे। उसके लिए कोई शस्त्रों का थोड़े ही आयोजन करना पड़ेगा। सेनाएं थोड़े ही इकट्ठी करनी पड़ेंगी। हारना तो अभी हो सकता है, जैसे हो तुम वैसे ही। लेकिन जीतने के लिए तो बड़ा उपाय करना पड़ता है। फिर भी पक्का नहीं है कि जीत पाओगे।
तो महावीर के जीवन में बड़ा आयोजन है। वह विजय की यात्रा है। मीरा के जीवन में कोई भी आयोजन नहीं है। वह जहां थी वहीं नाचने लगी। वह जहां थी वहीं दीवानी हो गयी। महावीर को होश साधना है, मीरा को बेहोशी साधनी है। तो यह धर्म ज्योति की तकलीफ मैं समझता हूं। साधुओं ने बिगाड़ा। और वे महात्मा अभी भी इसके चित्त पर भारी हैं। यह मेरे पास भी आ गयी है तो भी आ नहीं पायी। संस्कार इसके वही जड़ता के हैं। इसलिए प्रेम मुश्किल है। और ध्यान तो स्त्री को मुश्किल होता ही है। जब प्रेम ही न हो पाएगा, तो ध्यान तो हो ही न सकेगा। प्रेम से ही ध्यान की तरफ जाने का रास्ता है। बेहोशी से ही होश सधेगा; हार से ही विजय मिलेगी।
तो जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी जो जहर के संस्कार दिए गए हैं उनको छोड़ दो। उनको हटाओ। इन संस्कारों के कारण तुम ठीक से स्त्री ही न हो पाओगी। तुम्हारा हृदय प्रमुदित न होगा, तुम खिल न पाओगी। ध्यान रखो, अगर प्रेम ही न सधा, तो ध्यान तो कैसे सधेगा? प्रेम को ही साध लो, तो ध्यान भी सध जाएगा। प्रेम की ही अन्यतम गहराई में ध्यान का फूल खिलेगा। वही स्त्री के लिए मार्ग है।
हां, कुछ कभी-कभी अपवाद-स्वरूप कुछ स्त्रियों ने ध्यान भी साधा है। लेकिन अपवाद को मैं नियम नहीं बनाता।
कश्मीर में एक स्त्री हुई लल्लाह। उसकी महावीर से बैठ जाती बात। वह महावीर जैसी ही नग्न रही। कोई दूसरी स्त्री पूरी पृथ्वी पर नहीं रही।
जैसे महावीर नग्न रहे ऐसे ही लल्लाह भी नग्न रही। अकेली ही स्त्री है वह पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में जो जंगल की तरफ भागी और नग्न हो गयी।

कश्मीर में उसका बड़ा आदर है। कश्मीरी कहते हैं, हम दो ही शब्द जानते हैं-- अल्लाह और लल्लाह। मगर लल्लाह स्त्रियों की प्रतिनिधि नहीं है। वह अपवाद है।
ऐसे ही चैतन्य हुए पुरुषों में। वे अपवाद हैं। वे पुरुषों के प्रतीक नहीं हैं। प्रतीक तो महावीर ही हैं। चैतन्य नाचे स्त्रियों जैसे। भक्ति- विभोर! ठीक है। लेकिन उनसे नियम नहीं बनते। और हमेशा ध्यान रखना, नियम से चलने की कोशिश करना। और जो अपवाद है वह पूछने न आएगा। जो नियम है वही पूछने आया है। अपवाद जो है, वह तो पूछता ही नहीं।
अपवाद अगर धर्म ज्योति होती तो ध्यान सधने लगता। अपवाद नहीं है। है
तो स्त्री। गलत बातों के प्रभाव में पड़ गयी। पुरुषों का जहर सिर पर हावी हो गया है। अब वह बाधा डाल रहा है, वह प्रेम नहीं करने देता। और जितना यह ध्यान करने की कोशिश करती है वह झूठी है। यह कोशिश सिर्फ प्रेम से बचने के लिए करती है। इसकी जो ध्यान की कोशिश चल रही है वह सिर्फ इसीलिए ताकि प्रेम में न उलझना पड़े। और प्रेम तो पाप है। प्रेम तो झंझट है। उससे बचना है। तो ध्यान करना है। और मैं तुमसे कह रहा हूं कि प्रेम से ही ध्यान होगा। और तुम प्रेम से बचने को ध्यान करने चलोगी, कठिनाई हो जाएगी। अधर में अटक जाओगी। त्रिशंकु की दशा हो जाएगी।
और देर नहीं लगती, अगर समझ में बात आ जाए तो एक क्षण में छोड़ा जा सकता
है सब कचरा। क्योंकि कचरा कचरा ही है, वह कभी स्वभाव नहीं बनता। भीतर तो स्वच्छ स्त्री मौजूद है। महात्मा उसे बिगाड़ नहीं सकते। महात्माओं की बातचीत ऊपर-ऊपर के पत्ते हैं। नीचे तो धारा बह रही है स्त्रैण स्वभाव की। जरा पत्तों को हटा दो और भीतर की नदी प्रगट हो जाएगी। लाख पत्ते दबा लें नदी को... यहां पूना की नदी दब जाती है बिल्कुल पत्तों में, फिर दिखायी ही नहीं पड़ती, लेकिन तो भी भीतर है। पत्ते लाख दबा दें, तो भी जरा सा हटाओ और नदी प्रगट हो जाती है।

मैंने पूछा था कि है मंजिले-मकसूद कहां
खिज्र ने राह बतायी मुझे मयखाने की
मैंने पूछा था कि जीवन का लक्ष्य--मंजिले-मकसूद--कहां है? और मेरे गुरु ने मुझे राह बतायी मयखाने की। उसने कहा, बेहोशी में, प्रेम में। मैंने पूछा था कि है मंजिले-मकसूद कहां
खिज्र ने राह बतायी मुझे मयखाने की
स्त्री के लिए वही राह है--मयखाने की, बेहोशी की, खोने की; लीन हो जाने की, तल्लीन हो जाने की; अपने को इस तरह मिटा देने की कि भीतर कोई बचे ही न। जिससे प्रेम किया है वही बच रहे। प्रेमी बचे, प्रेयसी खो जाए; परमात्मा बचे, भक्त खो जाए। और तब अचानक भगवान भी खो जाता है। जब भक्त ही खो गया, तो भगवान कहां रहेगा? भक्त की आंखों में ही भगवान है। भक्त के होने में ही भगवान है। जब भक्त ही खो गया तो भगवान कहां रह जाएगा? भक्त भी खो जाता है, भगवान भी खो जाता है, तब जो रह जाता है, वही है।

दूसरा प्रश्नः बुद्ध की मनोचिकित्सा और आज की पश्चिमी मनोचिकित्सा में क्या भेद है? आज का मनोविज्ञान क्या कभी धर्म की खोज में पहुंच पाएगा?

बड़ा भेद है। और बुनियादी भेद है।
पश्चिम का मनोविज्ञान--कहें आज का मनोविज्ञान, क्योंकि पश्चिम का जो
है वह आज का है, इस सदी का है, आधुनिक है--आधुनिक मनोविज्ञान मन की दृष्टि से जो रुग्ण लोग हैं उनकी चिकित्सा करता है। जो सामान्य नहीं हैं, अस्वस्थ हैं, उनकी चिकित्सा करता है। बुद्ध का मनोविज्ञान उनकी चिकित्सा करता है जो सामान्य हैं और स्वस्थ हैं।
कोई आदमी पागल हो गया, उसकी चिकित्सा करता है आधुनिक मनोविज्ञान। कोई आदमी जब तक पागल न हो जाए तब तक आधुनिक मनोविज्ञान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। वह बीमार को ठीक करने का उपाय है। लेकिन बुद्ध के पास वे लोग जाते हैं जो पागल नहीं हैं, वरन अगर हम ठीक से समझें तो होश में भर गए हैं और अब

पागल नहीं रहना चाहते, पागल नहीं होना चाहते। सामान्य हैं, स्वस्थ हैं। साधारण लोग भी उनकी दृष्टि से ज्यादा पागल हैं। जिनको जीवन का होश आ गया है, जिन्होंने जीवन की समझ पा ली है, अब वे बुद्ध से कहते हैं, अकेले स्वस्थ होने से क्या होगा, सत्य भी चाहिए। स्वस्थ होना काफी नहीं है। सत्य के बिना स्वास्थ्य का भी क्या करेंगे? तो स्वस्थ को और परम स्वास्थ्य की तरफ ले जाने की व्यवस्था है।
अगर तुम डांवाडोल हो गए हो सामान्य जीवन में, ठीक से दुकान नहीं कर पाते, ठीक से दफ्तर नहीं जा पाते, स्मृति कमजोर हो जाती है, चूक जाते हो, इस तरह की बातें अगर तुम्हारे जीवन में हैं, तो आधुनिक मनोविज्ञान सहयोगी है। लेकिन सब ठीक चल रहा है, कोई गड़बड़ नहीं है; और जब सब ठीक चलता है और कोई गड़बड़ नहीं मालूम होती, तभी अचानक तुम्हें पता चलता है, ये सब ठीक भी चलता रहा तो मौत में समाप्त हो जाएगा। ये सब ठीक भी चलता रहा तो जाऊंगा कहां, पहुंचूंगा कहां? ये सब ठीक भी है तो भी मौत आ रही है। ये सब ठीक भी है तो भी मैं मरा जा रहा हूं, मिटा जा रहा हूं। ये सब ठीक भी है, तो भी व्यर्थ और असार है।
जिस दिन तुम्हें सब ठीक होते हुए भी असार का बोध होता है, उस दिन तुम बुद्धपुरुषों के पास जाते हो पूछने, कि ऐसे सब ठीक है--धन है, पत्नी है, बच्चा है, मकान है, सब ठीक है--कहीं कोई अड़चन नहीं है, सुविधा से जी रहा हूं, और सुविधा से ही मर भी जाऊंगा, लेकिन क्या सुविधा से जीना और सुविधा से मर जाना ही मंजिले-मकसूद है? क्या यही लक्ष्य है जीवन का? इतना काफी है क्या कि सुविधा से जी लूं और सुविधा से मर जाऊं? सुविधा काफी है? तब बुद्ध के मनोविज्ञान की शुरुआत होती है। जिसको यह दिखायी पड़ने लगा--सुविधा सार नहीं है, सामान्य हो जाना कुछ भी मूल्य नहीं रखता, स्वस्थ हो जाने में भी कुछ नहीं है जब तक सत्य न मिल जाए।
जीसस के जीवन में उल्लेख है कि वे एक गांव में आए और उन्होंने एक आदमी
को शराब पीए रास्ते के किनारे नाली में पड़े गालियां बकते देखा। तो वे उसके पास आए, करुणा से उसे हिलाया और उठाया, और कहा कि तू अपना जीवन शराब पी-पीकर क्यों बर्बाद कर रहा है? नाली में पड़ा है। उस आदमी ने आंखें खोलीं, जीसस को देखकर उसे होश आया। और उसने कहा कि मेरे प्रभु! मैं तो रुग्ण था, खाट भी नहीं छोड़ सकता था, तुम्हीं ने छूकर मुझे ठीक किया था। अब मैं ठीक हो गया, अब इस स्वास्थ्य का क्या करूं? मुझे तो बस शराब पीने के सिवाय कुछ सूझता नहीं। मैंने तो कभी पी भी न थी। मैं तो खाट पर पड़ा था, इस शराबघर तक भी नहीं आ सकता था। तुम्हारी ही कृपा से!
जीसस सोचने लगे कि मेरी कृपा का यह परिणाम हुआ है। वे उदास आगे बढ़े। उन्होंने एक आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते देखा। उसे पकड़ा और कहा कि आंखें इसलिए नहीं परमात्मा ने दी हैं। यह क्यों वासना के पीछे भागा जा रहा है? किस पागलपन में दौड़ रहा है? उस आदमी ने गौर से रुककर देखा, उसने कहा, मेरे प्रभु--वह पैर पर गिर पड़ा--मैं तो अंधा था, तुमने ही छूकर मेरी आंखें ठीक की थीं। अब इन आंखों का मैं क्या करूं? मैं तो किसी वेश्या के पीछे न भागा था। मुझे तो रूप का पता ही न था, मैं तो जन्मांध था। तुम्हारी ही कृपा है कि तुमने आंखें दीं। अब इन आंखों का क्या करूं?
जीसस बहुत उदास हो गए। और वे गांव के बाहर निकल आए। और बड़े चिंतन में
पड़ गए कि मेरी कृपा के ये परिणाम!
उन्होंने एक आदमी को फांसी लगाते देखा अपने को। रस्सी बांध रहा था वृक्ष से। वह भागे गए और कहा कि मेरे भाई, रुक! यह तू क्या कर रहा है? उसने कहा, अब मत रोको, बहुत हो गया। मैं मर गया था, तुम्हीं ने मुझे जिंदा किया था। अब जिंदगी का क्या करूं? यह तुम्हारी ही कृपा का कष्ट मैं भोग रहा हूं। अब बहुत हो गया, अब मत रोकना और मर जाऊं तो मुझे जिलाना मत। तुम कहां से आ गए और! मैं किसी तरह तो इंतजाम करके अपने मरने की व्यवस्था कर रहा हूं। पहले भी मर चुका था।
जिसको तुम स्वास्थ्य कहते हो उसका परिणाम क्या है? गंवाओगे उसे कहीं जिंदगी के रास्ते पर। किसी नाली में पड़ोगे। जिसे तुम आंखों की ज्योति कहते हो, उसका करोगे क्या? कहीं रूप में भरमाओगे। और जिसे तुम जीवन कहते

हो, उसका भी क्या उपयोग है सिवाय आत्महत्या के? कोई धीरे-धीरे करता है, कोई जल्दी करता है। कोई एक ही छलांग में कर लेता है, कोई आत्महत्या करने में सत्तर साल लगाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कुछ यह पता नहीं चलता कि तुममें और उस आत्महत्या करने वाले आदमी में कोई फर्क है। वह जरा हिम्मतवर रहा होगा, एक झटके में करना चाहता था; तुम कमजोर हो, धीरे-धीरे करते हो। रोज-रोज मरते हो। तुम कर क्या रहे हो यहां पृथ्वी पर, सिवाय मरने के?
बुद्ध का मनोविज्ञान वहां से शुरू होता है जहां तुम्हारे पास सब है,
और प्रतीति होती है कि कुछ भी नहीं है। आज का मनोविज्ञान दीन और रुग्ण के लिए है। बुद्ध का मनोविज्ञान सम्राट और समर्थ के लिए है। जिसके पास सब है और अनुभव में आया, कुछ भी नहीं है, हाथ खाली हैं। ऐसे हाथ भरे हैं हीरे- जवाहरातों से, मगर हीरे-जवाहरात व्यर्थ हैं। जिसको भरी जिंदगी के बीच जिंदगी उजाड़ मालूम पड़ी, संपत्ति के बीच विपत्ति दिखायी पड़ी, स्वास्थ्य के बीच सिवाय रोगों के घर के और कुछ भी न मालूम पड़ा, और जिंदगी केवल मौत की तरफ यात्रा मालूम पड़ी, वह बुद्ध के पास जाता है।
बुद्ध का मनोविज्ञान परम जीवन का मनोविज्ञान है। उस जीवन का जिसका फिर कोई अंत नहीं। शाश्वत का, सनातन का। एस धम्मो सनंतनो। वे उस धर्म और नियम की बात करते हैं जिससे सनातन उपलब्ध हो जाए, शाश्वत उपलब्ध हो जाए। पश्चिम का मनोविज्ञान धीरे-धीरे बुद्ध के मनोविज्ञान के करीब सरक रहा है। सरकना ही पड़ेगा। देखो, पश्चिम के चिकित्साशास्त्र का नाम है, मेडिकल साइंस। उसका मतलब होता है, औषधि-विज्ञान। पूरब में हमने जो औषधि- विज्ञान बनाया, उसको नाम दिया है, आयुर्वेद। औषधि का नाम नहीं दिया, आयु का विज्ञान। और विज्ञान भी नहीं, वेद! विधायक। औषधि तो नकारात्मक है। बीमारी हो तो औषधि का उपयोग है। बीमारी न भी हो तो भी आयुर्वेद का उपयोग है। क्योंकि वह केवल जीवन का विज्ञान है। वह सिर्फ बीमारी की फिकर नहीं करता कि बीमारी हो तो औषधि देकर मिटा दो। बीमारी न भी हो, तो जीवन को कैसे गुणनफल करो, जीवन को कैसे बढ़ाओ!
पूरब और पश्चिम की दृष्टि में यह फर्क है। पश्चिम फिकर करता है कांटा निकाल लेने की। पूरब फिकर करता है फूल को भी रख देने की। पश्चिम फिकर करता है दुख निकाल लो, पूरब फिकर करता है आनंद को जन्माओ। दुख को निकाल लेना काफी नहीं है। दुख भी न हो जीवन में तो भी जरूरी थोड़े ही है कि आनंद हो। कितने लोग हैं जिनके जीवन में दुख नहीं है; लेकिन इससे क्या आनंद होता है? बल्कि सच्चाई यह है कि जिनके जीवन में दुख नहीं है उनको ही पता चलता है कि जीवन बिल्कुल व्यर्थ है। जिनके जीवन में दुख है उनको तो अभी आशा लगी रहती है कि कुछ उपाय करेंगे, दुख मिटाएंगे, कल सब ठीक हो जाएगा। जिनके जीवन में दुख नहीं रहा, वे एकदम चौंककर पूछते हैं, अब क्या करें? दुख भी नहीं रहा--जिसको मिटाते वह भी नहीं रहा--मिटाने की दौड़ भी समाप्त हो गयी, कोई कष्ट नहीं है; लेकिन आनंद भी नहीं है। उनका जीवन बड़ी उदासी से, बड़ी ऊब से भर जाता है। जीवन राख-राख हो जाता है। उसमें से सारी आशा और आनंद का अंगार बुझ जाता है।
तुम चकित होओगे देखकर कि भिखारी के कदमों में भी तुम्हें गति मालूम होती है--हो सकती है--क्योंकि उसको कहीं पहुंचना है, कुछ दुख मिटाना है, कुछ तकलीफ ठीक करनी है; सम्राट के पैर बिल्कुल ही बोझिल हो जाते हैं। न कहीं पहुंचने को, न कुछ पाने को; जो पहुंचना था पहुंच चुके, जो पाना था पा लिया, अब? अब एक इतना बड़ा प्रश्न बनकर खड़ा हो जाता है। अब सिर्फ घसिटते हैं। अब सिर्फ मौत की राह देख रहे हैं कि कब आए, कब छुटकारा दिला दे।
दुख का न हो जाना आनंद नहीं है। दुख का न हो जाना आनंद के होने के लिए जरूरी शर्त हो सकती है, आवश्यक हो सकता है, पर्याप्त नहीं है।
तो पश्चिम का मनोविज्ञान भी धीरे-धीरे सरक रहा है। फ्रायड ने जहां मनोविज्ञान को छोड़ा था उससे बहुत आगे जा चुका पश्चिम में भी मनोविज्ञान। नए मानवतावादी विचारक पैदा हुए हैं--अब्राहम, मैसलो और दूसरे--जिन्होंने अब मनोविज्ञान को नयी दिशाएं देनी शुरू की हैं। वे दिशाएं ये हैं कि अब इस बात की हमें फिकर नहीं है कि आदमी सिर्फ स्वस्थ हो। स्वस्थ से ज्यादा हो,

आनंदित हो। इतना काफी नहीं है कि बीमारी न हो, इतने से क्या होगा? उत्सव हो। तुम चल सको, तुम्हारे पैर स्वस्थ हों, इतना काफी नहीं है। तुम नाच भी सको। चलना एक बात है।
एक आदमी है, पैर ठीक नहीं है, चल नहीं सकता; पक्षाघात है, लकवा लग गया है। लकवा मिटाना जरूरी है। लकवा मिट जाए तो चल सकेगा, लकवा मिट जाए तो नाच भी सकेगा, लेकिन लकवा मिट जाने से कोई नाचने नहीं लगता है। लकवा मिट जाना नाचने के लिए जरूरी शर्त है, काफी नहीं है। कितने लोग हैं जिनको लकवा नहीं है, लेकिन वे नाचते दिखायी नहीं पड़ते। नाचने के लिए भीतर कुछ संपदा का अनुभव चाहिए। नाचने के लिए भीतर कोई किरण उतरे, कोई गीत उतरे, कोई धुन उतरे, जीवन को कोई सुराग मिले रहस्य का, झलक मिले परमात्मा की, तो कोई नाच सकता है।
धीरे-धीरे पश्चिम का मनोविज्ञान सरक रहा है। सरकना ही पड़ेगा। क्योंकि बीमार तो बहुत थोड़े लोग हैं। बहुत लोग स्वस्थ हैं, और फिर भी उनके जीवन में कोई आनंद नहीं है, उनकी भी चिंता करनी पड़ेगी। लंगड़े-लूलों को ही ठीक नहीं करना है, नहीं तो काम बड़ा आसान था। जो लंगड़े-लूले नहीं हैं, उनको नाच भी देना है। और काम बड़ा कठिन है।
लेकिन, जब पहला कदम उठ जाए तो दूसरा कदम भी उठना शुरू हो जाता है। पहला कदम है, कोई आदमी नया बगीचा लगाता है तो घास-पात को उखाड़ता है; व्यर्थ के पौधे, झाड़ी-झंखाड़ को अलग करता है, जमीन खोदकर बदलता है, जड़ें निकालकर फेंकता है। यह जरूरी है। लेकिन बस इतने पर ही रुक जाए तो फूल नहीं आ जाते। फिर बीज बोने पड़ते हैं, फिर पानी सींचना पड़ता है, फिर रखवाली करनी पड़ती है। फिर हजार बाधाएं हैं, उनसे लड़ना पड़ता है। तो एक आदमी को जीवन में सुविधा मिल जाए, स्वास्थ्य मिल जाए, रहने का अच्छा मकान मिल जाए; रोटी, रोजी, मकान का इंतजाम हो जाए; इतने से तो केवल बगीचे की तैयारी हुई थी। अभी बीज नहीं बोए गए थे। इतनेभर से जो राजी हो गया वह नासमझ है। वह असार से राजी हो गया। उसने नकार को सब समझ लिया। वह औषधि से राजी हो गया। उतना काफी नहीं है। चिकित्साशास्त्र का जिनका गहरा अनुभव है, वे कहते हैं कि कई बार दो मरीज एक ही बीमारी के मरीज होते हैं, एक ही अवस्था के होते हैं, और एक पर दवा काम कर जाती है और दूसरे पर काम नहीं करती। तो इसका बड़ा चिंतन चलता है कि ऐसा क्यों होता है? खोज-बीन से पाया गया कि जिस आदमी पर दवा काम कर जाती है वह आदमी जीना चाहता है, जीने की आकांक्षा है, जीवेषणा है, औषधि काम कर जाती है। वह जो दूसरा आदमी है जिस पर औषधि काम नहीं करती--वही बीमारी है, वही अवस्था है--वह जीना नहीं चाहता। वह उदास हो गया है, वह थक गया है, उसने आशा छोड़ दी; फिर औषधि काम नहीं करती।
मेरे देखे, जो लोग मन से रुग्ण हैं, वे वे ही लोग हैं जिनको जीवन में सुख का कोई सुराग नहीं मिला, और उन्होंने आशा छोड़ दी। वे हताश हो गए हैं। उनको तुम खींचतान कर खड़ा भी कर दो तो भी नचा न सकोगे। खींचतान कर खड़ा किया जा सकता है, धक्का-मुक्की देकर चलाया भी जा सकता है। बैसाखियां भी दी जा सकती हैं और किसी तरह उनमें गति लायी जा सकती है। लेकिन नाच बैसाखियों से नहीं आता। और न धक्का देकर कोई नाच ला सकता है। नाच तो उनके अंतरगृह में उतरे, कोई द्वार खुले, कोई झरोखा खुले, भीतर नयी रोशनी आए, नयी हवा आए, परमात्मा उनके भीतर पुनर्जन्म ले, तभी।
पूरब में हमने आनंद का विज्ञान निर्मित किया है। पश्चिम का विज्ञान केवल दुख से कैसे छुटकारा हो। इसलिए पश्चिम में दुख से छुटकारा हो भी गया और लोग बड़े बेचैन हो गए हैं। सुख आता दिखायी नहीं पड़ता। इसीलिए पश्चिम का मनोविज्ञान एक-एक कदम आगे बढ़ रहा है। और आज नहीं कल बुद्धों के मनोविज्ञान से उसका संबंध जुड़ जाएगा।

तीसरा प्रश्नः आप कहते हैं, जीओ अभी और यहीं। पर स्वयं को देखकर हमें अभी और यहीं जीने जैसा नहीं लगता। वर्तमान में जीने की बजाय भविष्य की कल्पना में जीना ज्यादा सुखद लगता है। तो क्या करें?

तो जीओ, वैसे ही जीओ। अनुभव बताएगा कि जो सुखद लगता था वह सुखद था नहीं। प्रश्न से इतना ही पता चलता है कि प्रौढ़ नहीं हो, कच्चे हो अभी। अभी जीवन ने पकाया नहीं। अभी मिट्टी के कच्चे घड़े हो; वर्षा आएगी, बह जाओगे। अभी जीवन की आग ने पकाया नहीं। क्योंकि जीवन की आग जिसको भी पका देती है उसको यह साफ हो जाता है। क्या साफ हो जाता है? एक बात ही साफ हो जाती है कि भविष्य में सुख देखने का अर्थ ही यही है कि वर्तमान में दुख है। इसलिए भविष्य के सपने सुखद मालूम होते हैं।
थोड़ा सोचो! जो आदमी दिनभर भूखा रहा है, वह रात सपने देखता है भोजन के। लेकिन जिसने भरपेट भोजन किया है, वह भी कहीं रात सपने देखता है भोजन के? देखे तो पागल है। जो तुम्हें मिला है उसके तुम सपने नहीं देखते। जो तुम्हें नहीं मिला है उसके ही सपने देखते हो। वर्तमान तुम्हारा दुख से भरा है। इसको भुलाने को, अपने मन को समझाने को, रिझाने को, राहत के लिए, सांत्वना के लिए तुम अपनी आंखें भविष्य में टटोलते हो। कोई सपना, कल सब ठीक हो जाएगा। उस कल की आशा में, भरोसे में आज के दुख को झेल लेते हो। मंजिल की आशा में रास्ते का कष्ट कष्ट नहीं मालूम पड़ता। पहुंचने के ही करीब हैं, हालांकि वह कभी आता नहीं।
आज जिसको तुम आज कह रहे हो यह भी तो कल कल था। इस आज के लिए भी तुमने सपने देखे थे, वे पूरे नहीं हुए। ऐसा ही पिछले कल भी हुआ था, और पिछले कल भी हुआ था। और यही आगे भी होगा। अगर तुम्हारा आज सुखपूर्ण नहीं है, तो दुखपूर्ण आज से सुखपूर्ण कल कैसे निकलेगा? थोड़ा सोचो!
आज कहीं आकाश से थोड़े ही आया है। तुम्हारे भीतर से आया है। तुम्हारा
आज अलग है, मेरा आज अलग है। कैलेंडर के धोखे में मत पड़ना। कैलेंडर पर तो तुम्हारा भी आज वही नाम रखता है, मेरा आज भी वही नाम रखता है। लेकिन यहां तुम जितने लोग बैठे हो इतने ही आज हैं। पूरी पृथ्वी पर जितने लोग हैं इतने आज हैं। और अगर तुम पशु-पक्षियों और पौधों को भी गिनो, तो उतनी ही संख्या है। कैलेंडर बिल्कुल झूठ है। उससे ऐसा लगता है, एक ही दिन है सबका। रविवार, तो सभी का रविवार। जरूरी नहीं है। किसी की जिंदगी में सूरज उगा हो तो रविवार, और किसी की जिंदगी में अंधेरा हो तो कैसा रविवार!
आज कहीं आकाश से नहीं उतरता है। समय कहीं बाहर से नहीं आता है। समय तुम्हारे भीतर से पैदा होता है। तुम ही आज को जीकर कल को पैदा करोगे। तुम्हारे ही गर्भ में निर्मित होता है कल। कल निर्मित हो रहा है आज।
और इसीलिए मैं कहता हूं, आज और अभी जी लो। और इतने आनंद से जीओ, ऐसे भरपूर जीओ कि जो तुम्हारे गर्भ में निर्मित हो रहा है वह भी रूपांतरित हो जाए, वह तुम्हारे आनंद को पकड़ ले। अगर आज तुम दुख में जी रहे हो, और कल की आशा कर रहे हो सुख की, आशा से पैदा नहीं होगा कल, कल तो तुमसे पैदा होगा। तुम जैसे जी रहे हो उससे पैदा होगा। तुम्हारे अस्तित्व से पैदा होगा, तुम्हारे सपनों से नहीं।
समझो एक मां बीमार है और उसके गर्भ में एक बेटा है; और रुग्ण है, और शरीर जराजीर्ण है। बेटा तो इस जराजीर्ण, रुग्ण शरीर से पैदा होगा। मां चाहे सपने कितने ही देखती हो कि बेटा बड़ा स्वस्थ होगा, महावीर जैसा स्वस्थ होगा, इससे कुछ हल नहीं होने वाला। इस सपने से बेटा पैदा नहीं होने वाला। बेटा तो सचाई से पैदा होगा। तुम्हारा कल तुम्हारे सपने से पैदा नहीं होगा, तुम्हारे आज की असलियत से पैदा होगा, हकीकत से पैदा होगा।
तुम आज क्या हो। अगर तुम नाच रहे हो, तो तुमने आने वाले कल के लिए नाच
दे दिया। अगर तुम प्रमुदित हो, प्रफुल्लित हो, तो कल का फूल खिलने ही लगा। क्योंकि जिस फूल को कल खिलना है, उसकी कली आज ही तैयार हो रही है। प्रतिपल तुम अगला पल पैदा कर रहे हो। प्रतिक्षण अगला क्षण तुम्हारे भीतर निर्मित हो रहा है, तैयार हो रहा है। तुम स्रष्टा हो। तुम अपने समय को खुद पैदा करते हो।
इसलिए मैं तो कहता हूं, आज जीओ। लेकिन तुम्हें लगता है वर्तमान जीने जैसा नहीं लगता। अगर वर्तमान जीने जैसा नहीं लगता, तो कल भी तो वर्तमान होकर ही आएगा। फिर वह भी जीने जैसा नहीं लगेगा। परसों भी वर्तमान होकर ही

आएगा, वह भी जीने जैसा नहीं लगेगा। तो इसी को तो मैं आत्मघात करना कहता हूं। तब तो आत्महत्या कर रहे हो, जी नहीं रहे हो।
जीने का कोई और उपाय नहीं है। आज ही है, और आज ही जीना है। जीने जैसा लगे या न लगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जीने का और कोई ढंग है ही नहीं। जीना तो यहीं होगा। कल के भुलावे में मत पड़ो। कल के भुलावों ने बहुतों को डुबाया है।
आज जीओ। यह क्षण खाली न चला जाए। यह क्षण अवसर है। इसे तुम ऐसे ही मत गंवा देना। कुछ बना लो इसका। कुछ रस ले लो इसमें। कुछ भोग लो इसे। कुछ पहचान लो इसे। इसका स्वाद उतर जाने दो तुम्हारे प्राणों में। यह ऐसा ही न चला जाए। क्योंकि अगर समय ऐसा ही जाता है तो समय को ऐसे ही चले जाने देने की आदत मजबूत होती चली जाती है। फिर धीरे-धीरे समय को गंवाना तुम्हारी प्रकृति हो जाती है। भोगो इसे। चूसो इस क्षण को, निचोड़ लो इसको पूरा, इसका रस जरा भी छूट न जाए। यही परमात्मा के प्रति धन्यवाद है। क्योंकि उसने तुम्हें अवसर दिया, जीवन दिया, और तुमने ऐसे ही गंवा दिया। परमात्मा तुमसे यह न पूछेगा... ।
यहूदियों की किताब है--तालमुद। बड़ी अनूठी किताब है। दुनिया में कोई धर्मशास्त्र वैसा नहीं। तालमुद कहती है कि परमात्मा तुमसे यह न पूछेगा कि तुमने कौन-कौन सी गलतियां कीं। गलतियों का वह हिसाब रखता ही नहीं, बड़ा दिल है। परमात्मा तुमसे पूछेगा, तुम्हें इतने सुख के अवसर दिए तुमने भोगे क्यों नहीं? गलतियों की कौन फिकर रखता है? भूल-चूक का कौन हिसाब रखता है? वह तुमसे पूछेगा, इतने अवसर दिए सुख के, तुमने भोगे क्यों नहीं? तालमुद कहती है, एक ही पाप है जीवन में, और वह है जीवन के अवसरों को बिना भोगे गुजर जाने देना। जब तुम आनंदित हो सकते थे, आनंदित न हुए। जब गीत गा सकते थे, गीत न गाया। सदा कल पर टालते रहे, स्थगित करते रहे।
स्थगित करने वाला आदमी जीएगा कब? कैसे जीएगा? स्थगित करना ही तुम्हारे जीवन की शैली हो जाती है। बच्चे थे तब जवानी पर छोड़ा, जवान हो तब बुढ़ापे पर छोड़ोगे। और बुढ़ापे में लोग हैं, वे अगले जनम पर छोड़ रहे हैं। वे कह रहे हैं, परलोक में देखेंगे।
यही लोक है एकमात्र। और यही क्षण है। सत्य का यही क्षण है। बाकी सब झूठ है। मन का जाल है। लेकिन अगर तुम्हें अच्छा लगता है, तुम्हारी मर्जी। तुम्हें अच्छा लगता हो, तो मैं कौन हूं बाधा देने वाला? तुम सपने देखो। कभी न कभी तुम जागोगे, तब रोओगे, पछताओगे। तब तुम पछताओगे कि इतना समय यूं ही गंवाया। और ध्यान रखना जीवन में जितना दुख भर लोगे, जितने आंसू घने कर लोगे, जितना पछतावा हो जाएगा, उतना ही कठिन हो जाता है रोकना फिर दुख को, आंसुओं को।
कभी तुमने ख्याल किया, हंसी तो एकदम रुक जाती है, रोना एकदम नहीं रुकता। तुम हंस रहे हो, एकदम रुक सकते हो। रोना एकदम नहीं रुकता।
थमते थमते थमेंगे आंसू
रोना है कुछ हंसी नहीं है
दुख ऐसा सराबोर कर लेता है, दुख ऐसी गहराइयों तक प्रविष्ट हो जाता है, तुम्हारी जड़ों तक समाविष्ट हो जाता है कि फिर तुम उसे रोकना भी चाहो तो कैसे रोको?
थमते थमते थमेंगे आंसू
रोना है कुछ हंसी नहीं है
यह कोई मजाक नहीं है कि रो लिए और रोक लिए। यह कोई हंसी नहीं है कि हंस लिए और रोक लिए। हंसी तो तुम्हारी ऊपर-ऊपर होती है, रुक जाती है। रोना बहुत गहरे चला जाता है। रोना तुम्हारे जीवन में सब तरफ भर जाता है, और रोज-रोज अगर तुम रोने को इस तरह सम्हालते गए, और जीने को कल पर टालते गए; तुमने कहा हंसेंगे कल, रोएंगे आज... और तुम जो दलील दे रहे हो वह दलील यह है कि अपना वर्तमान तो सुखद मालूम नहीं पड़ता, इसलिए सुखद सपने देखेंगे। सुखद वर्तमान क्यों नहीं है, यह पूछो। इसीलिए नहीं है कि कल भी तुमने सपने देखे थे आज के। और कल का दिन गंवा दिया जिसमें आज सुखद हो सकता था, जिसमें आज की आधारशिला रखी जा सकती थी। कल तुमने गंवा दिया, इसीलिए आज दुखद है। और तुम

यही दलील दे रहे हो कि हम आज को भी गंवाएंगे, क्योंकि कल का सपना अच्छा मालूम पड़ता है।
तुम्हारी मर्जी। गणित साफ है। फिर मुझसे मत कहना कि हमें किसी ने चेताया नहीं। तुम्हें यह मौका न मिलेगा कहने का, यह ध्यान रखना, कि हमें किसी ने चेताया नहीं। दूसरों को तो यह भी सुविधा है कहने की कि उन्हें किसी ने चेताया नहीं। लेकिन मैं तुम्हें रोज चेता रहा हूं।

चौथा प्रश्नः पिछले जन्म के संस्कार इस जन्म में आदत बन जाते हैं। इस जन्म की आदतें अगले जन्म में फिर संस्कार बन जाएंगी। फिर अंत कहां है?

अंत है इस बात में, इस सत्य को जान लेने में कि तुम संस्कार नहीं हो, तुम आदत नहीं हो। अंत है इस सत्य के प्रति जाग जाने में कि तुम पृथक हो। अंत है होश में। अंत है साक्षी भाव में।
निश्चित ही तुमने कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, आदत बन गयी। आज किसी ने जरा सा उकसा दिया, अंगारा तो था ही भीतर--रोज-रोज सम्हाला था--हो गया। राख भी जमी थी तो बस ऊपर जरा सी पर्त थी। किसी ने फूंक मार दी, पर्त झर गयी, अंगारा बाहर आ गया, तुम क्रोध से भर गए। आज तुम क्रोध करोगे, कल के लिए फिर और तैयारी हो गयी।
ऐसे रोज-रोज तुम अभ्यास बनाते जाओगे। संस्कार गहन होता जाएगा। और जितना संस्कार गहन हो जाएगा, उतने ही तुम यंत्रवत हो जाओगे। कोई भी तुम्हारी बटन दबा दे, तो क्रोध करवा दे। कोई भी तुम्हारी बटन दबा दे, तो तुम प्रसन्न हो जाओ। कोई भी झुककर नमस्कार कर ले, तुम्हारी प्रशंसा कर दे, तो तुम गदगद! कोई जरा गाली दे दे, तो तुम जार-जार! तुम यंत्रवत हो जाओगे। और बटनें लोगों को पता हो जाती हैं। सबको पता हैं एक-दूसरे की बटनें। कहां से दबा दो कि सब ठीक हो जाता है। कहां से दबा दो कि सब गड़बड़ हो जाता है। तुम मशीन हो क्या? या मनुष्य हो!
मनुष्य होने का इतना ही अर्थ है कि कोई तुम्हारी क्रोध की बटन दबाए चला जाए, लेकिन तुम कहते हो नहीं करना है, तो बटन दबती रहती है, वह आदमी थक जाता है, लेकिन तुम क्रोध नहीं करते। तुम कहते हो मैं अपना मालिक हूं। जब करना चाहूंगा करूंगा, जब न करना चाहूंगा नहीं करूंगा। प्रतिक्रिया और क्रिया में यही फर्क है। प्रतिक्रिया में दूसरा मालिक है, तुम नहीं। और क्रिया में तुम मालिक हो, दूसरा नहीं।
और बड़े मजे की बात है, प्रतिक्रिया बांधती है, क्रिया मुक्त करती है।
जो अपने कर्म का मालिक है, उसके कर्म का कोई संस्कार नहीं बनता। और जो अपने कर्म का मालिक नहीं है, जो प्रतिकर्म करता है--रिएक्ट होता है सिर्फ--उस आदमी के जीवन में बंधन बनते चले जाते हैं। रोज-रोज जाल मजबूत होता चला जाता है। आखिर में तुम पाते हो, तुम तो बचे ही नहीं, आदतों का एक ढेर-- मुर्दा ढेर--जिसमें से जीवन कभी का उड़ चुका। पक्षी तो जा चुका है जीवन का बहुत पहले, कटघरा छूट गया है, पिंजड़ा छूट गया है।
जागो, इसके पहले कि देर हो जाए। और आदतों से मुक्त होना शुरू करो। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा कि बुरी आदतों से मुक्त हो जाओ और भली आदतें बना लो। तुम्हारे महात्मागण तुमसे यही कह रहे हैं। वे तुमसे कहते हैं, बुरी आदतें छोड़ो, अच्छी बनाओ। मैं तुमसे कहता हूं, आदत छोड़ो। बुरी और अच्छी आदत से कोई फर्क नहीं पड़ता। लोहे का हो पिंजड़ा कि सोने का, क्या फर्क पड़ता है?
एक आदमी को सिगरेट पीने की आदत है, सारी दुनिया बुरा कहती है। दूसरे
को माला फेरने की आदत है, सारी दुनिया अच्छा कहती है। जो सिगरेट पीता है वह अगर न पीए तो मुसीबत मालूम होती है, जो माला फेरता है अगर न फेरने दो तो मुसीबत मालूम होती है। दोनों गुलाम हैं। एक को उठते ही से सिगरेट चाहिए, दूसरे को उठते ही से माला चाहिए। माला वाले को माला न मिले तो माला की तलफ लगती है। सिगरेट वाले को सिगरेट न मिले तो सिगरेट की तलफ लगती है। ऐसे बुनियाद में बहुत फासला नहीं है। सिगरेट भी एक तरह का माला फेरना है। धुआं भीतर ले गए, बाहर ले गए, भीतर ले गए, बाहर ले गए--मनके फिरा रहे हैं। बाहर,

भीतर। धुएं की माला है। जरा सूक्ष्म है। कोई अपना कंकड़-पत्थर की फेर रहा है। जरा स्थूल है।
असली सवाल आदत से मुक्त होने का है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि माला मत फेरो। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि सिगरेट पीओ। मैं यह कह रहा हूं कि तुम मालिक रहो। कोई आदत ऐसी न हो जाए कि मालिक बन जाए। कोई आदत। मंदिर जाने की आदत भी मालिक न हो जाए। ध्यान करने की आदत भी मालिक न हो जाए। मालिक तुम ही रहो।
मालकियत बचाकर आदत का उपयोग कर लेना, यही साधना है। मालकियत खो दी, और आदत सवार हो गयी, तो तुम यंत्रवत हो गए। तब तुम्हारा जीवन मूर्च्छित है। ऐसे लोग हैं, जो मेरे पास आकर कहते हैं कि अगर पूजा न करें रोज, तो बेचैनी लगती है। वे सोचते हैं कि बड़ा धार्मिक, बड़ी धार्मिक घटना घट गयी उनके जीवन में। मैं उनसे पूछता हूं, पूजा करने से कुछ आनंद मिलता है? वे कहते हैं, आनंद तो कुछ नहीं मिलता, लेकिन न करें तो बेचैनी लगती है।
यही तो सिगरेट पीने वाला कहता है। वह कहता है कि--उससे पूछो, कुछ आनंद मिलता है--वह कहता है, आनंद! क्या रखा है! आनंद तो कुछ नहीं मिलता, कभी-कभी खांसी जरूर आती है; आनंद तो कुछ भी नहीं मिलता, लेकिन न पीओ तो बेचैनी मालूम होती है।
इसे तुम थोड़ा सोचो। इसी को मैं यंत्र हो जाना कहता हूं, कि जिससे कुछ
भी नहीं मिलता है उससे भी न करने पर बेचैनी मालूम होती है। उपलब्ध कुछ भी नहीं होता है, पाने को कुछ भी नहीं है, लेकिन छोड़ने में मुसीबत है। क्योंकि आदत ने पकड़ा है अब। आदत इतना ही कर सकती है--करो, तो कुछ न मिले; न करो, तो कुछ खोता मालूम पड़े।
अब यह बड़े मजे की बात है, जिस चीज को करने से कुछ नहीं मिलता, उसको न करने से खोएगा कैसे? कुछ खोता नहीं, सिर्फ पुरानी आदत, पुरानी लकीरों पर न चलने से अड़चन मालूम होती है।
मैं एक बहुत बड़े वकील को जानता था। उनकी आदत थी कि जब भी वे अदालत में खड़े होते, पैरवी करते--बड़े वकील थे, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के थे, और लंदन और पेकिंग और दिल्ली तीन जगह उनके दफ्तर थे--तो उनकी आदत थी कि वे अपने कोट का बटन घुमाने लगते थे, जब अटक जाते। सभी की होती है। कोई अपना सिर खुजलाने लगता है, कोई कुछ करने लगता है। उस आदत का भी वैसा ही उपयोग है जैसे बटन दबाने का। तो अगर जब भी उनके विचार उलझ जाते, या कोई उत्तर न सूझता, तो वे कोट का बटन घुमाने लगते। घुमाने से कुछ मिलता था यह तो पक्का पता नहीं, क्योंकि कोट का बटन घुमाने से क्या मिलेगा? और जिसकी बुद्धि उलझी हुई हो, समझ में न आ रहा हो, वह कोई कोट के बटन घुमाने से कुछ बात समझ में आ जाएगी? लेकिन विरोधियों को यह बात दिखायी पड़ गयी कि वे जब भी उलझ जाते हैं तो बटन घुमाते हैं।
एक बड़ा मुकदमा था। एक बड़ी स्टेट का मुकदमा था प्रीवी कौंसिल में। लाखों का मामला था। तो विरोधी वकील ने उनके शोफर को मिला लिया--कुछ पैसे दिए--और कहा कि तू इतना करना, उनके कोट के ऊपर का बटन तोड़ देना। तो वे जब अदालत में अपना कोट लेकर हाथ में रखकर आए तो वह बटन नदारद था। तो उस वक्त तो उन्होंने देखा भी नहीं, कोट डाल लिया। जब वे पैरवी करने लगे और वक्त आया, हाथ कोट के बटन पर गया, बस, सब गड़बड़ हो गया! जैसे मस्तिष्क ने साथ छोड़ दिया, कुछ सूझ-बूझ ही न रही, चक्कर सा मालूम हुआ। बैठ गए। पहला मुकदमा हारे वे।
वे मुझसे कहते थे कि उस बटन से मुझे मिला तो कभी कुछ नहीं, लेकिन गंवाया मैंने बहुत। उस बटन के घुमाने से कुछ मुझे सूझ-बूझ आती थी ऐसा भी नहीं था, लेकिन बटन न पाकर बस, मैं समझ ही न पाया कि अब क्या करूं? हाथ से जैसे कोई हथियार छूट गया। भरोसा किए बैठे थे, और वक्त पर जिस पर भरोसा था वह दगा दे गया।
जिनको तुम आदतें कहते हो, बुरी हों या भली, इससे कोई भेद नहीं पड़ता, सब आदतें, मालिक हो जाएं तो बुरी हैं। तुम मालिक रहो तो कोई आदत बुरी नहीं। गुलामी बुरी है, मालकियत भली है। मेरी परिभाषा यही है। संस्कार बन रहे हैं

प्रतिपल। आदतें निर्मित हो रही हैं। तुम जरा दूर खड़े रहो, तुम अपनी मालकियत मत खोओ।
निश्चित जीवन में आदतों की जरूरत है। अगर आदतें न हों तो जीवन बहुत कठिन हो जाएगा। आदतें जीवन को सुगम बनाती हैं। तुम टाइपिंग सीखते हो, या कार चलाना सीखते हो, अगर आदत न बने और रोज-रोज फिर वहीं खड़े हो जाओ जहां पहले दिन खड़े हुए थे; फिर देखने लगो कि अब टाइप करने का फिर मौका आया अब फिर सीखो, या कार चलाने की फिर नौबत आ गयी अब फिर से सीखो, तो जिंदगी बहुत असंभव हो जाए। तुम कार चलाना एक बार सीख लेते हो, आदत बन गयी। फिर हाथ ही काम किए चले जाते हैं, फिर तुम्हें ध्यान भी देने की जरूरत नहीं होती। ठीक-ठीक ड्राइवर गीत भी गुनगुना लेता है, बात भी कर लेता है, रेडियो भी सुन लेता है। और कुछ तो ड्राइवर ऐसे हैं कि झपकी भी ले लेते हैं और गाड़ी चलती रहती है।
जीवन में आदत की जरूरत है। बस ध्यान इतना ही रखना जरूरी है कि आदत मालिक न हो जाए। मालिक तुम बने रहो तो संसार में कुछ भी बुरा नहीं है। स्वामित्व तुम्हारा हो, तो संसार में सभी कुछ अच्छा है। स्वामित्व खो जाए, तुम गुलाम हो जाओ, तो वह गुलामी चाहे कितनी ही कीमती हो, खतरनाक है। हीरे- जवाहरात लगे हों सीखचों पर, जंजीरों पर, तो भी उनको आभूषण मत समझ लेना। वे खतरनाक हैं। वह महंगा सौदा है।
अपने को गंवाकर इस जगत में कमाने जैसा कुछ भी नहीं है।
हां, अपने को बचाकर जितना खेल खेलना हो खेल ले सकते हो। जब परमात्मा
ही लीला कर रहा है, तो तुम क्यों परेशान हो? लेकिन परमात्मा मालिक है और जब तुम भी अपनी आदतों और संस्कारों के मालिक हो जाओगे तब तुम भी अपने छोटे से संसार में परमात्मा हो जाते हो।
बुद्ध ने इसी को होश कहा है, कि सब करना लेकिन होशपूर्वक करना। कदम भी उठाना तो होशपूर्वक उठाना। उठना, बैठना, लेटना--होशपूर्वक। कोई भी चीज बेहोशी में मत करना। अगर तुम होश को साधते रहो तो आदत तो बनती रहेगी, आदत का तुम उपयोग करते रहोगे, लेकिन आदत के पीछे होश की धारा भी बह रही है। चैतन्य का दीया भी जल रहा है। वह भी निर्मित हो रहा है, उसकी भी सघनता बढ़ रही है। उसका भी प्रकाश गहन होता जा रहा है।
जीवन में सिर्फ आदतें ही आदतें रह जाएं तो आत्मा खो जाती है। आदतों के पीछे तुम भी रहो--अलग, पृथक। और इतनी तुममें मालकियत हो कि किसी आदत को अगर तुम छोड़ना चाहो तो इसी क्षण छोड़ दो, लौटकर दुबारा सोचने की जरूरत भी न पड़े। मैंने सुना है कि जब पहली दफा उत्तर ध्रुव पर यात्री पहुंचे, तो वे एक बड़ी मुसीबत में पड़े। तीन महीने का भोजन था, वह चुक गया। और कोई पंद्रह-बीस दिन उन्हें भूखे उपवास में गुजारने पड़े। कभी मछली पकड़ लेते तो ठीक, कभी न पकड़ पाते तो मुश्किल। जहाज उलझ गया, बर्फ में फंस गया। लेकिन उन यात्रियों का जो कैप्टन था उसको सबसे ज्यादा जो मुसीबत आयी वह भोजन की नहीं थी। लोग बिना भोजन के रहने को तैयार थे--यात्रियों का दल--सिगरेट की सबसे ज्यादा मुसीबत खड़ी हुई। सिगरेट खतम हो गयी। तो लोगों ने जहाज की रस्सियां काट-काटकर पीना शुरू कर दिया। कैप्टन घबड़ाया। उसने कहा कि अगर बीस दिन यह सिलसिला रहा तो फिर हम कभी वापस न पहुंच पाएंगे! तुम रस्सियां ही काटे डाल रहे हो, तो यह जहाज आगे कैसे बढ़ेगा? ये पाल गिर जाएंगे। मगर लोग इतने दीवाने सिगरेट पीने के लिए कि कैप्टन करे भी क्या? एक आदमी, बाकी सब सिगरेट पीने वाले, उनका करो भी क्या? वे रात को चोरी से काट लें, इधर-उधर से काट लें।
जब यह जहाज लौटकर किसी तरह आया और इसकी अखबारों में खबर छपी, तो एक आदमी ने अमरीका में--वह अखबार पढ़ते वक्त अपनी सिगरेट भी पी रहा था, अखबार भी पढ़ रहा था--उसे अचानक यह बात अजीब सी लगी कि लोग गंदी रस्सियां काट-काटकर पी गए। वह भी चेन स्मोकर था। उसने सोचा--हाथ में सिगरेट थी--उसने सोचा कि क्या यही गति मेरी होती अगर मैं भी उनके साथ होता? क्या मैं भी रस्सियां काटकर पी जाता? एक क्षण उसे ख्याल आया, उसने सिगरेट ऐश-ट्रे पर रख दी, और उसने कहा, अब इसको तभी उठाऊंगा जब मेरी ऐसी दशा आ जाए कि मुझे लगे अब मैं गंदी रस्सियां भी पी सकता हूं, नहीं तो नहीं उठाऊंगा।

बीस साल बीत गए। वह सिगरेट अपनी टेबल पर ही रखे रहा। लोग उससे पूछते
भी कि यह आधी जली सिगरेट यहां क्यों रखी है? वह कहता कि इसको मुझे उठाना है किसी दिन, लेकिन उसी दिन उठाऊंगा जिस दिन मेरी पीड़ा ऐसी हो जाएगी कि आदत बड़ी और मैं छोटा हो जाऊंगा। लेकिन मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं। वह घड़ी आती नहीं। बीस साल बीत गए। मैंने बीस साल से सिगरेट नहीं पी है, और याद भी नहीं आयी है। मैं याद करने की कोशिश कर रहा हूं कि कभी भी आ जाए, क्योंकि मैं जानना चाहता हूं किस मुसीबत में जहाज के लोगों को रस्सियां पीनी पड़ी होंगी। लेकिन वह कभी न आयी।
उसने अपना संस्मरण लिखा है। मैं संस्मरण पढ़ रहा था। उसने संस्मरण में लिखा है कि मैं समझ ही नहीं पाता कि क्या बात हो गयी? क्योंकि पहले भी मैंने कई बार सिगरेट छोड़ना चाही थी, लेकिन नहीं छोड़ सका था। कई बार छोड़ी भी थी, तो दिन-दो दिन के बाद फिर पीने लगा था। लेकिन क्या हुआ? अब तो मैंने छोड़ा भी नहीं था। सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा हूं कि जब भी आदत पकड़ लेगी और झकझोर डालेगी तो पीयूंगा। लेकिन मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूं कि मैं भी उस जहाज में अगर होता तो क्या मैंने रस्सियां पी होतीं? बीस साल से आदत आयी नहीं। मेरी समझ में नहीं आता कि हुआ क्या!
उसकी समझ में नहीं आ रहा है, क्योंकि उसे ध्यान का कुछ पता नहीं है। होश का कुछ पता नहीं है। इसने छोड़ी नहीं है सिगरेट, छूट गयी होश के कारण। क्योंकि वह एक ही होश साधे हुए है कि जब इतने जोर से तलफ पकड़ेगी कि मैं रस्सियां पी लेता, तभी पीयूंगा। लेकिन उस होश के कारण तलफ नहीं पकड़ती। होश हो तो तलफ पकड़ती ही नहीं। अब उसे कोई होश को जानने वाला मिले तो उसे उत्तर मिले। लेकिन अनजाने उसने होश साध लिया है।
तुमसे मैं कहता हूं, जो-जो आदत तुम्हें पकड़े हो, जबर्दस्ती पकड़े हो, उसके प्रति होश साधना। मैं तुमसे नहीं कहता, सिगरेट पीना छोड़ो। मैं कहता हूं, होशपूर्वक पीयो। मैं तो यहां आश्रम में एक कमरा बनवाने जा रहा हूं, जहां होशपूर्वक सिगरेट पीने वालों को सुविधा होगी, कि वे जाकर वहां सिगरेट जरूर पीएं, लेकिन जितनी देर पीएं उतनी देर ध्यान रखें। एक क्षण को भी बेहोशी में न पीएं, बस। फिर अगर पीना हो तो मजे से पीएं, कोई हर्जा नहीं। लेकिन मैं जानता हूं, अगर होश सध जाए तो ऐसी मूढ़ता कौन करेगा? ऐसी मूढ़ता तो बेहोशी में ही होती है।
तो मैं तुमसे कुछ भी छोड़ने को नहीं कहता। क्योंकि मैं जानता हूं, छोड़ने से कभी कोई छोड़ नहीं पाया। मैं तुमसे केवल होश साधने को कहता हूं; क्योंकि मैं जानता हूं, होश साधने से जो भी व्यर्थ है अपने आप छूट जाता है, और जो सार्थक है बच रहता है।
होश आध्यात्मिक जीवन की आखिरी कीमिया है, अल्केमी है। वह रसायन है।
उसके अतिरिक्त सब विस्तार की बातें हैं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
सातवां प्रवचन

जागकर जीना अमृत में जीना है

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।
अप्पमत्ता न मीयंति ये पमत्ता यथा मता।। 18।।

विसेसतोांत्वा अप्पमादम्हि पंडिता।
अप्पमादे पमोदंति अरियानं गोचरे रता।। 19।।

ते झायिनो साततिका निच्चं दल्ह-परक्कमा।
फुसंति धीरा निब्बानं योगक्खेमं अनुत्तरं।। 20।।

उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सांंतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्स यसोभिड्ढति।। 21।।

उट्ठानेनप्पमादेन सांंमेन दमेन च।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओधो नाभिकीरति।। 22।।

पमादमनुंंन्ति बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादंच मेधावी धनं सेट्ठं" व रक्खति।। 23।।

जफर ने गाया है--
उम्रे-दराज मांगकर लाए थे चार दिन
दो आरजू में कट गए दो इंतजार में
ऐसी ही कहानी है आदमी की। जिंदगी में कुछ हाथ आता नहीं। आशाएं बहुत हैं, सपने बहुत हैं। लेकिन हाथ में सिर्फ राख ही लगती है। आशाओं की, सपनों की धूल ही लगती है। और जाते समय जफर के शब्द अधिकांशतः सभी के लिए सही सिद्ध होते हैं। चार दिन मिले थे जिंदगी के, दो आकांक्षाओं में बीत गए, दो उनकी पूर्ति की प्रतीक्षा में। न तो कभी कुछ पूरा होता है, न कहीं पहुंचते हैं। जीवन ऐसे ही बीत जाता है--व्यर्थता में, असार में।
जिसे जीवन की यह व्यर्थता दिखायी पड़ी, वही संन्यस्त हुआ। जिसे संसार
की यह दौड़ सिर्फ दौड़ मालूम पड़ी--अर्थहीन, कहीं ले जाने वाली नहीं--जिसे जीवन सिवाय मृत्यु के मुंह में जाने के और कुछ न दिखायी पड़ा, वही जागा, उसी ने होश को सम्हाला, उसी ने नींद से बाहर निकलने की चेष्टा की। अगर तुम्हें अभी भरोसा है कि तुम्हारे सपने पूरे हो जाएंगे, तो तुम जागना न चाहोगे। जिसके मन में भी सपनों का जाल है, वह जागना न चाहेगा। क्योंकि जागने पर तो सपने टूट ही जाते हैं। सपनों के लिए नींद चाहिए।
अप्रमाद चाहिए जीवन के लिए, प्रमाद चाहिए नींद के लिए। अप्रमाद का अर्थ है होश। वह बुद्ध और महावीर का शब्द है। और प्रमाद का अर्थ है सुस्ती, तंद्रा, नींद। अगर तुम्हारे मन में कोई भी वासना है, तो प्रमाद चाहिए ही। तब तुम अप्रमत्त होने की चेष्टा न कर सकोगे, क्योंकि वह तो विपरीत होगा। कोई मधुर सपना देखता हो और तुम उसे जगाने जाओ, पीड़ा मालूम होती है। तुम दुश्मन जैसे मालूम पड़ोगे। इसीलिए बुद्धपुरुष सांसारिक व्यक्तियों को शत्रु जैसे मालूम पड़ते हैं। मधुर नींद ले रहे थे, अपने सपनों में खोए थे-- सपने स्वर्णिम भी हो सकते हैं, सोने के महलों के हो सकते हैं, लेकिन सपना सपना है। मिट्टी का घर हो कि सोने का महल हो, जागकर दोनों ही समाप्त हो जाते हैं। जागते ही दोनों टूट जाते हैं।
बुद्धपुरुषों की सारी चेष्टा यही है कि तुम कैसे सपने के बाहर जाग जाओ। तो ही तुम जीवन के वास्तविक रूप को जान सकोगे, तो ही तुम उस जीवन को जान सकोगे जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। अभी तो जिसे तुमने जीवन समझा है, वह मान्यता है। वह जीवन नहीं है। इसे कौन जीवन कहेगा जो आज है और कल नहीं हो जाएगा? पानी का बबूला है, बुद्ध ने कहा; भोर का तारा है, बुद्ध ने कहा; अभी

है, अभी गया। घास के पत्ते पर टिकी शबनम की बूंद है, बुद्ध ने कहा। कब गिर जाएगी, कोई भी नहीं जानता।
ऐसे जीवन पर भरोसा कर लेता है आदमी! नींद बड़ी गहरी होनी चाहिए, बेहोशी महान होनी चाहिए। और रोज तुम देखते हो कोई बूंद गिरी, रोज तुम देखते हो कोई तारा डूबा, रोज तुम देखते हो कोई बबूला फूटा और खो गया हवा में। तुम दो आंसू भी बहा लेते हो किसी की मृत्यु पर, सहानुभूति भी प्रगट कर आते हो; लेकिन तुम्हें यह बोध नहीं आता कि यह मृत्यु तुम्हारी मृत्यु की भी खबर है। तुम मरघट भी हो आते हो और फिर वैसे के वैसे संसार में वापस लौट आते हो। नींद बड़ी गहरी होगी। मरघट भी नहीं तोड़ पाता। निकटतम प्रियजन मर जाता है तो भी तुम जो मर गया उसके लिए रो लेते हो, लेकिन तुम्हें यह होश नहीं आता कि तुम्हारी मौत भी करीब आयी चली जाती है। आज कोई मरा है, कल तुम भी मरोगे। लोग इस विचार से बचते हैं, लोग इस विचार से डरते हैं।
और पश्चिम के मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि जो व्यक्ति सोचता है मृत्यु के संबंध में, वह रुग्ण है। वह रुग्ण इसलिए है कि अगर ऐसा वह सोचेगा तो जी न सकेगा। उनकी बात भी ठीक है। अगर यही जीवन जीवन है, तो मृत्यु के संबंध में बहुत सोचना खतरनाक है। क्योंकि जैसे ही तुम मृत्यु के संबंध में बहुत सोचोगे, तुम्हारे पैर रुक जाएंगे। जाती यात्रा पर तुम सहम जाओगे। महत्वाकांक्षा के लिए उड़ने की तैयारी कर रहे थे, पंख गिर जाएंगे। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, मृत्यु के संबंध में बहुत सोचना रुग्णता है। अगर यही जीवन जीवन है, तो वे ठीक कहते हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं कि यह जीवन तो जीवन नहीं है। जीवन तो इस तंद्रा के पार है। इस बेहोशी के बाहर है।
लेकिन हम इस बेहोशी को खूब सम्हालकर चलते हैं। हम कहीं से भी इसे टूटने नहीं देते। बहुत मौके भी आ जाते हैं टूटने के, तो भी हम सम्हाल-सम्हाल लेते हैं। फिर करवट ले लेते हैं, फिर सो जाते हैं।
एक सपना टूटा नहीं कि उसके पहले ही हम दूसरे सपने के बीज बो देते हैं।
एक आशा मिटी नहीं कि हम दूसरी आशा के सहारे टंग जाते हैं। लेकिन आशा को हम बनाए ही रखते हैं। एक क्षण का भी हम मौका नहीं देते कि जीवन की वास्तविकता का हम एहसास कर सकें, अनुभव कर सकें। छाती में चुभ जाए जीवन का यह सत्य, कि मौत छिपी है, मौत आ रही है, प्रतिपल चली आ रही है। जिस दिन से पैदा हुए हैं उस दिन से ही मौत पास आनी शुरू हो गयी है। जन्म का दिन मृत्यु का दिन भी है, यह ख्याल आ जाए। तुम जन्मदिन मनाते हो, लेकिन हर जन्मदिन जीवन को पास नहीं लाता, मृत्यु को पास लाता है। और एक वर्ष कम हो गया जीवन का। मौत और भी पास आ गयी। क्यू में तुम थो.ेडे आगे सरक गए मरघट की तरफ।
बुद्ध का पूरा मनोविज्ञान, समस्त बुद्धों का--फिर वे महावीर हों, कृष्ण हों, क्राइस्ट हों, या मोहम्मद हों--समस्त बुद्धों का मनोविज्ञान मृत्यु के बोध पर निर्भर है। जिस दिन भी तुम्हें दिखायी पड़ जाएगा कि यह जीवन गया गया है, इसे पकड़ोगे तो भी बचा न पाओगे--कोई नहीं बचा पाया--इसको बचाने की कोशिश में सिर्फ समय व्यतीत होगा, शक्ति क्षीण होगी। इसे बचाने की कोशिश मत करो, यह तो जाएगा ही। यह कोशिश असंभव है। जो थोड़ा सा समय मिला है क्षणभंगुर, उसमें जागने की कोशिश करो। जीवन को बचाने की नहीं, जागने की। क्योंकि जागने से ही तुम्हें एक ऐसी संपदा मिलनी शुरू होगी जो फिर कभी छीनी नहीं जाती। जिसे चोर छीन नहीं सकते, डाकू लूट नहीं सकते। मृत्यु भी जिसे छीन नहीं पाती है। जब तक वैसा स्वर तुम्हारे भीतर न बजने लगे जो सनातन है, शाश्वत है, ओंकार है; जो न कभी शुरू हुआ और न कभी अंत होगा--एस धम्मो सनंतनो--ऐसा धर्म तुम्हारे भीतर न उतर आए जो समयातीत है, काल के बाहर है, मृत्यु के हाथ जिस तक नहीं पहुंच पाते, तब तक तुम जीए जरूर, जीवन को बिना जाने जीए। तुम सोए, तुमने झपकी ली, तुम नशे में रहे, तुम होश में न आए। बुद्ध की सारी जीवन-प्रक्रिया को एक शब्द में हम रख सकते हैं, वह है, अप्रमाद, अवेयरनेस, जागकर जीना। जागकर जीने का क्या अर्थ होता है? अभी तुम रास्ते पर चलते हो, बुद्ध से पूछोगे तो वे कहेंगे, यह चलना बेहोश है। रास्ते पर दुकानें दिखायी पड़ती हैं, पास से गुजरते लोग दिखायी पड़ते हैं, घोड़ागाड़ी, कारें दिखायी पड़ती हैं, लेकिन एक चीज तुम्हें चलते वक्त नहीं दिखायी पड़ती, वह तुम स्वयं हो। और सब दिखायी पड़ता है। पास से कौन गुजरा,

दिखायी पड़ा। राह पर भीड़ है, दिखायी पड़ी। रास्ता सुनसान है, दिखायी पड़ा। सब तुम्हें दिखायी पड़ता है, एक तुम भर दिखायी नहीं पड़ते। यही तो सपना है। सपने में तुमने कभी ख्याल किया, सब दिखायी पड़ता है, एक तुम दिखायी नहीं पड़ते। सपने का स्वभाव यही है। बहुत सपने तुमने देखे हैं। कभी ख्याल किया, सब दिखायी पड़ते हैं, एक तुम भर दिखायी नहीं पड़ते सपने में। मित्र-शत्रु सब दिखायी पड़ते हैं, तुम भर नहीं दिखायी पड़ते।
यही तो स्थिति जीवन की है, जागने की है। जिसे तुम जागना कहते हो उसमें
और नींद में कोई अंतर नहीं मालूम होता। दोनों में एक बात समान है कि तुम्हारा तुम्हें कोई पता नहीं चलता। भीतर अंधेरा है। भीतर दीया नहीं जला। इसको बुद्ध प्रमाद कहते हैं, मूर्च्छा कहते हैं।
अपना ही पता न चले, यह भी कोई जिंदगी हुई? चले, उठे, बैठे, उसका पता ही न चला जो भीतर छिपा था। अपने से ही पहचान न हुई, यह भी कोई जिंदगी है? अपने से ही मिलना न हुआ, यह भी कोई जिंदगी है? और जो अपने को ही न पहचान पाया, और क्या पहचान पाएगा? निकटतम थे तुम अपने, उसको भी न छू पाए, और परमात्मा को छूने की आकांक्षा बनाते हो? चांद-तारों पर पहुंचना चाहते हो, अपने भीतर पहुंचना नहीं हो पाता।
स्मरण रखो, निकटतम को पहले पहुंच जाओ, तभी दूरतम की यात्रा हो सकती है। और मजा यह है कि जिसने निकट को जाना, उसने दूर को भी जान लिया, क्योंकि दूर निकट का ही फैलाव है।
उपनिषद कहते हैं, वह परमात्मा पास से भी पास, दूर से भी दूर है। क्या इसका यह अर्थ हुआ कि उसे जानने के दो ढंग हो सकते हैं--कि तुम उसे दूर की तरह जानने जाओ या पास की तरह जानने जाओ?
नहीं, दो ढंग नहीं हो सकते। जब तुम पास से ही नहीं जान पाते तो तुम दूर
से कैसे जान पाओगे? जब मैं अपने को ही नहीं छू पाता, परमात्मा को कैसे छू पाऊंगा? जब आंख अपने ही सत्य के प्रति नहीं खुलती, तो परमात्मा के विराट सत्य की तरफ कैसे खुल पाएगी?
इसलिए बुद्ध चुप रह गए, परमात्मा की बात ही नहीं की। वह बात करनी फिजूल है। सोए आदमी से, जागकर जो दिखायी पड़ता है, उसकी बात करनी फिजूल है। सोए आदमी से तो यही बात करनी उचित है, कैसे उसका सपना टूटे, कैसे उसकी नींद टूटे?
"अप्रमाद अमृत का पथ है और प्रमाद मृत्यु का।"
जो भी सोए-सोए जी रहा है वह मौत में जा रहा है। वह रास्ता मौत का है। जो जागकर जी रहा है वह अमृत में चलने लगा। वह रास्ता अमृत का है। क्योंकि तुम्हारे भीतर जागते ही तुम्हें उसका पता चलता है जो मिट ही नहीं सकता। तुम एक ऐसे घर के वासी हो जिसमें अमृत भी छिपा है, अमृत के झरने छिपे हैं, लेकिन रोशनी नहीं है। रोशनी लानी है। घर अंधेरा है। झरने अमृत के छिपे हैं, खजाने शाश्वत के छिपे हैं, लेकिन घर अंधेरा है। और तुम अंधेरे घर के वासी हो। और तुम अगर कभी आंख भी खोलते हो तो खिड़की पर खड़े होकर बाहर देखते हो।
शायद, जैसा कि राबिया की प्रसिद्ध घटना है, एक सांझ फकीर राबिया को--एक अनूठी स्त्री हुई राबिया, सूफी फकीर थी--लोगों ने घर के सामने कुछ खोजते देखा। सांझ थी और सूरज ढलता था। लोगों ने पूछा--ब.ूढी औरत को सहायता देने के लिए--कि क्या खो गया है? उसने कहा, मेरी सुई खो गयी है। तो वे भी खोजने लगे।
फिर एक आदमी को ख्याल आया कि सुई बड़ी छोटी चीज है, सूरज अब ढलता, तब ढलता, जल्दी ही अंधेरा हो जाएगा; और छोटी सी चीज है, इतना बड़ा रास्ता है; कहां गिरी यह ठीक से पता न हो, तो खोजना मुश्किल है; फिर रात करीब आती है। तो उसने पूछा कि राबिया, ठीक से बता कि सुई गिरी कहां? स्थान का पता चल जाए तो खोज भी हो जाए।
राबिया ने कहा, वह तो तुम न पूछो तो अच्छा है। क्योंकि सुई तो मेरे घर में भीतर गिरी है। वे सब रुक गए जो खोज रहे थे। उन्होंने कहा, पागल औरत! हमें सदा से शक रहा है कि तेरा दिमाग खराब है।

सांसारिक लोगों को संन्यासियों का दिमाग सदा से खराब मालूम पड़ा है।
वह उनकी आत्मरक्षा की दृष्टि है। अगर संन्यासी ठीक है, तो फिर तुम पागल हो। तो बेहतर यही है कि संन्यासी पागल है, ऐसा मानकर चलो। इससे कम से कम अपनी सुरक्षा होती है। फिर तुम्हारी भीड़ है। इसलिए तुम जो कहते हो वह भीड़ का वचन है। भीड़ के वचन झूठे हों तो भी सच मालूम होते हैं।
लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, हमें पहले से ही शक था कि तू पागल है। अब अगर सुई घर के भीतर गिरी है, तो बाहर किसलिए खोज रही है? राबिया ने कहा, भीतर अंधेरा है, और मैं गरीब हूं, दीया भी मेरे पास नहीं। बाहर खोजती हूं क्योंकि बाहर थोड़ी रोशनी है अभी सूरज की। और देर मत करो, साथ दो, खोजो, नहीं तो जल्दी सूरज भी डूब जाएगा, बाहर भी खोजना मुश्किल हो जाएगा।
उन्होंने कहा कि पागल औरत! रोशनी बाहर है यह हम समझे; लेकिन जब सुई बाहर गुमी ही न हो तो रोशनी क्या करेगी? रोशनी सुई थोड़े ही पैदा कर सकती है? तो राबिया ने कहा, तुम्हीं बताओ मैं क्या करूं? उन्होंने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है? कहीं से भी दीया ले आओ, घर में दीया ले जाओ, या सुबह तक ठहरो, सुबह जब सूरज उगेगा और घर में रोशनी आएगी तब खोज लेना। मगर खोजना तो वहीं होगा जहां खोया है।
राबिया हंसने लगी। उसने कहा कि तुम मुझे पागल समझते हो, लेकिन मैंने वही किया जो तुम कर रहे हो। आनंद तुम खोजते हो बाहर, परमात्मा को भी तुम जब खोजते हो तो बाहर--कभी मंदिर में, कभी मस्जिद में।
न हरम में है न दैर में
हम तो दोनों जगह पुकार आए
मस्जिद के सामने भी पुकारा, मंदिर के सामने भी पुकारा, कहीं पाया नहीं।
हम तो दोनों जगह पुकार आए
मगर जब आदमी खोजता है तो बाहर ही खोजता है, बिना यह पूछे कि खोया कहां है। तुमने परमात्मा को खोया कहां? कब खोया? किस जगह खोया? सुई हो या परमात्मा, कोई फर्क नहीं पड़ता।
लेकिन यही घटना घटी है। खोया भीतर है, खोजते बाहर हो। क्यों खोजते हो बाहर? क्योंकि इंद्रियां बाहर खुलती हैं, इंद्रियों की रोशनी बाहर पड़ती है। आंख बाहर खुलती है, भीतर नहीं। हाथ बाहर फैलते हैं, भीतर नहीं। कान बाहर सुनते हैं, भीतर नहीं। इसलिए आदमी बाहर खोजता है, और कभी खोज नहीं पाता।
उम्रे-दराज मांगकर लाए थे चार दिन
दो आरजू में कट गए दो इंतजार में
मांगता है, रोता है, गिड़गिड़ाता है, खोजता है, टकराता है, गिरता है, फिर उठता है। आधी जिंदगी मांगने में, आधी प्रतीक्षा में बीत जाती है। हाथ खाली के खाली रह जाते हैं। और जिसे तुम खोजते थे वह भीतर मौजूद था, जरा रोशनी लाने की बात थी। दीया जलाने की बात थी। उस दीए का नाम है अप्रमाद, होश। चलते, उठते, बैठते, कुछ भी करो--बुद्ध ने कहा--एक काम करना मत भूलोः होशपूर्वक करो। बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि चलो भी रास्ते पर, तो रास्ते को ही मत देखो, अपने को भी देखते हुए चलो कि मैं चल रहा हूं। भाषा में कहने की भीतर जरूरत नहीं है कि मैं चल रहा हूं। लेकिन यह प्रतीति बनी रहे कि मैं देख रहा हूं। और तुम बड़े हैरान होगे, एक अनूठा अनुभव होगा।
एक सुंदर स्त्री रास्ते से गुजरती है। अगर तुम्हें यह भी होश रहे कि मैं देख रहा हूं; सुंदर स्त्री वहां है, मैं यहां हूं, और मैं देख रहा हूं-- तुम अचानक हैरान होओगे--यह बोध कि तुम देख रहे हो और कामना पैदा नहीं होती! भूल जाओ कि मैं देख रहा हूं। बस सुंदर स्त्री दिखायी पड़ती है और वासना जग जाती है, कामना पैदा हो जाती है। किसी का महल दिखायी पड़ता है, मन में सपने बनने लगते हैं--ऐसा महल मेरा भी हो। लेकिन जरा सा जागो, महल भी दिखायी पड़े कोई हर्जा नहीं है, लेकिन देखने वाला भी दिखायी पड़े। वह देखने वाले को देख लेने की कला का नाम है अप्रमाद।
कृष्णमूर्ति जिसे "अवेयरनेस" कहते हैं, वह बुद्ध का शब्द है "अप्रमाद"। महावीर ने उसी को "विवेक" कहा है। गुरजिएफ ने एक शब्द प्रयोग

किया है। वह बहुत ठीक-ठीक शब्द है--"सेल्फ रिमेंबरिंग"। स्वयं का बोध। कुछ भी करो स्वबोध न खोए, स्वबोध की कड़ी भीतर लगी ही रहे। स्वबोध का सातत्य बना ही रहे।
शुरू-शुरू में बार-बार तुम पकड़ोगे और खो-खो जाएगा। क्षणभर को लगेगा कि अपना बोध है, फिर खो जाएगा। पुरानी आदत है खोने की। लेकिन अगर सातत्य बना रहा, तो जैसे बूंद-बूंद गिरकर बड़े चट्टान को भी तोड़ देती है, वैसे ही बूंद-बूंद अप्रमाद की, होश की, धीरे-धीरे तुम्हारे जन्मों-जन्मों के अंधकार की पर्त को तोड़ देगी। और पहले दिन भी जब किरण तुम्हारे भीतर उतरेगी तब तुम पाओगे, अरे! हम जिसे खोजते थे वह सदा घर में था। हम बाहर व्यर्थ ही खोजने गए थे। हमने उसे खोया ही न था। बाहर देखा, उसी में भूल गए थे।
कई बार तुम्हें ख्याल होगा, जो लोग चश्मा लगाते हैं--यहां तो काफी लोग चश्मा लगाए हुए हैं--कई बार तुम्हें ख्याल होगा, चश्मा आंख पर होता है और तुम चश्मा खोजते हो। और तुम यह भूल ही जाते हो कि चश्मे ही से चश्मे को खोज रहे हो। चश्मा लगाए हुए हो और चश्मे को खोज रहे हो। लोग कान में पेंसिल और कलम खोंस लेते हैं और इधर-उधर खोजते हैं। भूल जाते हैं।
परमात्मा खोया नहीं, सिर्फ भूल गया है, विस्मरण है। सिर्फ विस्मरण है। इससे हिम्मत रखो। क्योंकि स्मरण आना कठिन नहीं है। अगर खो ही गया होता तो खोजना मुश्किल था। कहां खोजते? इतना विराट है जगत! कहां खोजते? असीम है! कहीं से रास्ता न मिल सकता था।
परमात्मा मिल जाता है क्योंकि खोया नहीं है, केवल विस्मृत हुआ है। जैसे खीसे में ही रखे थे हीरे-जवाहरात और भूल गए। जब भी खीसे में हाथ डालोगे, पाओगे वहीं हैं। अप्रमाद का अर्थ है, खीसे में हाथ डालना। चेतना में भीतर हाथ डालना। भीतर जगाने की चेष्टा अपने आपको।
"अप्रमाद अमृत का पथ है और प्रमाद मृत्यु का।"
नींद में और मृत्यु में बड़ा सामंजस्य है। समानता है। एकस्वरता है। नींद छोटी मृत्यु है। रोज रात तुम मर जाते हो। सुबह फिर उठते हो। दिनभर में जीवन थक जाता है, रात मर जाते हो। रात तुम वही नहीं रहते जो तुम दिनभर थे। बिल्कुल भूल ही जाता है कि दिन में तुम क्या थे, कौन थे। रात जब तुम सोते हो, कभी तुमने यह ख्याल किया, विचार किया, दिन में जो तुम्हारी पत्नी थी रात पत्नी नहीं रह जाती। याद ही नहीं रहती। दिन में जो तुम्हारा बेटा था रात बेटा नहीं रह जाता। दिन में जो तुम्हारा घर था रात तुम्हारा घर नहीं रह जाता। दिन में हो सकता है तुम भिखारी हो, रात सपने में सम्राट हो जाते हो। दिन हो सकता है सम्राट थे, रात भिखारी हो जाते हो। और दिन की जरा भी याद नहीं आती नींद में।
तो यह कहना ठीक नहीं है कि तुम नींद में वही होते हो जो तुम जागने में थे। मर ही जाते हो, जागरण का रूप तो खो ही जाता है। वह जो ढांचा था, तुम्हारा व्यक्तित्व था, बिल्कुल विसर्जित हो जाता है। दिन में फिर तुम जागते हो। फिर तुम दूसरे व्यक्ति हो गए। फिर दुकान-बाजार, धन-दौलत, हिसाब-किताब, फिर वापस लौट आया।
रोज आदमी नींद में मरता है। जैसे रोज नींद में मरता है दिनभर की थकान
के बाद, ऐसे ही मृत्यु भी जीवनभर की थकान के बाद मरना है। फिर जागता है, फिर नया जन्म हो जाता है। मौत का स्वभाव नींद जैसा है।
समाधि का स्वभाव भी नींद जैसा है। पतंजलि ने कहा है कि समाधि और सुषुप्ति एक जैसी है। इसीलिए तो जब संन्यासी मरता है तो उसकी कब्र को हम समाधि कहते हैं। हर किसी की कब्र को समाधि नहीं कहते। समाधि हम तभी कहते हैं जब संन्यासी की कब्र बनाते हैं। क्यों? समाधि मृत्यु जैसी है। समाधि भी नींद जैसी है, सिर्फ एक फर्क है, छोटा--लेकिन बहुत बड़ा--समाधि जागती हुई नींद है।
इसलिए कृष्ण ने कहा है, या निशा सर्वभूतानाम तस्याम जागर्ति संयमी।
जब सब सोते हैं, जब सबकी नींद है--सर्वभूतानाम--सारे भूत सो जाते हैं। पौधे भी सो जाते हैं, पत्थर भी सो जाते हैं, सारा संसार सो जाता है। तस्याम जागर्ति संयमी। तब भी संयमी जागा रहता है। बाहर के ही भूत सो जाते हैं ऐसा नहीं, भीतर के भी तत्व सो जाते हैं--शरीर सो जाता है, शरीर के भीतर के सारे

पांचों तत्व सो जाते हैं--तस्याम जागर्ति संयमी, फिर भी भीतर चेतना जागती रहती है। सब तरफ नींद हो जाती है, लेकिन भीतर एक दीया होश का जलता ही रहता है। अडिग, अकंप। उस दीए को ही सम्हाल लेना अप्रमाद है।
और नींद में तो मुश्किल होगा सम्हालना अभी। पहले तो जिसे तुम जागना कहते हो उसमें सम्हालो। जागने में सम्हल जाए, तो संभव है कभी नींद में भी सम्हल जाए। अभी तो जागने में भी सोए हुए हो। अभी तो नींद में जागने की बात ही फिजूल है। अभी तो जागना भी नींद जैसा है। अभी तो नींद को जागने जैसा बनाना बड़ा मुश्किल है। पहले जागने को ही वास्तविक जागना बनाओ। जिसे तुम अभी जागना कहते हो वह सिर्फ आंख का खुलना है, भीतर तो नींद बनी ही रहती है। वह कहीं जाती नहीं। और तुम जरा आंख बंद करके कुर्सी पर आराम से बैठ जाओ, तुम पाओगे, सपनों का सिलसिला शुरू। आंख खुली थी, बाहर के चित्रों में उलझ गए, तो भीतर के सपने दिखायी नहीं पड़ते। आंख बंद करो, दिवास्वप्न शुरू हो जाते हैं। सपनों का तारतम्य लगा है, सिलसिला लगा है।
तुम्हारा जागरण नाममात्र को जागरण है। बुद्धों का जागरण ही जागरण है। क्योंकि जो जागरण नींद में भी न टिके, वह जागरण क्या? कहते हैं, मित्र वही है जो संकट में काम जाए। जागरण वही है जो नींद में काम आए। वह उसकी कसौटी है। नींद जिसको मिटा दे उसको जागरण कहना ही मत। वह नाममात्र का जागरण था। "अप्रमाद अमृत का पथ है और प्रमाद मृत्यु का। अप्रमादी नहीं मरते; लेकिन प्रमादी तो मृतवत ही हैं।"
अप्रमादी नहीं मरते हैं। बुद्धपुरुष कभी नहीं मरते हैं। मर नहीं सकते। मरते तो तुम भी नहीं हो, लेकिन इस सत्य का तुम्हें पता नहीं है। तुम मान लेते हो कि मर गए। तुम्हारी मान्यता ही सारी बात है। बुद्धपुरुषों में और तुममें मान्यता का भेद है। तथ्य का नहीं, सत्य का नहीं, धारणा का। तुम मान लेते हो कि मर गए। और जब तुम मान लेते हो कि मर गए, तो मर गए।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक सुबह उठा और उसने अपनी पत्नी
को कहा कि सुनो, मैं मर चुका। रात मर गया। सपना देखा था, लेकिन इतना प्रगाढ़ था सपना कि उसे भरोसा आ गया। पत्नी ने कहा, पागल हुए हो, भले-चंगे बोल रहे हो, कहीं मरों ने खबर दी कि मर गए? मर गए तो मर गए। तुम बोल रहे हो। नसरुद्दीन ने कहा, मैं कैसे मानूं? मुझे तो पक्का भरोसा हो गया है कि मैं मर गया हूं। अब एक मुसीबत खड़ी हो गयी! बहुत समझाया, लेकिन वह माने न। वह कहे मैं और तुम्हारी मानूं? जब कि मुझे पक्का अनुभव हो रहा है कि मैं मर चुका हूं।
उसे एक मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया गया। मनोवैज्ञानिक भी परेशान हुआ। ऐसा कोई केस पहले आया भी नहीं था कि जिंदा आदमी और कहे कि मैं मर गया हूं। पागल उसने बहुत देखे थे, पागल भी ऐसा नहीं कहते; वे भी मानते हैं कि जिंदा हैं। उसने बहुत समझाने की कोशिश की लेकिन वह माने न। तो उसने सोचा कि कुछ ठोस प्रमाण खोजने पड़ेंगे। तभी यह मानेगा, जिद्दी है।
तो वह उसे ले गया पोस्टमार्टम घर में--अस्पताल में--जहां मुर्दों की लाशें इकट्ठी पड़ी थीं। उसने कहा कि नसरुद्दीन, अगर तुम मर गए तो यह तुम काम करके देखो, यह छुरी लो, मुर्दों की लाश काटकर देखो। काटकर देखा। उसने पूछा कि खून निकलता है? नसरुद्दीन ने कहा, नहीं, खून नहीं निकलता। ऐसी कई लाशें दिखलायीं। रोज सात दिन तक ले गया। फिर उसने कहा, अब एक बात पक्की हो गयी है कि मरे हुए आदमी के शरीर से खून नहीं निकलता। उसने कहा, बिल्कुल पक्की हो गयी।
घर लाया, तेज धार वाला चाकू लिया, उसकी अंगुली--नसरुद्दीन की अंगुली उसने काटी, खून का फव्वारा निकला। उसने कहा, अब देखो, अब तुम मानते हो कि जिंदा हो? नसरुद्दीन ने कहा, इससे सिर्फ यही सिद्ध होता है कि अपनी वह धारणा गलत थी, मरे हुए आदमियों से भी खून निकलता है। वे मुर्दे धोखा दे गए। या मुर्दे कुछ गलत थे। या तुमने कोई चालबाजी की। लेकिन इससे सिर्फ यही सिद्ध होता है कि मुर्दों से भी खून निकलता है।
आदमी की जब एक मान्यता हो, तो वह अपनी मान्यता को सब तरफ से सहारे देता है। तुम जो मान लेते हो उसको तुम सहारा देते हो। यह तुम्हारी मान्यता है कि तुम मरणधर्मा हो। इस मान्यता को सहारा भी मिल जाता है, क्योंकि शरीर

मरणधर्मा है। तुम मरणधर्मा नहीं हो, तुम अमृतपुत्र हो। अमृतस्य पुत्रः। लेकिन शरीर मरणधर्मा है, वह बहुत करीब है। और शरीर को तुमने करीब-करीब अपना होना मान लिया है। तुम यह भूल ही गए हो कि तुम शरीर से पृथक हो, शरीर से पार हो। शरीर नहीं था तब भी थे, शरीर नहीं होगा तब भी रहोगे। लेकिन शरीर से तुम ऐसे चिपट गए हो, और शरीर से ऐसा तादात्म्य हो गया है कि शरीर मरता है तो तुम मानते हो कि शरीर नहीं, तुम ही मरे।
इस तादात्म्य को तोड़ना पड़ेगा, यह मूर्च्छा है, यह प्रमाद है। अपने को शरीर मान लेना प्रमाद है। और जिसने अपने को शरीर माना, वह मरेगा, क्योंकि शरीर मरने वाला है। फिर यह भ्रांति बनी रहेगी कि शरीर मर गया तो मैं मरा। जब तुम छोटे थे, बच्चे थे, तब तुम मानते थे मैं बच्चा हूं। शरीर बच्चा था। तुम तो बच्चे कभी भी नहीं थे, तुम तो सनातन पुरुष हो। छोटे बच्चे में भी सनातन चैतन्य है। वह उतना ही प्राचीन है जितने बुद्ध और कृष्ण। वह तभी से है। अगर कभी संसार शुरू हुआ हो तो तभी से है। और अगर कभी संसार शुरू न हुआ हो, तो वह तभी से है। फिर तुम जवान हो गए। तुम मानते हो तुम जवान हो। शरीर के साथ तुम अपने को मानते चले जाते हो। फिर तुम बूढ़े हो गए, हाथ-पैर कंपने लगे, लकड़ी टेककर चलने लगे, तुम मानते हो मैं बूढ़ा हो गया। शरीर ही हो रहा है।
यह तो ऐसे ही है जैसे नया कपड़ा पहना, और तुमने समझा कि मैं नया। और फिर कपड़ा पुराना होने लगा, जराजीर्ण होने लगा, और तुमने समझा कि मैं पुराना और जराजीर्ण हो गया।
यह तो ऐसे है कि जैसे कोई यात्री ट्रेन में यात्रा करे, पूना स्टेशन
पर गाड़ी खड़ी हो तो वह समझे कि मैं पूना। फिर बंबई गाड़ी पहुंच जाए तो वह समझे कि मैं बंबई। ये तो शरीर की यात्रा के स्टेशन हैं। कभी बीमार, कभी स्वस्थ। कभी रुग्ण, कभी रुग्ण नहीं। कभी जन्म, कभी मृत्यु। ये तो शरीर के पड़ाव हैं।
लेकिन प्रमाद गहरा है, और छोटी-छोटी बात में छिपा है। भूख लगती है, तुम कहते हो, मुझे भूख लगी। ज्ञानी कहेगा, शरीर को भूख लगी। तुम्हें क्या भूख लगेगी? तुम्हें कैसे भूख लगेगी? शरीर की जरूरत है; शरीर के लिए रोज नया पदार्थ चाहिए, ताकि शरीर अपने को सक्रिय रख सके, शक्तिवान रख सके। भूख लगती शरीर को, तुम्हें नहीं। प्यास लगती है शरीर को, तुम्हें नहीं। और जब तुम भोजन करते हो तब तुम्हारी आत्मा में थोड़े ही जाता है? जब तुम पानी पीते हो तब तुम्हारी आत्मा में थोड़े ही जाता है? शरीर से ही गुजरता है, शरीर से ही निकल जाता है। सिर में दर्द होता है तो तुम मान लेते हो कि मुझे दर्द हो रहा है। तुम दर्द से अलग हो।
मैं एक आदमी का जीवन पढ़ रहा था, एक अमेरिकन कवि का। कार का एक एक्सीडेंट हो गया और उसका हाथ पूरा पिचल गया। भयंकर पीड़ा थी उसे, अस्पताल भी बहुत दूर था। जिस राह से वे गुजर रहे थे, यात्रा को गए थे किसी जंगल की, वहां तक पहुंचने में तो समय लगेगा। उसकी पीड़ा असह्य थी। उसकी पत्नी ने कहा, सुनो! मैं एक किताब पढ़ रही हूं। वह कार में बैठी किताब पढ़ रही थी। झेन के ऊपर एक किताब थी। ध्यान के ऊपर एक किताब थी। उसने कहा कि इसमें बुद्ध का एक सूत्र दिया हुआ है। कर के देख लो, हर्ज क्या है?
बुद्ध अपने भिक्षुओं को एक सूत्र दिए थे कि जब तुम्हें पीड़ा हो, दर्द हो, चोट लगे, तो ऐसा मत मान लेना कि मुझे दर्द हो रहा है, या मुझे पीड़ा लगी है। उसी मान्यता से उपद्रव है। तुम आंख बंद कर लेना, अगर हाथ में चोट लगी या सिर में दर्द है, तो सारी चेतना को वहीं इकट्ठी कर लेना। जैसे सारी चेतना की ज्योति-किरणें इकट्ठी हो गयीं, और वहीं एक ही जगह फोकस हो गया। वहीं केंद्रित कर लेना, सिरदर्द हो रहा है तो वहीं केंद्रित कर लेना, और पूरी तरह गौर से सिरदर्द को देखना। इसी देखने में तुम अलग हो जाओगे--देखने वाला और जो दिखायी पड़ रहा है, वह अलग हो जाएगा। और जब तुम्हारा दर्द पूरी तरह दिखायी पड़ने लगे, तब सिर्फ तीन दफे कहना, दर्द... दर्द... दर्द... । भीतर ही कहना, पर बड़े सजगता से कहना, दर्द को देखते हुए कहना--दर्द! यह मत कहना कि मुझे दर्द हो रहा है, वही तो सम्मोहन है जिसमें आदमी उलझ जाता है। तुम सिर्फ इतना कहना, यह रहा दर्द... यह रहा दर्द... यह रहा दर्द... । तीन बार

दर्द-दर्द कहना और समझना कि दर्द वहां है। और बुद्ध कहते हैं कि दर्द विलीन हो जाएगा।
उस स्त्री ने कहा कि यह किताब में ऐसा लिखा हुआ है। उस आदमी ने कहा, फेंको इस किताब को बाहर। मैं मरा जा रहा हूं, तुम्हें ज्ञान की पड़ी है। यह सब बकवास है। इधर मेरा हाथ... इतना भयंकर पीड़ा हो रही है, अब यहां ध्यान करने का यह कोई अवसर है?
लेकिन कोई और तो उपाय न था। कोई दवा न थी पास, अस्पताल पहुंचते- पहुंचते घंटों लगते। पंद्रह-बीस मिनट बाद उसने कहा, अच्छा हर्ज क्या है, कोशिश कर के देख लें। कोई और उपाय भी नहीं है।
निरुपाय आदमी कभी-कभी ठीक बातें कर लेता है। जब तक उपाय होते हैं तब
तक कौन ठीक बातें करे? अगर अस्पताल पास होता तो उसने प्रयोग न किया होता। अगर ऐस्प्रो पास होती तो उसने ऐस्प्रो पर भरोसा किया होता, बुद्ध पर नहीं। आदमी की मूढ़ता का कोई हिसाब है! ऐस्प्रो पर ज्यादा भरोसा कर ले, ध्यान पर नहीं।
न कोई उपाय देखकर, मजबूरी में, असहाय अवस्था में, वह लेट गया कार में
और उसने कहा, अच्छा, मैं कर के देखता हूं। सारी चेतना तो अपने आप दौड़ी जा रही थी। जब कहीं चोट होती है तो चेतना अपने आप उस तरफ दौड़ती है, और बुद्ध ने कहा, सब इकट्ठा कर लेना, जैसे पूरा शरीर भूल ही जाए, बस उतनी ही जगह याद रह जाए जहां दर्द है। वह दर्द के करीब लाया, चेतना को दर्द के करीब लाया, दर्द ऐसा हो गया जैसे कि छुरी की धार हो। तेज हो गया, पैना हो गया, भयंकर हो गया, और भी त्वरा पकड़ ली उसने, तेजी आ गयी, एक लपट की तरह मालूम होने लगा, और तब उसने कहा, दर्द... दर्द... दर्द... । और वह चकित हुआ, उसे भरोसा न आया कि क्या हुआ! दर्द एकदम विलीन हो गया। तादात्म्य टूट गया।
इसे तुम प्रयोग करके देखना। प्यास लगे तो ध्यान रखना, तुम्हें नहीं लगी है, शरीर को लगी है। बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, जब भी कोई तुम्हें चीज ज्यादा सताने लगे तो तीन बार, ध्यान करके तीन बार कहना, प्यास... प्यास... प्यास... ! और तुम पाओगे प्यास अलग हो गयी। और जैसे ही प्यास अलग हो जाती है, उसकी पकड़ छूट जाती है। तब तुम्हें ऐसा लगता है जैसे प्यास किसी और को लगी, भूख किसी और को लगी, बूढ़ा कोई और हुआ, रोग किसी और को आया, तुम अलग हो जाते हो।
यह अलग हो जाने की कला ही अप्रमाद है। और जो जीवन के रोज-रोज छोटे-छोटे कामों में अलग होता गया, बूंद-बूंद चोट पड़ी चट्टान पर अंधेरे की, बूंद-बूंद चोट पड़ी चट्टान पर अज्ञान की, बूंद-बूंद चोट पड़ी चट्टान पर तादात्म्य की, और जो रोज-रोज प्यास लगी तब भी उसने ध्यान से अपने को अलग किया; पानी दिया, तृप्ति हुई, तो भी अपने को अलग रखा; कहा कि शरीर को प्यास थी, शरीर को तृप्ति हुई; शरीर को भूख थी, शरीर की भूख मिटी; शरीर को रोग था, शरीर का रोग गया; और हर घड़ी अपने को अलग रखा, अलग रखा, अलग रखा; अपने को बचाया और दूर रखा, अपने को सम्हाला; होश को खोने न दिया, शरीर के साथ जुड़ने न दिया; तो अंतिम घटना जो घटेगी वह यह, जब मौत आएगी तब यह जीवनभर का अनुभव तुम्हारे साथ होगा। तुम मौत को भी देख पाओगे कि मौत आती है शरीर को, मुझे नहीं।
लेकिन इसे आज से साधोगे तो ही मौत में सध पाएगा। ऐसा मत सोचना कि मरते वक्त ही साध लेंगे। जब प्यास में न सधेगा तो मौत में कैसे सधेगा? जब सिरदर्द में न सधेगा तो मौत में कैसे सधेगा? भूख में कोई मर नहीं जाता है एक दिन में। अगर आदमी भूखा रहे तीन महीने, तब मरेगा। जब एक दिन की भूख में न सधा और तुम खो गए, और एक हो गए शरीर के साथ, तो मृत्यु में कैसे सधेगा? मृत्यु में तो चेतना शरीर से पूरी तरह अलग होगी, और तुम्हारा ध्यान शरीर पर रहेगा। क्योंकि जिंदगीभर उसी का अभ्यास किया, उसी का सम्मोहन किया। तो तुम भूल ही जाओगे कि तुम नहीं मर रहे हो, तुम समझोगे कि मैं मर रहा हूं। कोई कभी मरा नहीं। कोई कभी मर नहीं सकता। इस संसार में जो है वह सदा से है, सदा रहेगा। रूपांतरण होते हैं, घर बदलते हैं, देह बदलती है, वस्त्र बदलते हैं, मृत्यु होती ही नहीं। मृत्यु असंभव है। कोई मरेगा कैसे? जो है, वह नहीं कैसे हो जाएगा? जो है, वह रहेगा; रहेगा, सदा-सदा रहेगा।

लेकिन, फिर भी लोग रोज मरते हैं। रोज तड़फते हैं। बुद्ध जब कहते हैं अप्रमादी नहीं मरते, तो तुम यह मत समझना कि वे मरते नहीं, और उनको मरघट नहीं ले जाना पड़ता। वह तो बुद्ध को भी ले जाना पड़ा। नहीं मरते, क्योंकि वे जानते हैं, वे अलग हैं। तुम्हारे लिए तो वे भी मरते हैं, स्वयं के लिए वे नहीं मरते। क्योंकि मृत्यु की घड़ी में भी वे अपने भीतर के दीए को देखते चले जाते हैं। या निशा सर्वभूतानाम तस्याम जागर्ति संयमी। अंधेरी रात में, नींद में ही नहीं मृत्यु की घनघोर अमावस में भी, तस्याम जागर्ति संयमी। फिर भी संयमी जागा रहता है, देखता रहता है, सजग रहता है।
काशी के नरेश का एक ऑपरेशन हुआ उन्नीस सौ दस में। पांच डाक्टर यूरोप
से ऑपरेशन के लिए आए। पर काशी के नरेश ने कहा कि मैं किसी तरह का मादक-द्रव्य छोड़ चुका हूं; मैं ले नहीं सकता। तो मैं किसी तरह की बेहोश करने वाली कोई दवा, कोई इंजेक्शन, वह भी नहीं ले सकता, क्योंकि मादक-द्रव्य मैंने त्याग दिए हैं। न मैं शराब पीता हूं, न सिगरेट पीता हूं, चाय भी नहीं पीता। तो इसलिए ऑपरेशन तो करें आप--अपेंडिक्स का ऑपरेशन था, बड़ा ऑपरेशन था--लेकिन मैं कुछ लूंगा नहीं बेहोशी के लिए। डाक्टर घबड़ाए, उन्होंने कहा, यह होगा कैसे? इतनी भयंकर पीड़ा होगी, और आप चीखे-चिल्लाए, उछलने-कूदने लगे तो बहुत मुश्किल हो जाएगी! आप सह न पाएंगे। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं सह पाऊंगा। बस इतनी ही मुझे आज्ञा दें कि मैं अपना गीता का पाठ करता रहूं। तो उन्होंने प्रयोग करके देखा पहले। उंगली काटी, तकलीफें दीं, सुइयां चुभायीं और उनसे कहा कि आप अपना... वे अपना गीता का पाठ करते रहे। कोई दर्द का उन्हें पता न चला। फिर ऑपरेशन भी किया गया। वह पहला ऑपरेशन था पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में, जिसमें किसी तरह के मादक-द्रव्य का कोई प्रयोग नहीं किया गया। काशी-नरेश पूरे होश में रहे। ऑपरेशन हुआ। डाक्टर तो भरोसा न कर सके। जैसे कि लाश पड़ी हो सामने, जिंदा आदमी न हो, मुर्दा आदमी हो। ऑपरेशन के बाद उन्होंने पूछा कि यह तो चमत्कार है, आपने किया क्या? उन्होंने कहा, मैंने कुछ किया नहीं। मैं सिर्फ होश सम्हाले रखा। और गीता जब मैं पढ़ता हूं, इसे जन्मभर से पढ़ रहा हूं, और जब मैं गीता पढ़ता हूं... और यही पाठ का अर्थ होता है। पाठ का अर्थ ऐसा नहीं होता कि बैठे हैं, नींद आ रही, तंद्रा आ रही, दोहराए चले जा रहे हैं; मक्खी उड़ रहीं और गीता पढ़ रहे हैं। पाठ का यह मतलब नहीं होता। पाठ का अर्थ होता है बड़ी सजगता से, कि गीता ही रह जाए, उतने ही शब्द रह जाएं, सारा संसार खो जाए... तो उन्होंने कहा, गीता के पाठ से मुझे होश बनता है, जागृति आती है। बस, उसका मैं पाठ जब तक करता रहूं तब तक मुझसे भूल-चूक नहीं होती। तो मैं उसे दोहराता रहूं तो फिर शरीर मुझसे अलग है। ना हन्यते हन्यमाने शरीरे। तब मैं जानता हूं कि शरीर को काटो, मारो, तो भी तुम मुझे नहीं मार सकते। नैनं छिंदंति शस्त्राणि। तुम छेदो शस्त्रों से, तुम मुझे नहीं छेद सकते। बस इतनी मुझे याद बनी रही, उतना काफी था; मैं शरीर नहीं हूं।
हां, अगर मैं गीता न पढ़ता होता तो भूल-चूक हो सकती थी। अभी मेरा होश इतना नहीं है कि सहारे के बिना सध जाए। पाठ का यही अर्थ होता है। पाठ का अर्थ अध्ययन नहीं है, पाठ का अर्थ गीता को दोहराना नहीं है, पाठ का बड़ा बहुमूल्य अर्थ है। पाठ का अर्थ है, गीता को मस्तिष्क से नहीं पढ़ना, गीता को बोध से पढ़ना। और गीता पढ़ते वक्त गीता जो कह रही है उसके बोध को सम्हालना। निरंतर-निरंतर अभ्यास करने से, बोध सम्हल जाता है। पर काशी-नरेश को भी डर था, अगर सहारा न लें तो बोध शायद खो जाए।
बुद्ध ने तो कहा है कि शास्त्र का भी सहारा न लेना, सिर्फ श्वास का सहारा लेना। क्योंकि शास्त्र भी जरा दूर है। श्वास भीतर जाए, देखना; श्वास बाहर जाए, देखना। श्वास की जो परिक्रमा चल रही है, श्वास की जो माला चल रही है, उसे देखना। इसको बुद्ध ने अनापानसतीयोग कहा। श्वास का भीतर आना, बाहर जाना, इसे तुम देखते रहना। श्वास भीतर जाए, तो तुम देखते हुए भीतर जाना। श्वास नासापुटों को छुए तो तुम वहां मौजूद रहना, गैर-मौजूदगी में न छुए। तुम होशपूर्वक देखना कि श्वास ने नासापुटों को छुआ। ऐसा भीतर कहने की जरूरत नहीं है, ऐसा साक्षात्कार करना। फिर श्वास भीतर चली, श्वास के रथ की यात्रा शुरू हुई, वह तुम्हारे फेफड़ों में गयी, और गहरी गयी, उसने तुम्हारे

नाभिस्थल को ऊपर उठाया, देखते जाना। उसके साथ ही साथ जाना। छाया की तरह उसका पीछा करना। फिर श्वास एक क्षण को रुकी, तुम भी रुक जाना। फिर श्वास वापस लौटने लगी, तुम भी लौट आना। श्वास बाहर चली गयी। फिर श्वास भीतर आए। इस श्वास की परिक्रमा का तुम पीछा करना होशपूर्वक।
तो बुद्ध ने कहा, यह सबसे सुगम सहारा है। पढ़ा-लिखा हो, गैर पढ़ा-लिखा हो, पंडित हो, गैर पंडित हो, सभी साध लेंगे। श्वास तो सभी को मिली है। यह प्रकृतिदत्त माला है, जो सभी को जन्म के साथ मिली है।
और श्वास की एक और खूबी है कि श्वास तुम्हारी आत्मा और शरीर का सेतु है। उससे ही शरीर और आत्मा जुड़े हैं। अगर तुम श्वास के प्रति जाग जाओ, तो तुम पाओगे शरीर बहुत पीछे छूट गया, बहुत दूर रह गया। श्वास में जागकर तुम देखोगे, तुम अलग हो, शरीर अलग है। श्वास ने ही जोड़ा है, श्वास ही तोड़ेगी। तो मृत्यु के वक्त जब श्वास छूटेगी, अगर तुमने कभी श्वास के प्रति जागकर न देखा हो, तो तुम समझोगे गए, मरे। वह केवल भ्रांति है, आत्मसम्मोहन है। वह लंबा सुझाव है, जो तुमने सदा अपने को दिया था और मान लिया है। वह एक भ्रांति है। लेकिन अगर तुम जागे रहे, और तुमने श्वास का जाना भी देखा, तुमने देखा कि श्वास बाहर चली गयी और भीतर नहीं आयी और तुम देखते रहे-- श्वास बाहर चली गयी, लौटी नहीं, और तुम देखते रहे--तब तुम कैसे मरोगे? वह जो देखता रहा श्वास का जाना भी, वह तो अभी भी है। वह तो सदा ही है।
अप्रमादी नहीं मरते, और प्रमादी तो मरे हुए ही हैं। उनको जिंदा कहना ठीक नहीं। प्रमादी को क्या जिंदा कहना! सोए हुए आदमी को क्या जिंदा कहना! अमरीका में एक लड़की की जान अटकी है। वह बेहोश पड़ी है। कई महीने हो गए हैं, और चिकित्सक कहते हैं, वह होश में कभी आएगी नहीं। बीमारी असाध्य है। लेकिन तीन-चार साल तक, और ज्यादा भी, ऑक्सीजन के सहारे और यंत्रों के सहारे वह जिंदा रह सकती है। वह जिंदा है। मगर उसको क्या जिंदा कहो! बिस्तर पर पड़ी है बेहोश, कई महीने हो गए, यंत्र टंगे हैं चारों तरफ, फेफड़ा यंत्र से चल रहा है, श्वास यंत्र से ली जा रही है, शरीर में खून डाला जाता है।
मां-बाप पीड़ित हैं। क्योंकि मां-बाप कहते हैं, यह कोई जिंदगी है? और ऐसी ही वह वर्षों तक अटकी रहेगी। इससे तो बेहतर है मर जाए। कभी-कभी मौत बेहतर होती है जिंदगी से। तो मां-बाप ने आज्ञा चाही है अदालत से, क्योंकि अदालत झंझट खड़ा करती है बीच में। बाप चाहते हैं कि जो ऑक्सीजन की नली है वह अलग कर ली जाए, ताकि लड़की मर जाए। कोई मां-बाप पर खर्चा भी नहीं पड़ रहा है, सरकार खर्च उठा रही है, लेकिन मां-बाप को देखकर पीड़ा होती है कि यह क्या सार है इसमें? और पता नहीं इसको भीतर कितनी पीड़ा हो रही है! इससे तो शरीर से छुटकारा हो जाए। लेकिन अदालत ने आज्ञा नहीं दी। क्योंकि अदालत कहती है, यह तो हत्या करना होगा श्वास की नली निकालना। यह तो उसे मारना होगा। वह अपने आप मरे तब ठीक।
अब कैसी दुविधा है! इसको जीवन कहोगे? यह जीवन तो नहीं हुआ। यह तो मरे हुए होना हुआ। मरने से भी बदतर हुआ। मरने में भी एक जीवंतता होती है। उतनी जीवंतता भी नहीं है। लेकिन जिसे तुम जीवन कह रहे हो, वह भी बस ऐसा ही है कमोबेश।
जिंदगी है या कोई तूफान है
हम तो इस जीने के हाथों मर चले
इसे जिंदगी क्या कहो जिसके हाथों मौत ही आती है, और कुछ भी नहीं आता।
फल से वृक्ष पहचाने जाते हैं। और अगर तुम्हारे जीवन में मृत्यु का ही फल लगता है अंत में, तो वृक्ष पहचान लिया गया, यह कोई जीवन न था। जीसस ने कहा है, जिस जीवन में महाजीवन के फल लगें वही जीवन है। इस जीवन में तो मृत्यु के फल लगते हैं।
"पंडितजन अप्रमाद के विषय में यह अच्छी तरह जानकर आर्यों के, बुद्धों
के उचित आचरण में निरत रहकर अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।"
बुद्ध के समय तक पंडित शब्द खराब नहीं हुआ था। पंडित का अर्थ होता है शाब्दिक--प्रज्ञावान। जो प्रज्ञा को उपलब्ध हो गया है। बुद्ध के समय तक पंडित शब्द समादृत था। आज नहीं है। आज पंडित शब्द एक गंदा शब्द है। उसमें

रोग लग गया। अब पंडित हम उसको कहते हैं जिसको शास्त्र का ज्ञान है। बुद्ध के समय में पंडित उसे कहते थे जिसे स्वयं का ज्ञान है।
"पंडितजन अप्रमाद के विषय में यह अच्छी तरह जानकर आर्यों के, बुद्धों
के उचित आचरण में निरत रहकर अप्रमाद में प्रमुदित होते हैं।"
वे होश में जागकर आनंदित होते हैं। और कोई आनंद है भी नहीं। तंद्रा है दुख, निद्रा है नर्क, लेकिन हमारी आंखें नहीं खुलतीं।
हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन
मैं उनकी राह में आंखें बिछाके देख तो लूं
हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन
आशाएं कभी पूरी नहीं होतीं। कोई वादा वफा नहीं होता। भरोसे दिए जाते हैं और टूट जाते हैं। लेकिन फिर भी आदमी का बेहोश मन है।
मैं उनकी राह में आंखें बिछाके देख तो लूं
लेकिन एक बार और सही, फिर एक बार और सही। अब तक नहीं हुआ है, कौन जाने
कल हो जाए, एक बार और सही। आशा मरती नहीं। आशा हारती है, पराजित होती है, हताश होती है, मरती नहीं। आशा यही कहे चली जाती है, अब तक नहीं हुआ है, ठीक, लेकिन कौन जाने कल हो जाए।
हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन
मैं उनकी राह में आंखें बिछाके देख तो लूं
ऐसे ही आंखें बिछा-बिछाकर तुम अपने को गंवा देते हो। आखिर में पाते हो कभी कोई वादा वफा नहीं होता। वासना आश्वासन बहुत देती है, पूरा कोई आश्वासन कभी नहीं होता। आश्वासन देने में वासना बड़ी कुशल है।
मैंने एक बड़ी पुरानी कहानी सुनी है, कि एक आदमी ने बड़ी भक्ति की परमात्मा की। परमात्मा प्रसन्न हुआ, और उस आदमी से पूछा, क्या चाहता है? उसने कहा, आप मुझे कोई ऐसी चीज दे दें कि उससे मैं जो भी मांगूं, वह मेरी मांग पूरी हो जाए। तो परमात्मा ने उसे एक शंख दिया, और कहा कि इस शंख को तू जब भी बजाएगा और इससे जो भी तू कहेगा वह पूरा हो जाएगा। तू कहेगा लाख रुपए चाहिए, शंख बजकर पूरा भी न हो पाएगा, ध्वनि विलीन भी न हो पाएगी, लाख रुपए मौजूद हो जाएंगे। वह आदमी तो बड़ा प्रसन्न हुआ। अब तो कोई बात ही न रही। जो भी मांगता, मिल जाता।
उस घर में एक महात्मा एक बार मेहमान हुए। महात्मा ने यह शंख देखा। महात्मा ने कहा, यह कुछ भी नहीं है, मेरे पास महाशंख है। उस साधारण गृहस्थ आदमी ने कहा, महाशंख! महाशंख की क्या खूबी है? तो महात्मा ने कहा, महाशंख की खूबी यह है कि मांगो लाख, देता है दो लाख। यह तुम्हारा तो एक ही लाख देता है न? मेरा महाशंख है, उसको मांगो दो लाख, वह कह दे चार लाख। गृहस्थ को लोभ बढ़ा। उसने कहा, अब आप तो महात्माजन हैं, आप तो सब छोड़ ही चुके, शंख आप ले लो, महाशंख मुझे दे दो। महात्मा ने कहा, खुशी से, हम तो त्यागी हैं, रख लो। महाशंख महात्मा छोड़ गए, शंख ले गए। और उसी रात वह विदा भी हो गए। सुबह-- रातभर सो न सका गृहस्थ--सुबह होते ही स्नान-ध्यान करके पूजा की। महाशंख फूंका। कहा कि लाख रुपए इसी वक्त चाहिए। महाशंख ने कहा, लाख! अरे, दो लाख लो। लेकिन कुछ आया-करा नहीं। उसने कहा कि भाई क्या हुआ दो लाख का? महाशंख ने कहा, दो लाख! अरे, चार लाख लो। मगर कुछ आया-गया नहीं। उसने पूछा, कुछ दोगे भी? उसने कहा, तुम जो भी मांगोगे उससे दुगुना दूंगा, मगर दूंगा कभी नहीं। तुम दस लाख मांगो, मैं बीस लाख दूंगा। यही महाशंख है। इसलिए महाशंख जब किसी को तुम कहते हो उसका मतलब यही होता है--किसी काम के नहीं। महाशंख! वायदे बहुत, आश्वासन बहुत!
यह जिंदगी एक महाशंख है। तुम इससे कुछ भी मांगो, जिंदगी आशा बंधाती है--अरे! इतने में क्या होगा? हम दुगुना देने को तैयार हैं। और तुम आशा किए चले जाते हो। जिसने आशा न छोड़ी वह धार्मिक नहीं हो पाता। जिसने आशा की यह व्यर्थता न देखी, जिसने आशा का यह महाशंखपन न पहचाना, वह धार्मिक नहीं हो पाता।
"वे ध्यान का सतत अभ्यास करने वाले और सदा दृढ़ पराक्रम करने वाले धीर पुरुष अनुत्तर योगक्षेम रूप निर्वाण को प्राप्त होते हैं।"

अप्रमाद यानी ध्यान। बुद्ध ने कहा है कि ऐसा अलग बैठकर घड़ीभर ध्यान
कर लेना काफी नहीं है। अच्छा है, न करने से बेहतर है, काफी नहीं है। ध्यान का सातत्य होना चाहिए। जैसे श्वास चलती है--जागो, सोओ, उठो, बैठो--ऐसे ही ध्यान भी चलना चाहिए। ऐसा न हो कि कभी ध्यान कर लिया, फिर भूल गए। क्योंकि अगर घड़ीभर ध्यान किया और फिर तेईस घंटे ध्यान न किया तो घड़ीभर में तुम जो सफाई करोगे, तेईस घंटे में फिर कचरा लग जाएगा। यह तुम रोज साफ करोगे, रोज गंदा हो जाएगा। ध्यान तो जीवन की शैली बन जानी चाहिए।
"वे ध्यान का सतत अभ्यास करने वाले और सदा दृढ़ पराक्रम करने वाले धीर पुरुष अनुत्तर योगक्षेम रूप निर्वाण को प्राप्त होते हैं।"
वे उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां अमृत है। वे उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां अहंकार का दीया बुझ जाता है और जहां जीवन का दीया जलता है। वे उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां शरीर आवश्यक नहीं रह जाता, आत्मा पर्याप्त होती है। वे उस जगह पहुंच जाते हैं, जहां सब सीमाएं गिर जाती हैं और असीम उपलब्ध हो जाता है। जैसे बूंद सागर में खो जाए, ऐसे वे सागर में खो जाते हैं। लेकिन यह खोना नहीं है, यह पाना है। क्योंकि वे सागर हो जाते हैं। बूंद कुछ खोती नहीं, सब कुछ पा लेती है।
"जो उत्थानशील, स्मृतिवान, शुचि कर्म वाला तथा विचार कर काम करने वाला
है, उस संयत, धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी पुरुष का यश बढ़ता है।" बुद्ध कहते हैं, यश ही चाहो तो ध्यान का यश चाहना, धन का नहीं। यश ही चाहो तो ज्ञान का यश चाहना, पदार्थ का नहीं। यश ही चाहो तो अंतर्ज्योति का यश चाहना। बाहर कितनी ही रोशनी कर लो और भीतर अंधेरा रहे; और लोग तुम्हारी कितनी ही प्रशंसा करें तुम खुद अपने भीतर आनंद से न भर पाए, यशस्वी न हुए, उस यश का क्या मूल्य है? किसको धोखा देते हो? यह तो अपने ही हाथ अपनी फांसी हो जाएगी। यह तो आत्मघात है। यश एक ही है, बुद्ध कहते हैं, वह ध्यान का है। फिर कोई पहचाने, न पहचाने, उससे दूसरे का कोई लेना-देना नहीं है।
दो तरह के यश हैं। एक तो जो दूसरे तुम्हें देते हैं। और एक, जिससे दूसरे का कोई प्रयोजन नहीं, तुम अपनी अंतरात्मा में जिसे जन्माते हो। एक तो धन का यश है, पद का यश है, राजनीति है, संसार का फैलाव है, वहां का यश है। उस यश को बहुत मूल्य मत देना, क्योंकि मौत उस सब को छीन लेगी। कोई याद रखता है किसी को? इधर मरे नहीं कि उधर लोग अर्थी तैयार करने लगते हैं। घर के लोग रोने-धोने में लगे ही होते हैं, तो पास-पड़ोसी आ जाते हैं। वे अर्थी तैयार करने लगते हैं। जल्दी पड़ती है, विदा करो। भुलाओ जल्दी। मरे नहीं कि लोग भुलाने को तत्पर हो जाते हैं। मरघट ले जाने को उत्सुक हो जाते हैं। चार दिन बाद कहानी भी नहीं रह जाती। कौन याद करता है? किसको पड़ी है? पानी पर खींची गयी लकीर है यह जीवन। खिंच भी नहीं पाती और मिट जाती है।
एक और भी यश है। वह यश किसी दूसरे से नहीं मिलता। वह आत्मप्रतिष्ठा से मिलता है। वह स्वयं में केंद्रित होने से मिलता है। वह स्वयं के ज्ञान से मिलता है। वह ध्यान का यश है।
"मेधावी पुरुष को उत्थान, अप्रमाद, संयम और दम के द्वारा ऐसा द्वीप बना लेना चाहिए जिसे बाढ़ न डुबा सके।"
बाढ़ यानी मौत। तुमने जो यश बनाया है वह डूब जाएगा सब। वह कागज की नाव है। घर की हौज में चलाते हो एक बात, जीवन के सागर में न चलेगी। कागज की नाव पर धोखे में मत पड़ना। दूसरे के विचार और दूसरे के मंतव्य और दूसरे के द्वारा मिली प्रशंसा कागज की नाव है। ताश का बनाया महल है। जरा सा हवा का झोंका, समाप्त हो जाएगा।
बुद्ध कहते हैं, "मेधावी पुरुष को उत्थान... ।"
उत्थान एक प्रक्रिया है जिसमें तुम जीवन-चेतना को ऊपर की तरफ उठाते हो। साधारणतः आदमी की चेतना नीचे की तरफ बहती है, कामवासना की तरफ बहती है। कामवासना का केंद्र सबसे नीचा केंद्र है आदमी के जीवन में। वहां से चेतना नीचे की तरफ जाती है। उत्थान एक प्रक्रिया है बुद्ध-योग की, जिसमें तुम चेतना को ऊपर की तरफ उठाते हो। जब भी तुम पाते हो चेतना नीचे की तरफ जा रही है, तब तुम उसे ऊपर खींचते हो। तुम उसे सहस्रार की तरफ ले जाते हो। तुम

आंख बंद कर लेते हो, और सिर के ऊपरी भाग में तुम सारी जीवन-ऊर्जा को खींचते हो।
इसका तुम प्रयोग करके देखना। शीर्षासन इसीलिए शुरू हुआ कि उससे सहारा मिल जाता है। क्योंकि अगर तुम सिर के बल खड़े हो जाओ तो ऊर्जा आसानी से सिर की तरफ बहनी शुरू हो जाती है। ऊर्जा वैसे ही है जैसे जल नीचे की तरफ बहता है। शीर्षासन का भी यही अर्थ है कि जीवन-ऊर्जा को तुम मस्तिष्क की तरफ लाओ। कामकेंद्र सबसे निम्न है, और सहस्रार सबसे ऊपर। और जो व्यक्ति सहस्रार में जीवन को ले आता है, जो वहां से जीने लगता है, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं।
साधारणतया लोगों का जब प्राण निकलता है तो कामकेंद्र से निकलता है। जननेंद्रिय से निकलता है। सिर्फ योगियों का, समाधिस्थ पुरुषों का प्राण सहस्रार से निकलता है। तुम जहां हो वहीं से तो निकलोगे। तुम्हारा मन जहां- जहां घूमता था, जहां-जहां भटकता था, वहीं से तो मरेगा। और जो कामकेंद्र से मरता है वह फिर जन्म ले लेता है। क्योंकि कामवासना और जन्म की आकांक्षा है। जो सहस्रार से विदा होता है फिर उसका कोई जन्म नहीं। सहस्रार से तुम परमात्मा में लीन होते हो, और कामकेंद्र से तुम प्रकृति में लीन होते हो। कामकेंद्र प्रकृति से जोड़ता है, सहस्रार परमात्मा से।
"उत्थानशील, अप्रमाद से भरा, संयम और दम के द्वारा ऐसा द्वीप बना लेना चाहिए जिसे बाढ़ न डुबा सके।"
जिसे मौत न डुबा सके। ऐसा द्वीप बन जाता है। सहस्रार की ही चर्चा है। वहां तुम्हारी चेतना इकट्ठी होती चली जाती है। धीरे-धीरे शरीर से तुम अलग हो जाते हो। धीरे-धीरे चैतन्य ही तुम्हारी एकमात्र भावदशा रह जाती है, होश प्रगाढ़ हो जाता है। संगृहीभूत हो जाता है। सघन हो जाता है। तुम तब नीचे नहीं भटकते। बुद्ध ने इसको कहा है मेघ-समाधि। जैसे कि बादल ऊपर डोलता है। बरस जाए तो जमीन पर धाराएं बहती हैं। अन्यथा जल आकाश में भटकता है, ऊपर उठ जाता है, उत्थान हो जाता है।
जब कोई व्यक्ति अपनी जीवन-चेतना को शरीर से निरंतर अलग करता रहता है,
तो धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क में मेघ-समाधि का जन्म होता है। उसकी सारी चेतना एक मेघ की भांति उसके मस्तिष्क में समाहित हो जाती है। सारा शरीर नीचे पड़ा रह जाता है। वह आकाश में घूमते एक सफेद बादल की तरह हो जाता है। और जब प्राण वहां से निकलते हैं तो मृत्यु तुम्हें छू भी नहीं पाती। वहां से अमृत का द्वार है।
लेकिन तुम उस द्वार पर खड़े हो जहां सिर्फ आशाओं के आश्वासन हैं। तुम महाशंख के सामने प्रार्थनाएं कर रहे हो।
कोई आया न आएगा लेकिन
क्या करें गर न इंतजार करें
न कोई कभी आया वहां उस द्वार पर, न कोई कभी आएगा, लेकिन, क्या करें गर न इंतजार करें! आदमी कहता है, क्या करें? क्योंकि तुम्हें एक ही द्वार का पता है, वहीं तुम होना जानते हो। उत्थान करो चेतना का, जागो, खींचो अपने को ऊपर की तरफ; दृढ़ता, पराक्रम का, संयम का एक द्वीप बनाओ।
"दुर्बुद्धि लोग प्रमाद में लगते हैं, और बुद्धिमान पुरुष श्रेष्ठ धन
की तरह अप्रमाद की रक्षा करते हैं।"
लेकिन यह तभी संभव है जब तुम जिंदगी की असलियत को पहचान लो। इस जिंदगी
की असलियत को पहचानते ही तुम्हारे कदम दूसरी जिंदगी की तरफ उठने शुरू हो जाते हैं।
"दुर्बुद्धि, मूढ़ लोग प्रमाद में लगते हैं।"
इससे बड़ी मूढ़ता और क्या हो सकती है कि जिस द्वार पर कभी कोई नहीं आया, वहीं तुम प्रतीक्षा किए बैठे हो। कब तक बैठे रहोगे? कितने जन्मों से तुम बैठे रहे हो इसी कामवासना के द्वार पर। कब तक बैठे रहोगे? बहुत देर हो गयी। ऐसे ही बहुत देर हो गयी। अब जाग जाना चाहिए। कितनी बार मर चुके हो, फिर भी ख्याल न आया कि जिस वृक्ष में हर बार मृत्यु का फल लगता है वह वृक्ष बीज से ही गलत है। जो जागे, जिन्होंने जरा गौर से जिंदगी को देखा, उन्होंने क्या पाया? उन्होंने कुछ और ही बात पायी!

मैंने पूछा जो जिंदगी क्या है
हाथ से गिर के जाम टूट गया
जिन्होंने भी पूछा, जिन्होंने भी जरा होश सम्हाला, जरा जिंदगी को गौर
से देखा--हाथ से गिर के जाम टूट गया। बेहोशी में ही जिंदगी का जाम सम्हला है। होश आते ही टूट जाता है, टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। पर हो ही जाए तो अच्छा। तुम जिसे जिंदगी कहते हो वह टूट ही जाए तो अच्छा। क्योंकि तुम और किसी तरह जागोगे नहीं। तुम्हारा सपना किसी तरह बिखर ही जाए तो अच्छा।
पर तुम अपने अनुभव को झुठलाए चले जाते हो। आदमी अनुभव से सीखता ही नहीं। तुम अपने सारे अनुभव को भूलते चले जाते हो। कल भी तुमने क्रोध किया, परसों भी क्रोध किया, क्रोध से कुछ पाया? कुछ भी नहीं पाया। तुम भलीभांति जानते हो। किसी बुद्धपुरुष की जरूरत नहीं है तुम्हें यह समझाने को। लेकिन आज भी तुम क्रोध करोगे, और कल भी तुम क्रोध करोगे। क्या तुम अनुभव से कभी कुछ सीखते ही नहीं? क्या अनुभव का तुम कभी कोई इत्र नहीं निचोड़ते? क्या अनुभव आते हैं और चले जाते हैं और तुम चिकने घड़े की तरह रह जाते हो? तुमने कल भी वासना की थी, परसों भी वासना की थी, कौन से फूल खिले? कौन से वाद्य बजे? कौन सा उत्सव हुआ? हर बार हारे, हर बार थके, हर बार विषाद ने मन को घेरा, हर बार पीड़ा अनुभव की, संताप अनुभव किया, फिर-फिर भूल गए। ऐसा लगता है कि तुमने अपने को धोखा देने की कसम खा रखी है।
तुम कहां वस्ल कहां वस्ल के अरमान कहां
दिल के बहलाने को एक बात बना रक्खी है
तुम्हें भलीभांति पता है कि दिल को बहला रहे हो। लेकिन इस दिल का बहलाना बड़ा महंगा सौदा है। जो मिल सकता था वह तुम गंवा रहे हो, और जो मिल नहीं सकता उस द्वार पर हाथ जोड़े खड़े हो।
जागो। थोड़े से भी जागोगे, एक किरण काफी है अंधेरे को मिटाने को। मिट्टी का छोटा सा दीया काफी है, कोई सूरज थोड़े ही चाहिए! लेकिन जिस घर में पहली किरण आ गयी, उस घर में सूरज का आगमन शुरू हो गया। और जिस घर में मिट्टी का दीया जल गया, देर नहीं है, जल्दी ही हजार-हजार सूरज भी जलेंगे। थोड़ी सी किरण भी; जरा सा बोध भी; पर बैठे मत रहो, कोई और इस काम को तुम्हारे लिए न कर सकेगा। तुम्हीं को करना होगा। इसलिए प्रतीक्षा मत करो कि कोई आएगा और आशीर्वाद दे देगा, और किसी के आशीर्वाद से हो जाएगा। यह आशीर्वाद तुम्हें स्वयं को ही अपने को देना होगा।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, पराक्रमी। यही एक पराक्रम है। उत्थानरत, सतत ध्यान में लगा, अप्रमत्त, ऐसा जिसका जीवन है वह जीवन ही धार्मिक जीवन है। मंदिर जाने से कुछ न होगा, मस्जिद जाने से कुछ न होगा, परमात्मा तुम्हारे भीतर है। कहीं और खोजोगे, व्यर्थ ही समय जाएगा। और सब जगह तुम खोज भी चुके हो। कितनी पृथ्वियों पर तुम भटके हो! कितने लोक-लोकांतर में! कितनी योनियों में! कितनी जीवन-स्थितियों में! अब एक काम और कर लो कि अपने भीतर खोज लो। जिसने उसे वहां खोजा, वह कभी खाली हाथ नहीं आया। और जिन्होंने कहीं और खोजा, उनके हाथ कभी भरे नहीं।
उम्रे-दराज मांगकर लाए थे चार दिन
दो आरजू में कट गए दो इंतजार में
जो थोड़ा-बहुत समय बचा हो, उसे अब आरजू में और इंतजार में मत लगाओ। अब उसे भीतर के होश को जगाने में, भीतर की चेतना को उठाने में, भीतर के परमात्मा को पुकारने में लगाओ। और पुकारते ही वह उपलब्ध हो जाता है, क्योंकि केवल विस्मृति हुई है, उसे कभी खोया तो नहीं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
आठवां प्रवचन

प्रेम है महामृत्यु

पहला प्रश्नः दुनिया के ज्यादातर धर्मगुरुओं ने अपने स्त्री-पुरुष संन्यासियों को हो सके उतनी दूरी रखने के नियम दिए; पर आप हमेशा दोनों के प्रेम पर ही जोर देते हैं। क्या आप प्रेम का कुछ विधायक उपयोग करना चाहते हैं? या उसकी निरर्थकता का हमें अनुभव कराना चाहते हैं?

प्रेम को समझना जरूरी है।
जीवन की ऊर्जा या तो प्रेम बनती है, या भय बन जाती है। दुनिया के धर्मगुरुओं ने आदमी को भय के माध्यम से परमात्मा की तरफ लाने की चेष्टा की है। पर भय से भी कहीं कोई आना हुआ है? भय से भी कहीं कोई संबंध बनता है? भय से घृणा हो सकती है, भय से प्रतिरोध हो सकता है; लेकिन भय से मुक्ति नहीं हो सकती। भय तो जहर है, फिर परमात्मा का ही क्यों न हो।
और इसीलिए दुनिया में धर्मगुरु तो बहुत हुए, लेकिन धर्म नहीं आ पाया। इसका कारण यही नहीं है कि लोग धार्मिक नहीं होना चाहते। धर्मगुरुओं ने जो मार्ग बताया, वह मार्ग ही धार्मिक होने का नहीं है। आश्चर्य है कि इक्के- दुक्के लोग धार्मिक हो गए; कैसे धर्मगुरुओं से बच गए, यह आश्चर्य है! कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट धर्मगुरुओं से बचकर भी धार्मिक हो गया। अन्यथा धर्मगुरुओं के माध्यम से सारी दुनिया अधार्मिक बनी रही है।
भय अधर्म है। और धर्मगुरु ने सिखाया कि इस संसार से घृणा करो, और परमात्मा से भय करो। मेरे देखे दोनों बातें ही खतरनाक हैं। दोनों ही तुम्हारे जीवन को विकृत कर देंगी। मैं तुमसे कहता हूं, इस संसार से भी प्रेम करो, और उस परमात्मा से भी प्रेम करो। और मेरे कहने के पीछे कारण हैं। क्योंकि जो इस संसार को प्रेम न कर सकेगा, वह इस संसार के बनाने वाले को भी प्रेम न कर सकेगा। जिसने इस संसार को इनकार किया, उसने इस संसार के पीछे छिपे हाथों को भी इनकार कर दिया। तुम यह न कह सकोगे कि हे परमात्मा, हम तुझे तो प्रेम करते हैं, लेकिन तेरी बनायी दुनिया को घृणा करते हैं। यह क्या ढंग हुआ! क्या तुम यह कह सकोगे किसी कवि से कि तेरी कविताओं को तो हम नफरत करते हैं और तुझे प्रेम करते हैं? किसी चित्रकार से कह सकोगे कि तेरे चित्रों को तो हम मिटा डालना चाहते हैं, तेरी हम पूजा करना चाहते हैं? सृष्टि का प्रेम ही तो स्रष्टा के प्रेम में रूपांतरित होगा। और दृश्य के साथ जो प्रेम है वही तो अदृश्य में ले जाएगा।
प्रेम सीढ़ी है। सीढ़ी पर रुकना मत। सीढ़ी बड़ी दूरगामी है। तुमने धन का प्रेम जाना है, धर्म का प्रेम भी जानो। तुमने शरीर को प्रेम किया है; और थोड़े गहरे, और थोड़े गहरे उतरो--और तुम पाओगे कि शरीर में ही छिपी हुई आत्मा की झलकें मिलने लगीं। तुमने व्यक्तियों को प्रेम किया है; थोड़ा और गहरे जाओ, और व्यक्तियों में छिपे हुए तुम समष्टि को पाओगे। तुमने अभी रूप को पहचाना है; अरूप भी वहीं छिपा है, पास ही खड़ा है, ज्यादा दूर नहीं है। रूप के भीतर ही छिपा है। रूप अरूप का ही एक ढंग है। आकार निराकार की ही एक तरंग है। लहर सागर ही है। लहर में सागर ही लहराया है।
लहर को सागर से भिन्न मत मान लेना। संसार को परमात्मा से भिन्न मत मान लेना। जैसे नर्तक को नृत्य से अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही स्रष्टा को सृष्टि से अलग नहीं किया जा सकता।
धर्मगुरुओं ने तुम्हें भय सिखाया, क्योंकि भय के आधार पर ही तुम्हारा शोषण हो सकता है। धर्मगुरुओं ने तुम्हें संसार की घृणा सिखायी, क्योंकि उस घृणा में डालकर ही वे तुम्हें बेचैनी में डाल सकते हैं। वह घृणा पूरी तो नहीं हो पाएगी, तुम अपराध से भर जाओगे। क्योंकि जो अस्वाभाविक है, वह किया नहीं जा सकता। और जब भी तुम अस्वाभाविक को करने की चेष्टा करोगे, तभी तुम पाओगे तुम्हारे भीतर अपराध-भाव पैदा होता है। नहीं होता, तो अपराध-भाव पैदा होता है--न मालूम कितने जन्मों के पापों के कारण, दुष्कर्मों के कारण, जो होना चाहिए वह नहीं हो रहा है।

मैं तुमसे सहज होने को कहता हूं। मैं तुमसे स्वाभाविक होने को कहता हूं। मैं तुमसे सर्व-स्वीकार को कहता हूं।
इसलिए प्रेम के विरोध में नहीं हूं मैं। प्रेम को उसकी पूरी गहराई में जानने के पक्ष में हूं। यद्यपि तुम जिसे प्रेम कहते हो, वह प्रेम भी नहीं है। तुम जिसे प्रेम कहते हो वह कैसे प्रेम होगा? अभी तुम ही नहीं हो, अभी तो प्रेम करने वाला ही मौजूद नहीं है--तुम जो करोगे वह कैसे वास्तविक होगा? तुम ही झूठ हो, तो तुम्हारा प्रेम तो झूठ होने ही वाला है। तुम ही घृणा से भरे हो, तो तुमसे प्रेम कैसे निकल आएगा? तुम्हारे भीतर हिंसा ही हिंसा है, क्रोध ही क्रोध है, ईर्ष्या है, द्वेष है--तुमसे प्रेम कैसे निकल आएगा? प्रेम को तुमसे ही निकलना है, तुम्हारे भीतर होना चाहिए।
इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम जिसे तुम कहते हो वह प्रेम नहीं है। लेकिन उस प्रेम के ही सूत्र को पकड़कर अगर तुम धीरे-धीरे प्रयोग करोगे, तो जो आज पतले महीन धागे की तरह हाथ में है, कल वही बड़ी धारा बन जाएगा।
एक बड़ी प्राचीन कथा है। एक सम्राट अपने वजीर पर नाराज हो गया। उसने उसे एक मीनार पर बंद करवा दिया। वहां से भागने का कोई उपाय न था। अगर वह कूदे भी तो प्राण निकल जाएं। बड़ी ऊंची मीनार थी। उसकी पत्नी बड़ी चिंतित थी, कैसे उसे बचाया जाए? वह एक फकीर के पास गयी। फकीर ने कहा कि जिस तरह हम बचे, उसी तरह वह भी बच सकता है। पत्नी ने पूछा कि आप भी कभी किसी मीनार पर कैद थे? उसने कहा कि मीनार पर तो नहीं, लेकिन कैद थे। और हम जिस तरह बचे, वही रास्ता उसके काम भी आ जाएगा। तुम ऐसा करो... ।
उस फकीर ने अपने बगीचे में जाकर एक छोटा सा कीड़ा उसे पकड़कर दे दिया। कीड़े की मूंछों पर शहद लगा दी और कीड़े की पूंछ में एक पतला महीन रेशम का धागा बांध दिया।
पत्नी ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? इससे क्या होगा?
उसने कहा, तुम फिकर मत करो। ऐसे ही हम बचे। इसे तुम छोड़ दो मीनार पर।
यह ऊपर की तरफ बढ़ना शुरू हो जाएगा। क्योंकि वह जो मधु की गंध आ रही है-- मूंछों पर लगी मधु की गंध--वह उसकी तलाश में जाएगा। और गंध आगे बढ़ती जाएगी जैसे-जैसे कीड़ा आगे बढ़ेगा, तलाश उसे करनी ही पड़ेगी। और उसके पीछे बंधा हुआ धागा तेरे पति तक पहुंच जाएगा।
पर पत्नी ने कहा, इस पतले धागे से क्या होगा?
फकीर ने कहा, घबड़ा मत। पतला धागा जब ऊपर पहुंच जाए, तो पतले धागे में थोड़ा मजबूत धागा बांधना। फिर मजबूत धागे में थोड़ी रस्सी बांधना। फिर रस्सी में मोटी रस्सी बांधना। उस मोटी रस्सी से तेरा पति उतर आएगा।
उस छोटे से कीड़े ने पति को मुक्ति दिलवा दी। एक बड़ा महीन धागा! लेकिन
उस धागे के सहारे और मोटे धागे पकड़ में आते चले गए।
तुम्हारा प्रेम अभी बड़ा महीन धागा है, बहुत कचरे-कूड़े से भरा है। इसलिए जब धर्मगुरु तुम्हें समझाते हैं कि तुम्हारा प्रेम पाप है, तो तुम्हें भी समझ में आ जाता है; क्योंकि वह कूड़ा-कर्कट तो बहुत है, हीरा तो कहीं दब गया है। इसलिए तो धर्मगुरु प्रभावी हो जाते हैं, क्योंकि तुम्हें भी उनकी बात तर्कयुक्त लगती है कि तुम्हारे प्रेम ने सिवाय आसक्ति के, राग के, दुख के, पीड़ा के, और क्या दिया! तुम्हारे प्रेम ने तुम्हारे जीवन को कारागृह के अतिरिक्त और क्या दिया! तुम्हें भी समझ में आ जाती है बात कि यह प्रेम ही बंधन है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि जिस कूड़ा-कर्कट को तुम प्रेम समझ रहे हो, उसी को धर्मगुरु भी प्रेम कहकर निंदा कर रहा है। लेकिन तुम्हारे कूड़ा- कर्कट में एक पतला सा धागा भी पड़ा है, जिसे शायद तुम भी भूल गए हो। उस धागे को मुक्त कर लेना है। क्योंकि उसी धागे के माध्यम से तुम कारागृह के बाहर जा सकोगे।
ध्यान रखना, इस सत्य को बहुत ख्याल में रख लेना कि जो बांधता है उसी से मुक्ति भी हो सकती है। जंजीर बांधती है तो जंजीर से ही मुक्ति होगी। कांटा गड़ जाता है, पीड़ा देता है, तो दूसरे कांटे से उस कांटे को निकाल लेना पड़ता है। जिस रास्ते से तुम मेरे पास तक आए हो, उसी रास्ते से वापस अपने घर जाओगे, सिर्फ रुख बदल जाएगा, दिशा बदल जाएगी। आते वक्त मेरी तरफ चेहरा था,

जाते वक्त मेरी तरफ पीठ होगी। रास्ता वही होगा, तुम वही होओगे। प्रेम के ही माध्यम से तुम संसार तक आए हो, प्रेम के ही माध्यम से परमात्मा तक पहुंचोगे; रुख बदल जाएगा, दिशा बदल जाएगी।
सितारों के आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
जिसे तुमने प्रेम समझा, वह अंत नहीं है।
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
अभी प्रेम की और भी मंजिलें हैं, और प्रेम के अभी और भी इम्तिहान हैं, परीक्षाएं हैं। और प्रेम की आखिरी परीक्षा परमात्मा है।
ध्यान रखना, जो तुम्हें फैलाए वही तुम्हें परमात्मा तक ले जाएगा। प्रेम फैलाता है, भय सिकुड़ाता है।
संसार से डरो मत, परमात्मा से भरो। जितने ज्यादा तुम परमात्मा से भर जाओगे, तुम पाओगे, तुम संसार से मुक्त हो गए। संसार तुम्हें पकड़े हुए मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम्हारे हाथ में कुछ और नहीं है। आदमी के पास कुछ न हो तो कंकड़-पत्थर भी इकट्ठे कर लेता है। हीरे की खदान न हो तो आदमी पत्थरों को ही इकट्ठे करता चला जाता है। मैं तुमसे कहता हूं, हीरे की खदान पास ही है। मैं तुमसे कंकड़-पत्थर छोड़ने को नहीं कहता। मैं तुमसे त्याग की बात ही नहीं करता। जीवन महाभोग है। जीवन उत्सव है।
मैं तुमसे यही कहता हूं कि जब विराट तुम्हारे भीतर उतरेगा, क्षुद्र अपने आप बह जाएगा। तुम विराट का भरोसा करो, क्षुद्र का भय नहीं। तुम विराट को निमंत्रण दो, क्षुद्र को हटाओ मत। ध्यान रखो, क्षुद्र से लड़ोगे, क्षुद्र हो जाओगे। क्षुद्र का बहुत चिंतन करोगे--कैसे इसे छोड़ें, कैसे इससे मुक्त हों--उतने ही बंधते चले जाओगे। क्षुद्र का चिंतन भी क्या करना, मनन भी क्या करना! क्षुद्र बांधेगा भी क्या! उसकी सामर्थ्य भी क्या है! कूड़ा-कर्कट को कोई छोड़ने जाता है, त्यागने जाता है? हीरों को खोजने चलो। धर्मगुरुओं ने निषेधात्मक धर्म दिया है; मैं तुम्हें विधेय दे रहा हूं। मैं तुमसे कहता हूं, छोड़ना जरूरी नहीं है, पाना जरूरी है। और जिसने पा लिया, उसने छोड़ा। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जब तुम्हें बड़ा धन मिलता है तो छोटा धन अपने आप छूट जाता है। फिर छोड़ने की पीड़ा भी नहीं होती। त्याग भी मालूम नहीं पड़ता, क्योंकि त्याग भी पीड़ा है। और उस त्याग का क्या मजा जिसमें पीड़ा हो? वह त्याग सच्चा भी नहीं है, जिसमें पीछे थोड़ा दंश छूट जाए।
जीवन ऐसा सहज होना चाहिए कि तुम रोज-रोज परमात्मा में आगे बढ़ते जाओ, रोज-रोज संसार तुमसे अपने आप पीछे हटता जाए; तुम्हें संसार को धकाना न पड़े, तुम्हें संसार से लड़ना न पड़े।
दो ही उपाय हैंः या तो संसार से घृणा करो, या परमात्मा से प्रेम करो। घृणा करनी तुम्हें भी आसान है, क्योंकि घृणा में तुम भी निष्णात हो। इसलिए धर्मगुरुओं की बात तुम्हें जम गयी। तुमने कहा, यह तो ठीक है, घृणा तो हम कर सकते हैं। जब मैं तुमसे प्रेम की बात कहता हूं तो तुम घबड़ाते हो, क्योंकि प्रेम का तुम्हें खुद भी भरोसा नहीं है कि तुम कर सकते हो। पर मैं तुमसे कहता हूं, कर सकते हो। माना कि तुम्हारा प्रेम बड़ी गंदगी में दबा पड़ा है, पर है, मौजूद है। और घबड़ाओ मत, कूड़े-कर्कट से, मिट्टी से, कीचड़ से कमल निकल आता है। कीचड़ में कमल छिपा है। थोड़ी खोज की जरूरत है। और फिर कमल और कीचड़ का क्या तुम संबंध जोड़ पाओगे! कहां कमल, कहां कीचड़!
धर्मगुरु तुमसे कह रहे हैं, कीचड़ छोड़ो। उनकी बात तुम्हें भी जंचती है
कि इस कीचड़ को घर में क्या रखना, छोड़ो। मैं तुमसे कहता हूं, इस कीचड़ में कमल छिपा है। छोड़ो मत, उपयोग कर लो। उपयोग में ही छूट जाएगा। जब कमल मिल जाएगा तो कीचड़ छूट ही गयी। लेकिन ऐसा न हो कहीं कि कीचड़ को फेंकने में कमल भी फिंक जाए।
अगर तुम्हारे जीवन से प्रेम का स्वर चला गया तो तुम संसार को कितना ही घृणा कर लो, तुम परमात्मा को न पा सकोगे। क्योंकि संसार को घृणा करने से वह नहीं मिलता है, उसे ही प्रेम करने से मिलता है। घृणा तो नकारात्मक है। यह

तो ऐसे है जैसे कोई अंधेरे को धक्का दे-देकर बाहर निकाल रहा हो। प्रेम तो विधायक है, दीया जलाने जैसा है।
तुम धर्मगुरुओं से राजी हो गए, क्योंकि तुम्हें भी लगा कि यही आसान है। लेकिन तुम अपने त्यागियों को, अपने तपस्वियों को गौर से देखो, जरा उनकी आंखों में झांको, उनके आसपास की हवा को परखो--तुम पाओगे उन्होंने छोड़ तो दिया है कुछ, यह बात पक्की है; लेकिन पाया कुछ भी नहीं। सिर्फ छोड़ने से ही थोड़े ही मिलने का कोई सबूत मिलता है। जाओ, अपने संन्यासियों के अंतर्तम में झांको, वहां तुम्हें सूना घर मिलेगा। तुमसे भी ज्यादा सूना। क्योंकि तुम्हारे घर में कम से कम अंधेरा तो है; तुम्हारे घर में कम से कम कूड़ा- कर्कट, कीचड़ तो है--वह भी उन्होंने फेंक दी। कमल तो खिला नहीं; क्योंकि कीचड़ को फेंककर कहीं कोई कमल खिला है!
काम ही राम बनता है। संभोग की ही यात्रा विपरीत हो जाती है तो समाधि
बन जाती है। वह जो नीचे की तरफ जा रहा है वह काम है। वही ऊर्जा जब ऊपर की तरफ जाने लगती है तो राम हो जाती है। पर राम और काम एक ही ऊर्जा की दो भिन्न दिशाएं हैं। जिसने काम को काट डाला, उसने राम की संभावना मिटा दी।
प्रेम पर भरोसा करो। भरोसे पर प्रेम करो। और जल्दी मत करना छोड़ने की। छोड़ने की भी क्या जल्दी है! जब मिल जाएगा, छोड़ देंगे। मैं तुमसे कहता हूं पाने की फिकर करो। सारी दृष्टि खोज में लगाओ।
आशिकी से मिलेगा ऐ जाहिद
बंदगी से खुदा नहीं मिलता
गहन प्रेम से, आशिकी से। तुम्हारी बंदगी झूठी है, अगर उसमें गहन प्रेम नहीं है। तुम कितना ही झुको, कितनी ही इबादत और प्रार्थना करो, कितने ही मंदिरों की घंटियां बजाओ और पूजा के थाल सजाओ--यह बंदगी झूठी है, जब तक इसके भीतर आशिकी का स्वर न बजता हो, जब तक परमात्मा तुम्हारा प्रेमी न हो जाए, तुम्हारी प्रेयसी न हो जाए, जब तक ऐसा आत्मीय निकट का संबंध न हो जाए। लेकिन, चूंकि तुम प्रेम से परेशान हो, चूंकि तुम प्रेम करना सीख नहीं पाए, चूंकि तुम नाचना नहीं जानते, तुम कहते हो आंगन टेढ़ा है। आंगन की कोई फिकर करता है जिसको नाचना आता हो? आंगन की वही फिकर करता है जिसे नाचना न आया। संसार से भागते वही हैं, जो नाच न सके। जिसे नाचना आता है, टेढ़ा आंगन भी पर्याप्त है।
असली बात जीवन की कला को सीखने की है।
मैं तुम्हें तोड़ना नहीं चाहता, तुम्हें जोड़ना चाहता हूं। अगर तुम ठीक
से समझो, तो मैं तुम्हें जो दे रहा हूं वही योग है। योग यानी जोड़। प्रेम एकमात्र योग है, क्योंकि वही जोड़ता है। और तो सब चीजें तोड़ देती हैं। परमात्मा से हम दूर हो गए हैं, टूट गए हैं, पास आना है; दूर चले गए हैं
घर से, लौटना है। घृणा, विरोध, त्याग, निषेध--इनसे तुम कैसे पहुंच पाओगे? और इनसे तुम अगर पहुंच भी गए तो तुम इनसे ही भरे रहोगे, तुम परमात्मा को भी पहचान न पाओगे। अगर तुम आज जैसे हो, ऐसे ही परमात्मा के सामने पहुंच जाओ, तुम पहचान न पाओगे। पहचानोगे तो तुम्हीं? तुमने जो भी जाना है, उसमें कहीं भी तो परमात्मा की झलक तुम्हें मिली नहीं, परमात्मा का कोई परिचय नहीं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम परमात्मा से पहला परिचय है। तुम जिसके भी प्रेम में पड़ जाओगे उसी में तुम्हें परमात्मा की थोड़ी सी झलक मिलनी शुरू हो जाएगी। जहां तुम्हें प्रेम किसी के प्रति हुआ, वहीं तुम्हें रूपांतरण दिखायी पड़ेगा। अब जिस व्यक्ति के प्रति तुम्हारा प्रेम हो गया है, वह साधारण नहीं रह गया, असाधारण हो गया। तुम्हारा प्रेम उसके भीतर कहीं न कहीं परमात्मा को खोजने लगेगा। प्रेम परमात्मा को खोज ही लेता है, क्योंकि बिना परमात्मा के प्रेम हो ही नहीं सकता। तुम्हें उस व्यक्ति की बुराइयां दिखायी पड़नी बंद हो जाती हैं, जिसको तुम प्रेम करते हो। और जिसे तुम घृणा करते हो, उसकी सिर्फ बुराइयां दिखायी पड़ती हैं। जिसको तुम घृणा करते हो, उसमें शैतान दिखायी पड़ने ही लगेगा। और जिसको तुम प्रेम करते हो उसमें परमात्मा दिखायी पड़ने ही लगेगा। उसकी भलाई ही भलाई दिखती है। वह बुरा भी करे तो भी भला मालूम होता है। उसमें सुगंध ही सुगंध मालूम पड़ती है। मंदिर बनना शुरू हो गया। यही तो पहचान होगी। यहीं से परिचय

बनेगा। यह परिचय अगर पास में रहा, तो किसी दिन तुम परमात्मा के सामने खड़े होओगे तो पहचान पाओगे। अगर यह परिचय तुम्हारे पास नहीं है, जैसा कि तुम्हारे तथाकथित त्यागियों के पास नहीं है, इनके सामने भी परमात्मा खड़ा रहे तो इन्हें शैतान ही दिखायी पड़ेगा।
राबिया एक सूफी फकीर औरत हुई। कुरान में एक वचन है कि शैतान को घृणा करो, उसने काट दिया। अब कुरान में कोई संशोधन करना बड़ा खतरनाक मामला है। और कोई दूसरा बरदाश्त भी कर ले, मुसलमान बरदाश्त भी नहीं कर सकते। अगर कोई वेद में सुधार कर दे तो हिंदू बहुत फिक्र न करेंगे। अगर कोई गीता में भी दो-चार पंक्तियां इधर-उधर कर दे तो कहेंगे, उसकी मौज है, क्या करना! लेकिन मुसलमान बरदाश्त न करेंगे।
एक दूसरा फकीर राबिया के घर मेहमान था। उसने सुबह ही कुरान उठाकर पढ़ी, देखा कि लकीरें कटी हुई हैं। कुरान में, और तरमीम, सुधार! वह घबड़ा गया। उसने कहा, यह किसने पाप किया? यह तो आखिरी वचन है परमात्मा का, इसके आगे अब कोई सुधार नहीं हो सकता। जो कहना था वह कह दिया गया है। जो नहीं कहना था वह नहीं कहा गया है। आखिरी! मोहम्मद के बाद अब कोई पैगंबर होने को नहीं है। यह किसने नासमझी की है? वह बड़ा क्रोधित हो गया।
राबिया ने कहा, नाराज मत हो। किसी और ने नहीं की, मैंने ही की है।
वह तो विश्वास भी न कर सका। उसने कहा कि तुझ जैसी भक्त, और तूने यह किया!
उसने कहा, मैं क्या करूं? मेरी मजबूरी है। जब से परमात्मा से प्रेम लगा, जब से आशिकी बनी, तब से अब कोई शैतान दिखायी नहीं पड़ता। अब तो शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो तो मुझे परमात्मा ही दिखायी पड़ेगा। इसलिए शैतान को घृणा करो, अब इस वाक्य का क्या अर्थ रहा? इसको मैंने काट दिया, मेरे काम का नहीं है। जब तक शैतान दिखायी पड़ता था तब तक काम का हो भी सकता था, अब किस काम का है?
प्रेम की पहचान बढ़ती जाए तो धीरे-धीरे तुम पाओगे कि इसी संसार में रंग-ढंग बदलने लगे जीवन के। पक्षी वही हैं, लेकिन गीत के अर्थ बदल गए। अब पक्षियों की गुनगुनाहट नहीं है, वेदों का उच्चार है। फूल अब भी वही हैं, लेकिन रंग बदल गए; अब सिर्फ फूल नहीं हैं, अब परमात्मा की खबर हैं। झरने अब भी बहेंगे और कलकल नाद करेंगे, लेकिन अब ये परमात्मा के पैरों के बजते हुए पायल हैं। सब बदल गया। प्रेम जिसने किया उसने संसार को रूपांतरित कर लिया।
तुम्हारी दृष्टि में तुम्हारा संसार है। और ध्यान रखना, अगर प्रेम पर कहीं भूल-चूक हो गयी--और प्रेम पहला कदम है परमात्मा की तरफ, अगर वहीं भूल-चूक हो गयी--तो तुम कितना ही चलो, पहुंच न पाओगे।
सिर्फ एक कदम उठा था गलत राहे-शौक में
प्रेम के रास्ते पर सिर्फ एक गलत कदम उठा।
मंजिल तमाम उम्र मुझे ढूंढ़ती रही
फिर मेरा ढूंढ़ना तो ठीक ही है, फिर मंजिल भी मुझे ढूंढ़ती रही तमाम उम्र, तो भी मुझे पा न सकी।
सिर्फ एक कदम उठा था गलत राहे-शौक में
मंजिल तमाम उम्र मुझे ढूंढ़ती रही
प्रेम के संबंध में बहुत-बहुत होश रखना। वहीं भूल हो गयी तो परमात्मा
से तुम सदा के लिए चूके। उसे सुधारोगे तभी परमात्मा की तरफ बढ़ पाओगे। प्रेम के बिना न कोई प्रार्थना है, न कोई परमात्मा है।
इसलिए मैं तुम्हें सिर्फ एक ही सूत्र देता हूं, कि तुम अबाध प्रेम करो, कि तुम बेशर्त प्रेम करो, कि तुम जितने गहरे प्रेम में उतर सको उतने गहरे उतरो। ध्यान व्यर्थ पर मत दो, प्रेम में जो सार्थक स्वर हो उसको मुक्त कर लो। प्रेम में जो हीरा हो उसे निकाल लो, मिट्टी को पड़ा रह जाने दो। प्रेम में जो कमल हो उसे जगा लो, कीचड़ को पड़ा रह जाने दो।
और जिस दिन कमल जग आएगा कीचड़ से, तुम कीचड़ के प्रति भी धन्यवाद अनुभव करोगे, क्योंकि उसके बिना कमल न हो सकता। और जिस दिन तुम कीचड़ को भी धन्यवाद दे सको, उसी दिन मैं तुम्हें कहूंगा तुम धार्मिक हो। जिस दिन

संसार के प्रति भी तुम सिर झुका सको अनुग्रह के भाव से... क्योंकि इस संसार में अगर न घूमे होते, न भटके होते, तो परमात्मा से मिलने का कोई उपाय न था।
यह भटकाव भी उसी की यात्रा का पड़ाव है।

दूसरा प्रश्नः ध्यान और प्रेम के दो मार्ग आपने कहे हैं, पर होश, अवेयरनेस का तत्व दोनों मार्ग पर किस प्रकार संबंधित है, कृपा कर इसे समझाएं।

होश तो दोनों मार्गों पर होगा ही, लेकिन होश की परिभाषा दोनों मार्गों पर अलग-अलग होगी। होश तो होगा, लेकिन होश का स्वाद दोनों मार्गों पर बड़ा अलग-अलग होगा। स्वाद अलग होगा।
प्रेम के मार्ग पर होश बेहोशी जैसा होगा। ध्यान के मार्ग पर बेहोशी होश जैसी होगी। यह थोड़ा समझने में कठिन होगा, जटिल होगा।
प्रेम में एक मस्ती आती है, जैसे कोई शराब में डूबा हो। सारी दुनिया
को लगता है वह बेहोश है--वह जो प्रेम का दीवाना है; लेकिन भीतर उसके होश का दीया जलता है। जितनी गहरी बेहोशी दुनिया को लगती है, उतना ही भीतर का दीया सजग होकर जलने लगता है।
रामकृष्ण के जीवन में ऐसा बहुत बार हुआ। वे प्रेम के पथिक थे और कभी- कभी उनकी समाधि लग जाती तो छह घंटे, बारह घंटे, अठारह घंटे, कभी-कभी छह दिन, सात दिन, दस दिन, वे बिल्कुल बेहोश पड़े रहते। हाथ-पैर ऐसे अकड़ जाते जैसे मुर्दे के हों, सिर्फ श्वास धीमी-धीमी चलती रहती। उनके प्रेमी और भक्त बड़े परेशान हो जाते, कि वे अब लौटेंगे या नहीं। और प्रेमी और भक्त भी समझते कि यह तो बड़ी बेहोशी है।
लेकिन रामकृष्ण को जैसे ही होश आता--भक्तों की दृष्टि में, आसपास की भीड़ की दृष्टि में--जैसे ही उन्हें होश आता, वे फिर चिल्लाते कि मां, यह बेहोशी मुझे नहीं चाहिए। जिसको भक्त कहते बेहोशी, उसको वे कहते होश। और जिसको भक्त कहते होश, वे उस होश में आते ही चिल्लाते कि मां, यह बेहोशी मुझे नहीं चाहिए। अब क्यों वापस इस बेहोशी में भेजती है! जब ऐसा होश सध गया था तो वापस वहीं बुला ले। बाहर से शरीर मुर्दे की तरह हो जाता था, और भीतर कोई ज्योति जलती थी।
प्रेम के मार्ग पर बाहर से जो बेहोशी दिखायी पड़ेगी वह भीतर होश है। बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैं--
मेरी निगाह में वो रिंद ही नहीं साकी
जो हुशियारी और मस्ती में इम्तियाज करे
वह पीने वाला ही नहीं है, जो अभी होश और बेहोशी में फर्क करे।
मेरी निगाह में वो रिंद ही नहीं साकी
उसने अभी पीना ही नहीं जाना, वह पियक्कड़ नहीं है, वह अभी मतवाला नहीं है, अभी मधुशाला को पहचाना ही नहीं।
जो हुशियारी और मस्ती में इम्तियाज करे
जो होश में और बेहोशी में फर्क करे, उसने अभी पीना ही नहीं सीखा।
प्रेम के रास्ते पर होश और बेहोशी एक हो जाते हैं। यही ध्यान के रास्ते पर भी घटता है, लेकिन स्वाद अलग है। महावीर बैठे हैं या बुद्ध बैठे हैं, तुम उन्हें परिपूर्ण होश में पाओगे, लेकिन भीतर उनके ऐसा नशा बह रहा है जैसा नशा इस जमीन पर कभी-कभी बहता है। भीतर उन्हें वह परम मधुशाला उपलब्ध हो गयी है। भीतर वर्षा हो रही है मधु की। भीतर आनंद में सराबोर हैं। बाहर से बिल्कुल होश सधा है, भीतर डूबे हैं। ठीक उलटा मालूम होगा। बुद्ध बाहर से होशपूर्ण मालूम होते हैं, भीतर डूबे हैं। चैतन्य, मीरा, रामकृष्ण बाहर से बेहोश मालूम होते हैं, भीतर होश में हैं।
ध्यान के मार्ग से जो चलेगा, होश बाहर होगा, भीतर बेहोशी होगी। प्रेम
के मार्ग से जो चलेगा, बेहोशी बाहर होगी, होश भीतर होगा। पर दोनों साथ-साथ हैं।
होश की आखिरी जो घड़ी है, वह बेहोशी की भी आखिरी घड़ी है। क्यों? क्योंकि जहां पता चलता है मैं कौन हूं, वहीं तो "मैं" मिट जाता है। जहां "मैं" मिटता

है, वहीं तो पता चलता है कि मैं कौन हूं। शून्य जहां हम हो जाते हैं वहीं तो पूर्ण का पदार्पण होता है। और जहां पूर्ण आता है वहां सब शून्य हो जाता है। उस अंतिम घड़ी में, उस आखिरी शिखर पर, उस गौरीशंकर पर सब भेद, सब द्वैत गिर जाता है। सब द्वंद्व विलीन हो जाते हैं। वहां न होश होश है, न बेहोशी बेहोशी है।
ठीक कहा है यह--
मेरी निगाह में वो रिंद ही नहीं साकी
जो हुशियारी और मस्ती में इम्तियाज करे
अगर तुम बुद्ध के सामने रामकृष्ण को रखोगे तो वे पहचान लेंगे। अगर तुम रामकृष्ण को बुद्ध को पहचानने को कहोगे, रामकृष्ण भी पहचान लेंगे। ऐसा ही समझो कि तुम्हारे हाथ में एक सिक्का है, किसी ने सीधा रखा है हाथ में, किसी ने उलटा रखा है--इससे क्या फर्क पड़ता है? सिक्का दोनों के हाथ में है, दोनों बाजार में जाएंगे, सिक्के का बराबर मूल्य मिल जाएगा। कोई यह थोड़े ही पूछेगा कि सिक्के का सिर ऊपर की तरफ है कि नीचे की तरफ है।
सिक्का सिक्का है।
प्रेम की दुनिया में बेहोशी बाहर होगी, होश भीतर होगा। ध्यान की दुनिया में होश बाहर होगा, बेहोशी भीतर होगी। और दोनों समान होंगी। दोनों का बराबर बल होगा। तराजू के दोनों पलड़े समान होंगे।
जहां बेहोश और होश दोनों मिल जाते हैं, वहीं वह परम घटना घटती है, जिसे
हम निर्वाण कहें, मोक्ष कहें, ब्रह्मोपलब्धि कहें। फिर सब भेद नामों के हैं, शब्दों के हैं।

तीसरा प्रश्नः
तुम न जाने किस जहां में खो गए
हम तेरी दुनिया में तनहा हो गए
तुम न जाने किस जहां में खो गए
मौत भी आती नहीं
सांस भी जाती नहीं
दिल को ये क्या हो गया
कोई अब भाता नहीं
लूट कर मेरा जहां
छुप गए हो तुम कहां
तुम कहां, तुम कहां, तुम कहां...
तुम न जाने किस जहां में खो गए

तरु ने पूछा है।
प्रेम खोने का रास्ता है! और वही प्रेम परमात्मा तक ले जाएगा, जो खोना सिखाए। वही प्रेमी तुम्हें परमात्मा तक ले जा सकेगा, जो खुद भी धीरे-धीरे खोता जाए और तुम्हें भी खोने के लिए राजी करता जाए।
प्रेम के मार्ग पर मिट जाना ही पाना है। कठिन होता है मिटना। पीड़ा होती है। बचा लेने का मन होता है। लेकिन जिसने बचाया उसने गंवाया। जो मरने को राजी है, वही प्रेम को जान पाया। प्रेम मृत्यु है, और बड़ी मृत्यु है; साधारण मृत्यु नहीं है जो रोज घटती है। वह मर जाना भी कोई मर जाना है! क्योंकि तुम तो मरते ही नहीं, शरीर बदल जाता है। लेकिन प्रेम में तुम्हें मरना पड़ता है, शरीर वही रहा आता है। इसलिए प्रेम बड़ी मृत्यु है, महामृत्यु है।
इतने से काम न चलेगा--"मौत भी आती नहीं, सांस भी जाती नहीं।" सांस भी चली जाए, मौत भी आ जाए, तो भी काम न चलेगा। जब प्रेम में मरने की घड़ी आती है तो आदमी सोचता है, इससे तो बेहतर यह होता कि शरीर ही मर जाता, श्वास ही चली जाती। वह भी कम खतरनाक मालूम पड़ता है।
यही तो अड़चन है प्रेम की--तपश्चर्या यही है--कि प्रेम भीतर से मार डालेगा। वह जो भीतर मैं है, वह जब चला जाएगा, फिर श्वास भी आती रहेगी तो भी कोई अंतर नहीं पड़ेगा। तुम न बचे।

मेरे साथ जो चलने को राजी हुए हैं, वे मिटने को ही राजी हुए हैं। तो ही मेरे साथ चलना हो सकता है। और स्वाभाविक है कि अगर मैं तुम्हें राजी करना चाहूं मिटने के लिए, तो मैं तुमसे दूर होता जाऊं और खोता चला जाऊं। तुम मुझे खोजते हुए आगे बढ़ते चले आओ और एक दिन तुम पाओ, कि मैं भी खो गया हूं और मुझे खोजने में तुम भी खो गए हो।
"तुम न जाने किस जहां में खो गए।"
यही तो प्रेम की मंजिलें हैं, यही तो उसके आगे के इम्तिहान हैं।
सितारों के आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
आखिरी प्रेम का इम्तिहान यही है कि वहां प्रेमी खो जाता है। और जिस दिन खोता है उसी दिन पाता है, सब मिल गया। इसलिए प्रेम की भाषा गणित की भाषा नहीं है। प्रेम की भाषा हिसाब की भाषा नहीं है। प्रेम की भाषा तो पागलपन की भाषा है, दीवानगी की भाषा है, मतवालेपन की भाषा है।
तो तरु से मैं कहूंगा, बजाय यह सोचने के कि "तुम न जाने किस जहां में खो गए"; बजाय यह सोचने के कि "मौत भी आती नहीं, सांस भी जाती नहीं, दिल को यह क्या हो गया"; सोचो--
आरजू तेरी बरकरार रहे
दिल का क्या है रहा न रहा
सब खो जाए, तो भी जो अमृत है वह तो नहीं खो जाता है। वही खोता है जो खो
जा सकता है। और जो खो जा सकता है, वह जितनी जल्दी खो जाए उतना अच्छा है। क्योंकि जितनी देर उलझे रहे उतनी ही मुसीबत! जितनी देर उलझे रहे उतना ही समय गंवाया। जितनी जल्दी जागे उतना अच्छा। जितनी देर सोए उतनी ही रात, उतना ही व्यर्थ।
ध्यान रहे कि मिटने की जितनी तैयारी होगी--और मिटना पीड़ापूर्ण है, इसे जानकर--उतनी ही जल्दी पीड़ा की रात का अंत आ जाता है। जब तक तुम नहीं मिटे हो तभी तक पीड़ा मालूम होती है--क्योंकि मिटना है... मिटना है... मिटते जाना है। जल्दी करो, मिट जाओ। स्वीकार कर लो मृत्यु को। वह भीतर जो एक लड़ाई चलती है बचने की, वह छोड़ दो। फिर पीड़ा भी समाप्त हो गयी। छोड़ते ही संघर्ष, पीड़ा समाप्त हो जाती है। लेकिन संकल्प आदमी का जन्मों-जन्मों का कमाया हुआ है, और समर्पण कठिन होता है। समर्पण भी हम करते हैं तो रत्ती-रत्ती करते हैं। रामकृष्ण के पास एक दिन एक आदमी आया और उसने आकर हजार सोने की अशर्फियां उनके सामने डाल दीं। उसने कहा, आप स्वीकार कर लें, बस मैं आपके चरणों में रखना चाहता हूं। रामकृष्ण ने कहा, इनका क्या करूंगा? अब इनकी हिफाजत कौन करेगा? तू एक काम कर, बांध पोटली वापस, और जाकर गंगा में डुबा दे। हमने स्वीकार कर लिया। अब ये अशर्फियां हमारी हैं। हमारी तरफ से तू गंगा में फेंक आ, इतना और कर। इतनी दूर तू लाया, इतना हमारे लिए कर दे।
उस आदमी को जंची नहीं बात। उसने कहा, यह भी कोई बात हुई? मगर अब रामकृष्ण को इनकार भी न कर सका। बांधी पोटली बेमन से। बड़ी देर हो गयी, लौटा नहीं। तो रामकृष्ण ने कहा, क्या हुआ उस आदमी का? देखो कहीं डूब तो नहीं गया। कहीं ऐसा न किया हो कि पोटली तो रख दी हो किनारे और खुद डूब मरा हो! क्योंकि लोग धन को बचा लेते हैं, खुद को मिटा देते हैं। देखो, क्या हुआ उस बेचारे का? लोग गए तो देखा कि वह एक-एक अशर्फी को बजा रहा था पत्थर पर, गिन-गिन कर फेंक रहा था। और बड़ी भीड़ इकट्ठी कर ली थी उसने। लोगों ने कहा, तुम यह क्या कर रहे हो? परमहंसदेव ने बुलाया है।
उसने कहा, भई, आता हूं, अब जरा पूरा गिन कर... ! जब वह लौटकर आया तो रामकृष्ण ने कहा, पागल! इकट्ठा करते वक्त गिनते हैं, तब तो समझ में आता है। फेंकते वक्त क्या गिनना! जब फेंक ही रहे हैं, फिर क्या गिनना! तो पोटली इकट्ठी डुबा देता। मगर तू छोड़ते वक्त भी गिनता रहा।
अगर गिन-गिन कर छोड़ोगे तो पीड़ा की रात बहुत लंबी हो जाएगी। जब छोड़ना
ही है तो बिन गिने छोड़ दो। अगर छोड़ते न बनता हो तो प्रेम की फिकर न करो, फिर ध्यान का मार्ग है। फिर कोई जरूरत नहीं है। तब ध्यान ठीक है। ध्यान ज्यादा गणितपूर्ण है, तकनीक है। उसमें तुम बचोगे और काम जारी रहेगा। वह भी तुम्हें मिटा देगा, लेकिन धीरे-धीरे मिटाएगा।

प्रेम छलांग है। ध्यान में तो धीरे-धीरे व्यवस्था जमायी जा सकती है, प्रेम में कोई व्यवस्था नहीं जमायी जा सकती। होता है तो पूरा, नहीं होता है तो नहीं। सोचो मत। प्रेम के रास्ते पर तो पागल होने की हिम्मत चाहिए ही। और अगर बहुत सोच-विचार किया, और बहुत हिसाब से चले, तो न केवल देर हो जाएगी, बल्कि अगर हिसाब की आदत हो गयी तो किसी दिन परमात्मा सामने भी खड़ा हो जाए, तो तुम अपने हिसाब में तल्लीन रहोगे, तुम उसे देख न पाओगे। रामतीर्थ कहते थे कि एक प्रेमी दूर देश गया। उसकी प्रेयसी राह देखती है, राह देखती है, फिर वह लौटा नहीं। हर बार पत्र आता है कि अब आऊंगा, अब आऊंगा, लेकिन देर होती चली गयी।
एक दिन प्रेमी पत्र लिख रहा है सांझ को--और प्रेमी जैसा लंबे पत्र लिखते हैं--लिखते ही जा रहा है। उसने आंख उठाकर देखा ही नहीं कि सामने कौन खड़ा है। प्रेयसी यह देखकर कि यह लौट नहीं रहा है, उसे खोजती हुई उसके गांव आ गयी। वह द्वार पर खड़ी है आकर। लेकिन वह पत्र लिखने में तल्लीन है। वह इतना तल्लीन है कि जिसके लिए पत्र लिख रहा है वह सामने खड़ी है, लेकिन वह उसे देख नहीं पाया। और प्रेयसी ने यह सोचकर कि वह इतना तल्लीन है, बाधा देना ठीक नहीं, उसको काम पूरा कर लेने दो, वह चुपचाप खड़ी रही।
जब उसने पत्र पूरा किया और आंख उठायी तो उसे भरोसा न आया। वह घबड़ा गया। यहां कहां प्रेयसी हो सकती है उसकी? समझा होगा कोई भूत-प्रेत है, या कौन है? उसने अपनी आंखें मलीं। उसकी प्रेयसी ने कहा, आंखें मत मलो, मैं बिल्कुल वास्तविक हूं। और मैं बड़ी देर से खड़ी हूं, लेकिन तुम पत्र लिखने में तल्लीन थे। तुम जिसे पत्र लिख रहे थे वह सामने खड़ा है। लेकिन तुम इतने तल्लीन थे कि मैंने बाधा देनी ठीक न समझी।
कई बार हम हिसाब लगाने में तल्लीन रहते हैं और परमात्मा द्वार पर खड़ा होता है। शायद सदा ही ऐसा है। हम उसी की तरफ जाने का हिसाब बिठाते होते हैं, वह सामने ही खड़ा होता है।
कुछ इतने दिए हसरते-दीदार ने धोखे
वो सामने बैठे हैं यकीं हमको नहीं है
बहुत बार ऐसा हो जाता है, कि तुम कल्पना कर लेते हो अपने प्रेमी की, और फिर पाते हो कल्पना ही थी। सपना देख लेते हो, फिर जागकर पाते हो सपना ही था।
कुछ इतने दिए हसरते-दीदार ने धोखे
कुछ अपनी ही कल्पना से इतने बार दर्शन कर लिए परमात्मा के, और हर बार पाया कि धोखा है।
कुछ इतने दिए हसरते-दीदार ने धोखे
वो सामने बैठे हैं यकीं हमको नहीं है
और अब सामने परमात्मा बैठा हो तो भी यकीन नहीं आता। पता नहीं कहीं फिर हमारी ही कल्पना धोखा न दे रही हो; कहीं फिर हमने ही न सोच लिया हो; कहीं फिर हमने ही यह मूर्ति न बना ली हो।
मिटने की तैयारी करो, कल्पनाएं सजाने की नहीं। प्रेमी को देखने की फिकर छोड़ो, अपने को मिटाने की फिकर करो। तुम्हारे मिटने में ही उसका दर्शन है।
प्रेमी की कला मरने की कला है। ध्यानी की कला जागने की कला है। मगर दोनों एक ही जगह ले आते हैं।

चौथा प्रश्नः मीरा का मार्ग था प्रेम का, पर कृष्ण और मीरा के बीच अंतर था पांच हजार साल का। फिर यह प्रेम किस प्रकार बन सका? कृपया समझाएं।

प्रेम के लिए न तो समय का कोई अंतर है और न स्थान का। प्रेम एकमात्र कीमिया है, जो समय को और स्थान को मिटा देती है। जिससे तुम्हें प्रेम नहीं है वह तुम्हारे पास बैठा रहे, शरीर से शरीर छूता हो, तो भी तुम हजारों मील के फासले पर हो। और जिससे तुम्हारा प्रेम है वह दूर चांद-तारों पर बैठा हो, तो भी सदा तुम्हारे पास बैठा है।

प्रेम एकमात्र जीवन का अनुभव है जहां टाइम और स्पेस, समय और स्थान दोनों व्यर्थ हो जाते हैं। प्रेम एकमात्र ऐसा अनुभव है जो स्थान की दूरी में भरोसा नहीं करता और न काल की दूरी में भरोसा करता है, जो दोनों को मिटा देता है।
परमात्मा की परिभाषा में कहा जाता है कि वह काल और स्थान के पार है, कालातीत। जीसस ने कहा है कि प्रेम परमात्मा है--इसी कारण। क्योंकि मनुष्य के अनुभव में अकेला प्रेम ही है जो कालातीत और स्थानातीत है। उससे ही परमात्मा का जोड़ बैठ सकता है।
इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि कृष्ण पांच हजार साल पहले थे। प्रेमी अंतराल को मिटा देता है। प्रेम की तीव्रता पर निर्भर करता है। मीरा के लिए कृष्ण समसामयिक थे। किसी और को न दिखायी पड़ते हों, मीरा को दिखायी पड़ते थे। किसी और को समझ में न आते हों, मीरा उनके सामने ही नाच रही थी। मीरा उनकी भाव-भंगिमा पर नाच रही थी। मीरा को उनका इशारा-इशारा साफ था।
यह थोड़ा हमें जटिल मालूम पड़ेगा, क्योंकि हमारा भरोसा शरीर में है। शरीर तो मौजूद नहीं था।
बुद्ध ने स्वयं कहा है कि जो मुझे प्रेम करेंगे और जो मेरी बात को समझेंगे, कितना ही समय बीत जाए, मैं उन्हें उपलब्ध रहूंगा। और जिन्होंने बुद्ध को प्रेम नहीं किया, वे बुद्ध के सामने बैठे रहे हों तो भी उपलब्ध नहीं थे।
शरीर समय और क्षेत्र से घिरा है। लेकिन तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है, समय और क्षेत्र का उस पर कोई संबंध नहीं है। वह बाहर है। वह अतिक्रमण कर गया है। वह दोनों के अतीत है।
जिस कृष्ण को मीरा प्रेम कर रही थी, वे कृष्ण देहधारी कृष्ण नहीं थे।
वह देह तो पांच हजार साल पहले जा चुकी। वह तो धूल धूल में मिल चुकी। इसलिए जानकार कहते हैं कि मीरा का प्रेम राधा के प्रेम से भी बड़ा है। होना भी चाहिए। अगर राधा प्रसन्न थी कृष्ण को सामने पाकर, तो यह तो कोई बड़ी बात न थी। लेकिन मीरा ने पांच हजार साल बाद भी सामने पाया, यह बड़ी बात थी। जिन गोपियों ने कृष्ण को मौजूदगी में पाया और प्रेम किया--प्रेम करने योग्य थे वे, उनकी तरफ प्रेम सहज ही बह जाता, वैसा उत्सवपूर्ण व्यक्तित्व पृथ्वी पर मुश्किल से होता है--तो कोई भी प्रेम में पड़ जाता। लेकिन कृष्ण गोकुल छोड़कर चले गए द्वारका, तो बिलखने लगीं गोपियां, रोने लगीं, पीड़ित होने लगीं। गोकुल और द्वारका के बीच का फासला भी वह प्रेम पूरा न कर पाया। वह फासला बहुत बड़ा न था। स्थान की ही दूरी थी, समय की तो कम से कम दूरी न थी। मीरा को स्थान की भी दूरी थी, समय की भी दूरी थी; पर उसने दोनों का उल्लंघन कर लिया, वह दोनों के पार हो गयी।
प्रेम के हिसाब में मीरा बेजोड़ है। एक क्षण उसे शक न आया, एक क्षण उसे संदेह न हुआ, एक क्षण को उसने ऐसा व्यवहार न किया कि कृष्ण पता नहीं, हों या न हों। वैसी आस्था, वैसी अनन्य श्रद्धाः फिर समय की कोई दूरी दूरी नहीं रह जाती। दूरी रही ही नहीं।
आत्मा सदा है। जिन्होंने प्रेम का झरोखा देख लिया, उन्हें वह सदा जो आत्मा है, उपलब्ध हो जाती है। जो अमृत को उपलब्ध हुए व्यक्ति हैं--कृष्ण हों, कि बुद्ध हों, कि क्राइस्ट हों--जो भी उन्हें प्रेम करेंगे, जब भी उन्हें प्रेम करेंगे, तभी उनके निकट आ जाएंगे। वे तो सदा उपलब्ध हैं, जब भी तुम प्रेम करोगे, तुम्हारी आंख खुल जाती है।
इस चिंता में मत पड़ो कि कैसे मीरा पांच हजार साल के बाद प्रेम कर पायी। प्रेम को क्या लेना-देना है सालों से?
रामकृष्ण मरते थे। उन्हें गले का कैंसर हुआ था। डाक्टर ने कह दिया कि
अब आखिरी घड़ी आ गयी। तो शारदा उनकी पत्नी रोने लगी। रामकृष्ण ने कहा, रुक, रो मत। क्योंकि जो मरेगा वह तो मरा ही हुआ था, और जो जिंदा था वह कभी नहीं मरेगा। और ध्यान रख, चूड़ियां मत तोड़ना।
शारदा अकेली स्त्री है पूरे भारत के इतिहास में, पति के मरने पर जिसने चूड़ियां नहीं तोड़ीं। क्योंकि रामकृष्ण ने कहा, चूड़ियां मत तोड़ना। तूने मुझे चाहा था कि इस देह को? तूने किसको प्रेम किया था? मुझे या इस देह को?

अगर इस देह को किया था तो तेरी मर्जी, फिर तू चूड़ियां तोड़ लेना। और अगर मुझे प्रेम किया था तो मैं नहीं मर रहा हूं। मैं रहूंगा। मैं उपलब्ध रहूंगा। और शारदा ने चूड़ियां नहीं तोड़ीं। शारदा की आंख से आंसू की एक बूंद नहीं गिरी। लोग तो समझे कि उसे इतना भारी धक्का लगा है कि वह विक्षिप्त हो गयी है। लोगों को तो उसकी बात विक्षिप्तता ही जैसी लगी। लेकिन उसने सब काम वैसे ही जारी रखा जैसे रामकृष्ण जिंदा हों। रोज सुबह वह उन्हें बिस्तर से आकर उठाती कि अब उठो परमहंसदेव, भक्त आ गए हैं--जैसा रोज उठाती थी, भक्त आ जाते थे, और उनको उठाती थी आकर। मसहरी खोलकर खड़ी हो जाती--जैसे सदा खड़ी होती थी। ठीक जब वे भोजन करते थे तब वह थाली लगाकर आ जाती थी, बाहर आकर भक्तों के बीच कहती कि अब चलो, परमहंसदेव! लोग हंसते, और लोग रोते भी कि बेचारी! इसका दिमाग खराब हो गया! किसको कहती है? थाली लगाकर बैठती, पंखा झलती। वहां कोई भी न था।
अगर प्रेम की आंख न हो तो वहां कोई भी न था, और अगर प्रेम की आंख हो तो वहां सब था। प्रेमी इसीलिए तो पागल दिखायी पड़ता है, क्योंकि उसे कुछ ऐसी चीजें दिखायी पड़ने लगती हैं जो अप्रेमी को दिखायी नहीं पड़तीं। और प्रेमी अंधा मालूम पड़ता है, बड़े मजे की बात है। प्रेमी के पास ही आंख होती है, लेकिन प्रेमी आंख वालों को अंधा दिखायी पड़ता है। क्योंकि उसे कुछ चीजें दिखायी पड़ती हैं जो तुम्हें दिखायी नहीं पड़तीं। तुम्हें लगता है, पागल है, अंधा है।
शारदा सधवा ही रही। प्रेम की एक बड़ी ऊंची मंजिल उसने पायी। रामकृष्ण उसके लिए कभी नहीं मरे। प्रेम मृत्यु को जानता ही नहीं। लेकिन प्रेम की मृत्यु में जो मरा हो पहले, वही फिर प्रेम के अमृत को जान पाता है। प्रेम स्वयं मृत्यु है, इसलिए फिर किसी और मृत्यु को प्रेम क्या जानेगा!
नहीं, समय का और स्थान का कोई अंतर नहीं है। प्रेम सब फासले मिटा देता है। एक ही फासला है, और वह अप्रेम का है। एक ही दूरी है, वह अप्रेम की है। जब तक तुम्हारे जीवन में अप्रेम है तब तक तुम सभी से दूर हो। जिस दिन तुम्हारे जीवन में प्रेम जागेगा, प्रेम का झरना फूटेगा, तुम सभी के पास हो जाओगे। और तुमने एक के साथ भी अगर प्रेम का नाता जोड़ लिया, तो तुम पाओगे कि तुम्हें प्रेम का स्वाद मिल गया। फिर एक से क्या जोड़ना! फिर सभी से जोड़ लेना। फिर सर्व से जोड़ा जा सकता है। प्रेम तो पाठ है प्रार्थना का। सितारों के आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
प्रेम तो पाठ है प्रार्थना का। वह तो बारहखड़ी है। फिर बड़े इम्तिहान हैं। आखिरी इम्तिहान तो वही है जहां इस सारे अस्तित्व के प्रति तुम्हारा प्रेम हो जाता है, सर्व तुम्हारा प्रेमी हो जाता है। किसी एक को प्रेम करना ऐसे ही है जैसे खिड़की से संसार के सौंदर्य को झांकना। फिर खिड़की से जिसने झांककर देख लिया, वह खिड़की पर ही क्यों रुकेगा; फिर बाहर का निमंत्रण मिल गया, फिर चांद-तारे बुला रहे हैं; फिर वह बाहर आ जाता है खुले आकाश के नीचे। प्रेम का पाठ सीखा, खिड़की के पास से। इसलिए खिड़की के प्रति सदा ही कृतज्ञता का बोध रहेगा, भाव रहेगा।
गुरु के पास परमात्मा का पाठ सीखा जाता है। प्रेमी के पास प्रेम का पाठ सीखा जाता है। अनुग्रह रहेगा उसका, सदा-सदा के लिए। लेकिन जल्दी ही उससे पार होना है, और विराट चारों तरफ घिरा हुआ है। क्या खिड़की से देखना आकाश को, जब पूरा आकाश मिलने को संभव है, उपलब्ध है!

पांचवां प्रश्नः बुद्ध ने कहा है, ध्यान का सतत अभ्यास करने वाले धीर पुरुष अनुत्तर योगक्षेम रूप निर्वाण को प्राप्त होते हैं। क्या निर्वाण के भी प्रकार हैं?

निर्वाण के तो कोई प्रकार नहीं हैं। जैसे फल जब पक जाता है तो एक क्षण में गिर जाता है, गिरने में कोई प्रकार नहीं है। लेकिन फल के पकने की बहुत सीढ़ियां हैं। अधपका फल है--अभी गिरा नहीं। कच्चा फल है--अभी गिरना बहुत दूर, गिरने की यात्रा पर है। गिरेगा तो फल एक क्षण में। पक गया, क्षण भी

नहीं लगेगा। फिर गिरने में सीढ़ियां नहीं हैं; गिर तो एकदम जाएगा। लेकिन गिरने के पहले बहुत सी सीढ़ियां हैं।
कच्चा फल भी वृक्ष से लगा है, अधपका फल भी वृक्ष से लगा है--अगर हम वृक्ष से लगे होने को ध्यान में रखें तो दोनों में कोई भी फर्क नहीं है। फर्क इतना ही है कि अधपका फल पकने के करीब आ रहा है, कच्चा फल बहुत दूर है। मगर दोनों वृक्ष से लगे हैं। निर्वाण तो एक ही क्षण में घट जाता है। लेकिन एक व्यक्ति है जिसने कभी ध्यान नहीं किया, कभी प्रेम नहीं किया--कच्चा फल है। वह भी अभी संसार में है। फिर किसी ने प्रेम किया, किसी ने ध्यान किया-- वह भी अभी टूट नहीं गया है, अभी वह भी पक कर गिर नहीं गया है, वह भी संसार में है। अगर संसार में ही होने को देखें, तो दोनों संसार में हैं। लेकिन अगर उस भविष्य की घटना को हम ख्याल में रखें तो एक कुछ कदम आगे बढ़ा है गिरने के करीब, और दूसरा अभी बहुत दूर खड़ा है। एक कच्चा फल है, एक अधपका फल है।
बौद्धों के विचार में ध्यान की तीन अवस्थाएं हैं। पहली अवस्था में शून्यता उत्पन्न होती है। काम कुछ भी करते रहो, भीतर एक शून्यभाव छाया रहता है। जापान में उसे वे कहते हैं, झिन्माई--पहली अवस्था। कभी-कभी खुद को भी पता नहीं चलती वह अवस्था; क्योंकि बड़ी महीन और सूक्ष्म है, और अचेतन तल पर होती है। ध्यान करने वाले व्यक्ति को अक्सर हो जाती है झिन्माई। मतलब उसका इतना है कि वैसा व्यक्ति बाहर काम भी करता रहता है, लेकिन बाहर उसका रस नहीं रह जाता। बोलता है, उठता है, बैठता है, दुकान करता है, लेकिन रस उसका बाहर खो गया होता है। बस कर रहा होता है, किसी तरह कर रहा होता है। कर्तव्य निभाता है। सारा रस भीतर चला गया है, और भीतर एक शून्य का अनुभव होने लगा है, जैसे कुछ भी नहीं है; एक शांति गहन होने लगी है। यह पहली अवस्था है।
दूसरी अवस्था को झेन में सतोरी कहते हैं। दूसरी अवस्था तब है जब यह शून्य कभी-कभी इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि इस शून्य का बोध होता है, जागरण होता है। अचानक एक क्षण को जैसे बिजली कौंध जाए, ऐसा भीतर शून्य कौंध जाता है। मगर ऐसी कौंध कौंधती है, समाप्त हो जाती है। बिजली कौंधी, थोड़ी देर को रोशनी हो गयी--क्षणभर को--फिर रोशनी खो गयी, फिर अंधेरा हो गया।
सतोरी कई घट सकती हैं।
फिर तीसरी अवस्था समाधि की है। समाधि ऐसी अवस्था है, बिजली जैसी नहीं, सूरज के उगने जैसी। उग गया तो उग गया। फिर ऐसा नहीं कि फिर बुझा, फिर उगा, फिर डूबा--ऐसा नहीं है। उग गया।
समाधि अंतिम अवस्था है। फल पक गया। समाधि उस क्षण का नाम है जो निर्वाण के एक क्षण पहले की हैः फल पक गया, बस अब टूटा, अब टूटा। और तब फल टूट गया। फल का टूट जाना निर्वाण है।
लेकिन इस निर्वाण तक पहुंचने में पहले ध्यान या प्रेम के माध्यम से
एक शून्यता साधी जाएगी; एक भीतर ठहरना आ जाएगा; बाहर से हटना हो जाएगा; ऊर्जा भीतर की तरफ बहने लगेगी; बाहर एक तरह की अनासक्ति छा जाएगी; करने को सब किया जाएगा लेकिन करने में कोई रस न रह जाएगा; हो जाए तो ठीक, न हो जाए तो ठीक; सफलता हो कि असफलता, सुख मिले कि दुख--बराबर होगा; व्यक्ति ऐसे जीएगा जैसे नाटक में अभिनेता; अभिनय करेगा बस।
यह संन्यास का पहला कदम हैः अभिनेता हो जाना। करते सब वही हैं जैसा कल
भी करते थे, लेकिन अब ऐसा करते हैं जैसा अपना कोई लेना-देना नहीं है। जरूरत है, कर रहे हैं। कल करते थे किसी गहरी आसक्ति और लगाव से, अब करते हैं केवल कर्तव्य से।
फिर दूसरी अवस्था है, जब कभी-कभी झलकें मिलेंगी। अचानक द्वार खुल जाएगा। अचानक तुम रूपांतरित हो जाओगे; एक तल से दूसरे तल पर पहुंच जाओगे। वह दिखायी पड़ेगा दूर का शिखर--बादल हट गए हैं और गौरीशंकर का उत्तुंग शिखर दिखायी पड़ गया है; बादल हट गए हैं और चांद दिखायी पड़ गया है; फिर बादल घिर गए हैं। ऐसा कई बार होगा।
झेन फकीर रिंझाई के संबंध में कहा जाता है कि उसे अट्ठारह सौ सतोरी अनुभव हुईं समाधि के पहले। अट्ठारह सौ भी सिर्फ प्रतीक हैं, अट्ठारह हजार

भी हो सकती हैं। तो कितनी ही बार झलक हो सकती है। लेकिन झलक सिर्फ खबर है इस बात की कि मैं करीब आ रहा हूं, करीब आ रहा हूं; लेकिन अभी आ नहीं गया हूं। मंजिल दिखायी पड़ने लगी है। फिर कई बार खो भी जाती है मंजिल, क्योंकि मन के भावावेग बदलते रहते हैं। कभी ध्यान सध जाता है किसी दिन, मन प्रफुल्ल होता है, शांत होता है, आनंदित होता है। सध जाता है किसी दिन। किसी दिन नहीं सधता, चूक जाता है, बड़ी दूरी हो जाती है। ऐसा कई बार पास आना और कई बार दूर होना हो जाता है।
लेकिन, जिसको झलकें मिलने लगीं, जरा-जरा स्वाद आने लगा, वह अब भटक नहीं सकता। अब एक बात तो पक्की हो गयी कि जिसकी तलाश है, वह है; जिसको खोजते थे, वह कल्पना नहीं है; जिसकी तरफ चले थे, वह चाहे मिले न जन्मों-जन्मों तक भी अब, लेकिन है। श्रद्धा का आविर्भाव होता है। और जैसे ही श्रद्धा का आविर्भाव होता है, सतोरी धीरे-धीरे समाधि बनने लगती है। श्रद्धा और सतोरी का जुड़ जाना समाधि है। एक बात तो पक्की हो गयी, बिजली चमक गयी अंधेरी रात में, दिखायी पड़ गया कि रास्ता है, और दूर मंदिर के कलश भी दिखायी पड़ गए। फिर बिजली खो गयी, अंधेरा फिर हो गया; लेकिन अब एक बात पक्की है कि मंदिर है। उसके स्वर्ण-कलश दिखायी पड़ गए। एक बात पक्की है कि रास्ता है। फिर टटोल रहे हैं अंधेरे में, मिले न मिले; कभी मिल भी जाए, कभी फिर भटक जाए--लेकिन रास्ता है, मंदिर है। अब चाहे जन्म-जन्म लग जाएं, लेकिन हम व्यर्थ ही नहीं खोज रहे हैं। सत्य है। परमात्मा है। आत्मा है। निर्वाण है।
और जैसे ही यह अनुभव होने लगता है कि है, वैसे-वैसे कदमों का बल बढ़ जाता है; खोज की त्वरा बढ़ जाती है; सब कुछ दांव पर लगा देने की हिम्मत आ जाती है।
फिर तुम मंदिर के द्वार पर पहुंच गए। सूरज उग गया। अब तुम द्वार पर खड़े हो। सब सीढ़ियां पूरी हो गयीं। यह समाधि की अवस्था है--प्रवेश के एक क्षण पहले। इसके बाद निर्वाण है। इसके बाद फल गिर जाता है। तुम प्रविष्ट हो गए।
द्वार पर भी कोई रुक सकता है। द्वार पर रुकने का कारण वासना नहीं होती, द्वार पर रुकने का कारण करुणा हो सकती है।
बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। निर्वाण के द्वार पर वे आ गए हैं। द्वार खोल दिया गया। लेकिन वे पीठ फेर कर खड़े हो गए हैं। कहानी है, पर बड़ी मधुर है, और बुद्धत्व के संबंध में बड़ी सूचक है। द्वारपाल ने कहा, आप भीतर आएं। हम कितने युगों से आपकी प्रतीक्षा करते हैं। कितने युगों से आपका निरीक्षण करते हैं कि प्रति कदम आप आते जा रहे हैं करीब। बुद्ध ने कहा, लेकिन मेरे पीछे बहुत लोग हैं। अगर मैं खो गया शून्य में, तो उनके लिए मैं कोई सहारा न दे सकूंगा। मुझे यहीं रुकने दो। मैं चाहूंगा कि सब मुझसे पहले प्रवेश हो जाएं निर्वाण में, फिर अंतिम मैं रहूं।
ऐसा होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा हो नहीं सकता। लेकिन यह महाकरुणा का प्रतीक है। कल मैं एक कहानी पढ़ रहा था एक यहूदी फकीर की, जो इससे भी मीठी है।
झूसिया नाम का हसीद फकीर मरा। वह स्वर्ग के द्वार पर खड़ा है, निर्वाण
के द्वार पर। वह भीतर नहीं जाता। वह कहता है, भीतर जाकर भी क्या करेंगे! जो पाना था वह पा लिया। और फिर अभी बहुत लोग हैं जिनको मेरी जरूरत है। स्वयं परमात्मा चिंतित हो गया है। कोई रास्ता नहीं है झूसिया को समझाने का कि तुम भीतर आ जाओ। परमात्मा सिंहासन पर बैठा है। द्वार से झूसिया देख रहा है। परमात्मा कहता है, भीतर आ जाओ। झूसिया कहता है, क्या करेंगे? देख लिया, पा लिया। अभी दूसरों को सहायता देनी है। जो मिला है उसे बांटना है। मुझे यहीं रुकने दें। मुझ पर दया करें। द्वार बंद कर लें।
कोई रास्ता न देखकर, परमात्मा यहूदियों की किताब "तोरा" अपने हाथ में रखे है, उसने किताब छोड़ दी। वह किताब जमीन पर गिरी। पुरानी आदतवश झूसिया भागा; क्योंकि "तोरा" गिर जाए तो उसे उठाना चाहिए। वह किताब उठाने गया, दरवाजा बंद कर दिया गया। तब से वह बाहर नहीं निकल पाया। परमात्मा को तरकीब लगानी पड़ी--"तोरा" गिराना पड़ा।

कहानी बड़ी मीठी है। झूसिया वहीं रुक जाना चाहता था--समाधि पर; निर्वाण
तक नहीं जाना चाहता था। लेकिन कोई उपाय करना ही पड़ेगा, समाधि पर कोई रुक नहीं सकता। फल जब पक गया तो गिरेगा ही। फल कितना ही चाहे, पर अब रुकने का कोई उपाय न रहा। पक जाना गिर जाना है। समाधिस्थ हो जाना निर्वाण हो जाना है।
पर निर्वाण के पहले ये तीन घटनाएं घटती हैं। पहले एक सातत्य बनता है भीतर अचेतन मन में; फिर चेतन में झलकें आनी शुरू होती हैं; फिर कोई द्वार पर खड़ा हो जाता है; फिर सब खो जाता है। फिर न जानने वाला बचता, न जाना जाने वाला बचता; न ज्ञाता, न ज्ञेय; न भक्त, न भगवान; फिर वही रह जाता है जो है। कृष्णमूर्ति जिसे कहते हैं, दैट व्हिच इज। वही रह जाता है जो है। निःशब्द! अनिर्वचनीय! वही मंजिल है। वही पाना है।
पाने के दो उपाय मैंने तुमसे कहेः या तो प्रेम से। संभव हो सके, तो प्रेम का रास्ता बड़ा हरा-भरा है, वहां इंद्रधनुष हैं और फूल खिलते हैं और झरनों में कल-कल नाद है, और गीत का गुंजार है, और नृत्य भी है। अगर नहीं, तो ध्यान का मार्ग है। ध्यान का मार्ग थोड़ा मरुस्थल जैसा है। उसका अपना सौंदर्य है। उसकी अपनी स्वच्छता है। उसका अपना विस्तार है। लेकिन थोड़ा रूखा-सूखा है। वहां काव्य नहीं है, हरियाली नहीं है, मरूद्यान नहीं है। पर प्रत्येक को अपने को ध्यान में रखना है कि उसको कौन सी बात ठीक पड़ेगी। स्त्रैण चित्त प्रेम के मार्ग से जा सकेगा। और कई पुरुषों के पास स्त्रैण चित्त है; वे भी प्रेम से ही जा सकेंगे। पुरुष चित्त ध्यान से जा सकेगा। और कई स्त्रियों के पास पुरुष चित्त है; वे भी ध्यान से ही जा सकेंगी। इसलिए शरीर से स्त्री और पुरुष होने पर ध्यान मत देना। अपने चित्त को पहचानने की फिकर करना। कहीं ऐसा न हो कि तुम जा सकते थे प्रेम से और ध्यान की कोशिश करो, तो फिर तुम सफल न हो पाओगे। तुम्हारे स्वभाव के विपरीत कुछ भी सफल नहीं हो सकता।
इसलिए मार्ग पर साधकों के लिए सबसे बड़ी जो बात है, वह यही जान लेना है
कि उनका क्या प्रकार है। और इसलिए गुरु अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि तुम कैसे पहचानो कि क्या तुम्हारा प्रकार है? अपने से इतनी दूरी नहीं कि अपना निरीक्षण कर सको। कोई चाहिए, जो रास्ते से गुजर चुका हो। कोई चाहिए, जो तुम्हें दूर से खड़े होकर देख सके और पहचान सके, और तुमसे कह सके कि तुम्हारा प्रकार क्या है। क्योंकि सबसे बड़ी बात वहीं घटती है। अगर प्रकार ठीक तालमेल खा गया, तो जो जन्मों में नहीं घटता वह क्षणों में घट जाता है। और अगर तुम प्रकार के विपरीत चेष्टा करते रहे, तो जो क्षणों में घट सकता था वह जन्मों में भी नहीं घटता है।
मेरे अनुभव में, मेरे देखने में, तुम अपने पापों या कर्मों के कारण इतने नहीं भटकते हो, जितना गलत विधि चुनने के कारण भटकते हो। अनुकूल को चुन लेना बड़ा आवश्यक है। प्रतिकूल को चुनना ऐसा ही है जैसे कोई गुलाब का फूल कमल होने की कोशिश कर रहा हो। वह कमल तो हो ही न पाएगा, गुलाब भी न हो पाएगा, क्योंकि कोशिश में सब ऊर्जा व्यर्थ हो जाएगी। गुलाब का फूल गुलाब ही हो सकता है। कमल का फूल कमल ही हो सकता है।
मगर न तो कमल का सवाल है न गुलाब का, असली सवाल खिल जाने का है। प्रेम
से खिलो कि ध्यान से खिलो, कोई फर्क नहीं पड़ता। आखिरी हिसाब में खिल गए, बंद-बंद न मर गए। बंद-बंद मरे तो वापस आना पड़ेगा, खिलकर मरे तो वापसी नहीं है। जो खिलकर गया, वह सदा के लिए गया। वह फिर स्वीकार हो गया।
इसलिए तो हम परमात्मा के चरणों में जाकर फूल चढ़ाते हैं। वह सिर्फ प्रतीक है कि उसके चरणों में केवल वे ही स्वीकार होंगे जो फूल की तरह खिलकर जाते हैं। जो बीज की तरह ही हैं उनको तो वापस आना पड़ेगा।
निर्वाण का अर्थ है, खिल जाना। जो भीतर था, वह प्रगट हो गया; जो अनभिव्यक्त था, वह अभिव्यक्त हो गया; जो गीत अनगाया पड़ा था, वह गा लिया गया; जो नाच अननाचा पड़ा था, वह नाच लिया गया।
जिस दिन भी तुम्हारी नियति पूरी हो जाती है, तुम सौरभ से भर जाते हो, तुम्हारी पखुड़ियां खिल जाती हैं--उसी दिन तुम स्वीकार हो जाते हो। तुमने

अर्जित कर लिया मोक्ष। तुमने कमा लिया मोक्ष। अस्तित्व अपनी बांहें फैलाकर तुम्हारा स्वागत करता है।
सारा अस्तित्व उत्सव मनाता है जिस दिन एक व्यक्ति भी बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। क्योंकि सारा अस्तित्व सदियों तक प्रतीक्षा करता है, तब कहीं करोड़ों लोगों में से कोई एक पहुंच पाता है। और सभी पहुंचने के हकदार थे। सभी पहुंचने को ही हैं। सभी को पहुंचना ही चाहिए। दुर्भाग्य है कि लोग न मालूम दूसरे कामों में उलझ जाते हैं, व्यर्थ के कामों में उलझ जाते हैं; सार को नहीं पहचान पाते, असार को नहीं पहचान पाते।
बुद्ध कहते हैं, जिसने सार को सार की तरह जान लिया, असार को असार की तरह जान लिया--वही, वही उपलब्ध हो पाता है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
नौवां प्रवचन

यात्री, यात्रा, गंतव्यः तुम्हीं

मा प्रमादमनुयुंचेथ मा कामरतिसंथवं।
अप्पमत्तो हि झायंतो पप्पोति विपुलं सुखं।। 24।।

पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पंडितो।
पांंपासादमारुयूह असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठो" व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति।। 25।।

अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।
अबलस्सं" व धीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो।। 26।।

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
संजोजनं अपुं थूलं डहं अग्गी" व गच्छति।। 27।।

अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय निब्बानस्सेव संतिके।। 28।।

ढूंढ़ता फिरता हूं ऐ इकबाल अपने आपको
आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंजिल हूं मैं
खोज किसकी है? किसी और की नहीं, अपनी ही। पाना किसे है? वह बाहर नहीं है, भीतर है। जिसे हम तलाश रहे हैं वह हमारा स्वभाव है। इसलिए यात्रा पदयात्रा नहीं है, यात्रा आत्मयात्रा है। यात्रा किसी और तक पहुंचने की नहीं है, यात्रा अपने तक ही पहुंचने की है। जो मिला ही हुआ है, उसके प्रति जागना है। संपदा खोजनी नहीं है, सिर्फ आंख खोलनी है।
ढूंढ़ता फिरता हूं ऐ इकबाल अपने आपको
आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंजिल हूं मैं
यात्री भी तुम्हीं हो; यात्रा भी तुम्हीं हो; यात्रा का लक्ष्य और गंतव्य भी तुम्हीं हो। इसलिए बिना कहीं जाए भी पहुंचना हो सकता है। जहां बैठे हो वहीं बैठे-बैठे भी पहुंचना हो सकता है। जरा भी बिना हिले-डुले भी पहुंचना हो सकता है।
और जो बाहर खोजने गए वे भटक गए। यात्रा पहले कदम से ही गलत हो गयी। जिन्होंने सोचा बाहर है, पहले से ही चूक गए। कहीं जाना नहीं, अपने पास आना है। कहीं खोजना नहीं, अपने भीतर जागना है। और जिसे यह बात समझ में आ गयी, वह तथाकथित धर्म के जाल से मुक्त हो जाता है।
और ध्यान रखना, अधर्म से मुक्त होना कठिन नहीं है, धर्म से मुक्त होना कठिन है। अधर्म तो अंधेरा जैसा है, दीया जलते ही अपने आप नष्ट हो जाता है। लेकिन तथाकथित धर्म राह पर पड़ी पत्थर की चट्टानों जैसा है। सिर्फ दीए के जलने से ही दूर नहीं हो जाता है। और तथाकथित धर्म का बड़ा गहरा जाल प्रत्येक व्यक्ति के पास है। तुम्हें ऐसा व्यक्ति खोजना मुश्किल होगा जो न हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है, न सिक्ख है। कोई न कोई जाल पास है। खालिस आदमी खोजना मुश्किल है।
और खालिस आदमी ही स्वयं तक आ सकता है। जिसे तुमने धर्म समझा है, वह तुम्हारे बाजार का ही हिस्सा है। और जिसे तुमने मंदिर समझा है, वह परमात्मा के नाम की दुकान है।
कुछ दिन पहले मैं एक कहानी पढ़ता था। एक गांव में एक महाकंजूस था। यहूदी। या कहें मारवाड़ी। उसने कभी एक पैसा दान न दिया। गांव में भिखारी भी उसके घर की तरफ नहीं जाते थे। अगर कोई नया भिखारी उसके घर की तरफ जाता, तो लोग समझ जाते कि नया भिखारी है। जिसको थोड़ा भी पता है, वह कभी भीख मांगने उसके द्वार पर न जाएगा। उसने कभी दिया ही नहीं। वह भिखारी से भी कुछ छीन सकता था। देना उसकी आदत न थी।

लेकिन एक दिन वह गांव के धर्मगुरु के द्वार पर पहुंचा। यहूदी धर्मगुरु। और उसने कहा कि आज मेरे लिए कुछ प्रार्थना करनी होगी। धर्मगुरु ने सोचा कि अब प्रार्थना करवाने आया है, तो कुछ दान करवा लेने का मौका है। लेकिन यहूदी कंजूस भी सोच-विचार कर ही आया था। पूछा धर्मगुरु ने, क्या प्रार्थना करनी है? उस कंजूस ने कहा कि मेरी पत्नी बीमार पड़ी है, मर जाए, यह प्रार्थना करनी है। धर्मगुरु ने कहा, दान क्या दोगे? उस कंजूस ने कहा कि जीवन अगर मांगता, तब तो दान मांगना उचित भी था। मौत मांग रहा हूं; इसके लिए भी दान देना पड़ेगा? कुछ तो संकोच करो--वह मौत मांगते संकोच नहीं कर रहा है--कुछ तो थोड़ा ख्याल करो, कुछ तो दया करो।
धर्मगुरु ने देखा कि इतना आसान नहीं है मामला। उसने कहा, कुछ भी हो, मौत हो कि जीवन हो, प्रार्थना तो तभी हम करेंगे जब कुछ दान हो। उसने कहा, अच्छा एक रुपया दे देंगे। बहुत धर्मगुरु ने जोर डाला तो उसने कहा, दो रुपया दे देंगे। ऐसे कुछ बात बनती न दिखी तो धर्मगुरु ने कहा, सुनो! मौत की प्रार्थना की नहीं जा सकती। कोई उल्लेख ही नहीं है शास्त्र में कि किसी की मौत के लिए प्रार्थना कभी की गयी हो। परमात्मा से लोग जीवन की प्रार्थना करते हैं, मौत की नहीं। तुम मुझे क्षमा करो। यह काम मुझसे न हो सकेगा। महाकंजूस ने कहा, छोड़ो भी ये बातें कानूनी, पांच रुपए दे सकता हूं। धर्मगुरु बोला कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता, प्रार्थना तो जीवन की ही हो सकती है। लेकिन एक तरकीब तुम्हें मैं बता देता हूं--क्योंकि कानून में सब जगह तरकीब तो होती ही है--शास्त्रों में ऐसा कहा है कि अगर कोई आदमी मंदिर को दान का वचन दे और तीन महीने के भीतर दान न दे, तो उसकी पत्नी मर जाती है-- दंडस्वरूप। तो तुम दान की घोषणा कर दो। देने की तो कोई जरूरत ही नहीं है। पत्नी तीन महीने के भीतर मर जाएगी। तो उस महाकंजूस ने कहा कि जब देना ही नहीं है, तो उसने कहा तब ठीक है, तब एक लाख रुपया दान दे देंगे। जब देना ही नहीं है! धर्मगुरु ने कहा, जब देना ही नहीं है तो क्या लाख क्या दस लाख? अरे, दस लाख ही कह दो! थोड़ा सकुचाया, क्योंकि कल्पना में भी देना कष्टकर मालूम होता है। उसने कहा, दस लाख ज्यादा हो जाएंगे। पर धर्मगुरु ने कहा, जब देना ही नहीं है, तो जैसा एक लाख वैसा दस लाख। वह बड़े बेमन से राजी हुआ। लौट गया घर।
पत्नी मरी तो नहीं; बीमार थी, ठीक हो गयी। वह बड़ा चकित हुआ। तीन महीने पूरे हुए, वह वापस आया। उसने कहा कि यह नियम तो काम नहीं किया। धर्मगुरु ने कहा कि देखो, शास्त्र कहता है--दंडस्वरूप, एज ए पनिशमेंट। मगर तुम तो चाहते हो कि पत्नी मर जाए। इसलिए यह तुम्हें दंड तो न होगा, यह तो पुरस्कार हो जाएगा। इसलिए प्रार्थना व्यर्थ गयी। अगर तुम सच में ही चाहते हो पत्नी मर जाए, तो तुम अब ऐसा करो कि जाकर बाजार से कुछ हीरे-जवाहरात खरीदो, कुछ सुंदर साड़ियां खरीदो, पत्नी को भेंट करो। पत्नी तुम्हारे प्रति इतनी प्रेम से भर जाए और तुम भी इतने प्रेम से भर जाओ कि तुम्हारे प्राण कहने लगें कि नहीं, अब मत मार; हे परमात्मा, अब मत मारना! तब वह मारेगा, कि तभी तो दंड हो सकता है। नहीं तो नियम... ।
यह बात जंची। पर उसने कहा, हीरे-जवाहरात मैंने कभी खरीदे नहीं। धर्मगुरु ने कहा, क्या हर्ज है, पत्नी तो मर ही जाएगी, तुम बेच देना। थोड़ा लाभ ही भला हो जाए, नुकसान तो क्या होगा! चीजों के दाम तो रोज बढ़ते ही जाते हैं।
यह बात जंची। वह गया। उसने हीरे-जवाहरात खरीदे। साड़ियां खरीदीं बहुमूल्य। कभी खरीदकर घर लाया न था। पत्नी तो हैरान हो गयी कि इसमें ऐसा रूपांतरण हुआ। निश्चित ही धर्मगुरु की कृपा से हुआ होगा। मंदिर गया, इसीलिए हुआ होगा। उसने भी पहली दफा उसे प्रेम से देखा। और पत्नी उसे इतना प्रेम करने लगी कि उस कंजूस को भी पहली दफा एहसास हुआ कि यह पत्नी तो बड़ी अनूठी है। मैं नाहक ही इसके मरने की प्रार्थना करता था। तब वह डरा। अब उसके मन में यह होने लगा कि कहीं मर न जाए। और तीन महीने करीब होने के पास आ रहे थे। और पत्नी बीमार पड़ गयी। तो वह घबड़ाया हुआ पहुंचा धर्मगुरु के पास। उसने कहा, यह तो मुसीबत हो गयी। नियम काम करता मालूम पड़ रहा है; पत्नी

बीमार पड़ गयी। अब कैसे बचाएं उसे? धर्मगुरु ने कहा कि वह जो दस लाख दान दिया था, वह दान दे दो। अब तो बचने का और कोई उपाय नहीं।
जिनको तुम मंदिर कह रहे हो, वे तुम्हारी ही दुकान के आसपास बड़ी दुकानें हैं। वहां भी व्यापार के वही नियम काम कर रहे हैं। तुम्हारे धर्मगुरु तुमसे भिन्न नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। नहीं तो तुम्हारे धर्मगुरु कैसे होंगे? तुम्हारे धर्मगुरु होने के लिए तुम्हारे जैसा ही होना जरूरी है। तुम्हारा ही गणित, तुम्हारा ही हिसाब, तुम्हारे ही मन का व्यवसाय। तुम्हारा मंदिर तुम्हारे जैसा है। ध्यान रखना, तुम्हारा मंदिर तुम्हारा है, परमात्मा का नहीं। तुमने ही बनाया है। और तुमने जो मूर्ति स्थापित की है, वह तुम्हारी ही मूर्ति होगी। परमात्मा की तो मूर्ति का तुम्हें पता भी कहां है! और तुम जिस मूर्ति के सामने झुके हो, वह अपनी ही धारणाओं के सामने झुकना है।
परमात्मा की कोई मूर्ति बनानी जरूरी नहीं है, क्योंकि वह तो तुममें मूर्तिमान हुआ है। तुम्हें कहीं बाहर झुकने का सवाल नहीं है, भीतर झुकने की कला आ जाए। ध्यान रखना, किसी के सामने भी झुकने का सवाल नहीं है। बस झुकने की कला आ जाए; झुकना तुम्हारा स्वभाव बन जाए। जिस दिन भी तुम भीतर झुकोगे, तुम पाओगे मंदिर के सामने खड़े हो। जिस दिन भी भीतर तुम्हारी अकड़ टूटेगी, अहंकार गिरेगा, तुम पाओगे यह चिन्मय मंदिर तो सदा से भीतर था। मैं मृण्मय मंदिरों में खोजता था, आदमी के बनाए घरों में पुकार रहा था, और जिसे मैं खोज रहा था वह मेरे भीतर सदा मौजूद था।
ढूंढ़ता फिरता हूं ऐ इकबाल अपने आपको
आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंजिल हूं मैं
तुम ही हो भगवान और तुम ही हो भक्त। तुम ही हो पूजा, पुजारी, पूज्य। और
जब तक तुम्हें यह बात स्मरण न आ जाए, तब तक तुम भटकते ही रहोगे। इसलिए बुद्ध न तो परमात्मा की बात करते हैं, न प्रार्थना की बात करते हैं, बुद्ध केवल ध्यान की बात करते हैं। अप्रमाद।
"प्रमाद में मत लगे रहो। कामरति का गुणगान मत करो। प्रमादरहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है।"
एक-एक शब्द समझ लेने जैसा है।
"प्रमाद में मत लगे रहो।"
जैसे तुम जी रहे हो, वह जीवन प्रमाद का है। प्रमाद का अर्थात मूर्च्छा का। वह जीवन तंद्रा का है। कभी-कभी तुम भी जागते हो तो तुम्हें भी लगता है, तुम व्यर्थ ही जी रहे हो। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसे कभी-कभी झलक न आती हो कि मैं क्या व्यर्थ जी रहा हूं! किसी दिन सुबह उठकर ऐसा लगता हो-- क्या सार है इसमें? रोज उठता हूं, रोज जागता हूं, दौड़ता हूं; बाजार है, दौड़-धूप है, आपाधापी है, कमाना है, सांझ फिर सो जाना है, फिर सुबह उठ आना है। सुबह होती है शाम होती है
उम्र यूं ही तमाम होती है
लेकिन किसलिए? क्या प्रयोजन है इस सब का? एक दिन ऐसे ही दौड़ते- दौड़ते राह में गिर जाऊंगा। धूल धूल से मिल जाएगी। क्या परिणाम होगा इस सब यात्रा का? और तुम कोई पहले नहीं हो। तुम जिस धूल पर चल रहे हो, वह न मालूम कितने लोगों को अपने में समा चुकी है। तुम जिसे रास्ता कहते हो, वहां कितने लोगों का मरघट नहीं बन गया है!
थोड़े गौर से अपने चारों तरफ देखो तो दिखायी पड़ेगा--
आग बुझी हुई इधर टूटी हुई तनाब उधर
क्या खबर इस मुकाम से गुजरे हैं कितने कारवां
जरा गौर से देखो अपने चारों तरफ।
आग बुझी हुई इधर टूटी हुई तनाब उधर
कितने खंडहर पड़े हैं। कहीं आग बुझी पड़ी है। जैसे किसी ने कभी जल्दी ही थोड़े ही समय पहले रोटी बनायी हो। चीजें टूटी-फूटी पड़ी हैं। कोई गुजरा है। क्या खबर इस मुकाम से गुजरे हैं कितने कारवां

कितने लोग, कितने यात्री इस मुकाम से गुजर चुके हैं; और खो गए। उनका कोई चिह्न भी खोजे नहीं मिलता। ऐसे ही तुम भी खो जाओगे। यह बोध सभी को कभी न कभी पकड़ लेता है।
लेकिन तुम इसे झुठला देते हो; तुम अपने को सम्हाल लेते हो। तुम्हारा सम्हालने का मतलब क्या है? तुम अपने को सम्हलने नहीं देते। जब कभी सम्हलने का क्षण आता है, तुम फिर अपने पुराने ढांचे में लग जाते हो; दौड़कर दुकान पर पहुंच जाते हो, या रेडियो खोल लेते हो, या अखबार पढ़ने लगते हो, या किसी से बातचीत करने में लग जाते हो। घबड़ाहट होती है कि ये क्षण खतरनाक हो सकते हैं। क्योंकि इन्हीं क्षणों में वैराग्य जन्मता है, इन्हीं क्षणों में संन्यास का जन्म होता है। तुम यहां-वहां उलझा लेते हो ताकि ये खतरनाक बातें तुम्हें दिखायी न पड़ें। तुम किसी झूठ में तल्लीन हो जाते हो। सत्य अगर जगाने को तुम्हारे पास भी आता है, तो तुम करवट ले लेते हो, फिर नयी नींद में खो जाते हो।
ऐसा आदमी तो खोजना ही मुश्किल है जिसको कभी न कभी यह दिखायी न पड़ता हो
कि यह सब व्यर्थ है जो मैं कर रहा हूं। लेकिन फिर भी आदमी वही किए चला जाता है जो व्यर्थ दिखायी पड़ता है। प्रकाश के किन्हीं क्षणों में, ज्योतिर्मय चैतन्य की किसी अवस्था में, जब सब व्यर्थ दिखायी पड़ता है, तब फिर तुम कैसे अंधेरे में उतर आते हो बार-बार?
इसे बुद्ध प्रमाद कहते हैं। प्रमाद का अर्थ हैः जानते हो, फिर भी जो जानते हो उसके विपरीत जीते हो। जानते हो आग में हाथ डालने से हाथ जलेगा, फिर-फिर डालते हो। पुराने घाव भी नहीं मिट पाते और फिर हाथ डाल देते हो। निश्चित ही तुम होश में नहीं हो सकते, बेहोश हो; कोई बड़ी गहरी तंद्रा में जी रहे हो।
"प्रमाद में मत लगे रहो।"
ये जो कभी-कभी प्रकाश के क्षण तुम्हारे जीवन में आते हैं, इनको सहारा दो, सहयोग दो। इनको घना करो। इनको पुकारो। इनकी प्रार्थना करो। इनका स्वागत करो। इनको सम्हालो अपने भीतर। इनको संजोओ। क्योंकि इनसे बड़ी कोई संपदा नहीं है। और अगर तुम इनके साथ सहयोग करो, स्वागत करो, इन्हें स्वीकार करो, अंगीकार करो, तो ये क्षण बढ़ते जाएंगे। इन क्षणों के बढ़ते जाने का नाम ही ध्यान है।
ध्यान का अर्थ है, जागा हुआ चित्त। प्रमाद का अर्थ है, सोया हुआ चित्त। इसलिए बुद्ध और महावीर ध्यान के लिए अप्रमाद शब्द का प्रयोग करते हैं।
"प्रमाद में मत लगे रहो।"
काफी लगे रहे हो। और तुम हजार बहाने खोज लेते हो लगे रहने के। तुम कहते हो अभी... अभी बच्चे बड़े हो रहे हैं। तुम कहते हो, अभी तो महत्वाकांक्षा के दिन हैं, थोड़ा और कमा लूं। तुम कहते हो, अभी तो जवान हूं, ये धर्म और वैराग्य, ये तो बुढ़ापे की बातें हैं।
एक युवक को मैंने संन्यास दिया। उसका बूढ़ा बाप आ गया। बूढ़े बाप की उम्र होगी कोई सत्तर-पचहत्तर। उसने कहा, आप भी क्या अन्याय कर रहे हैं? जवान आदमी को संन्यास देते हैं? शास्त्रों में तो कहा है कि संन्यास तो अंत में लेने की बात है। मैंने कहा, छोड़ो, तुम्हारे लड़के का संन्यास वापस ले लेंगे। तुम संन्यास लेने को तैयार हो? तुम तो पचहत्तर वर्ष के हुए। कब आखिर आएगा? वह आदमी मुस्कुराने लगा। उसने कहा, आपकी बात ठीक है; लेकिन अभी बहुत दूसरे काम भी हैं, अभी दूसरी उलझनें भी हैं। तो मैंने कहा कि इस लड़के का मैं संन्यास वापस ले सकता हूं, अगर तुम संन्यास लेने को तैयार हो। तुमने ही कहा।
मगर वह आदमी सिर्फ तर्क दे रहा था, लड़के को संन्यास से बचाने को। खुद संन्यास लेने के लिए वह तर्क काम का नहीं था। लोग जवान रहते हैं, तब कहते हैं, अभी तो जवान हैं। और जब बूढ़े हो जाते हैं, तब वे कहते हैं, अब तो बूढ़े हो गए।
जब कश्ती साबित-ओ-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे

जब नाव जवान थी--जब कश्ती साबित-ओ-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी--
तब कौन फिक्र करता था किनारे की, कौन आकांक्षा करता था किनारे की? तब तो तूफानों से जूझ लेने का मन था।
जब कश्ती साबित-ओ-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर...
अब बुढ़ापा आ गया, अब नाव जराजीर्ण हो गयी।
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे
प्रमाद से भरा चित्त अपने सोने के लिए उपाय ही खोजता रहता है। जवान हो, तब कहता है अभी जवान हैं। बूढ़ा हो जाए, तो कहता है अब बूढ़े हो गए, अब क्या कर सकेंगे? बच्चे बच्चे हैं, कैसे संन्यस्त हो जाएं? जवान जवान हैं, अभी तो जिंदगी बहुत शेष है। बूढ़े बूढ़े हो गए, अब तो कुछ शेष ही न रहा। तुम प्रमाद के लिए तर्क खोजते हो।
प्रमाद को जो तर्क सहारा देता है, उसी को शास्त्रों ने कुतर्क कहा है। प्रमाद से जो जगाता है, उसी तर्क को शास्त्रों ने सुतर्क कहा है। जो तर्क तुम्हें नींद में डुबाए रखता है, वह आत्मघाती है, वह जहर है। उसमें दबे-दबे तुम मर जाओगे। उसमें बहुत मर चुके हैं। तर्क का उपयोग अपने को जगाने के लिए करना। जैसे-जैसे तुम जागने के लिए थोड़ा रास्ता बनाओगे, तुम पाओगे जागृति के और क्षण आने लगे। तुम जितना-जितना जागृति के लिए उत्सुक होने लगोगे, प्रतीक्षा करने लगोगे, उतने ज्यादा क्षण आने लगेंगे। जिसे तुम चाहते हो, वह आ ही जाता है।

बुद्ध का एक बहुत अनूठा वचन है कि आकांक्षा सोच-विचारकर करना, क्योंकि आकांक्षाएं पूरी हो जाती हैं। जिसे तुम चाहते हो वह आ ही जाता है देर-अबेर। आकांक्षा सोच-समझकर करना।
अगर धन मांगा, धन आ जाएगा; एक दिन आ ही जाएगा। अगर पद मांगा, पद आ जाएगा;
एक दिन आ ही जाएगा। क्योंकि आदमी जो चाहता है, धीरे-धीरे उस तरफ खिंचता चला जाता है। जिसकी आकांक्षा होती है, उसका प्रयास भी होने लगता है। जिसका प्रयास होता है, उसकी प्राप्ति भी होने लगती है। सोचकर मांगना। क्योंकि जो मांगा है वह मिल जाता है। विचारकर मांगना। नहीं तो पछताओगे, नहीं तो रोओगे। क्योंकि इतने दिन मांगने में गए, इतने दिन जो मांगा उसको इकट्ठा करने में गए, अब वह मिल गया और कुछ भी नहीं मिला। कुछ और मांग लिया होता। "प्रमाद में मत लगे रहो।"
पूरी जिंदगी, जिसे तुम जिंदगी कहते हो, एक गहरी नींद है; जिसमें तुम करते बहुत हो, होता कुछ भी नहीं; चलते बहुत हो, पहुंचते कहीं भी नहीं; जिसमें तुम सिर्फ मरते हो, जीते नहीं।
"कामरति का मत गुणगान करो।"
मत गुणगान करो वासना का। क्योंकि जितना तुम गुणगान करते हो, अपने ही गुणगान से प्रभावित होते चले जाते हो। आदमी आत्म-सम्मोहन में गिरता है। तुमने कभी सोचा, तुम जिस चीज का गुणगान करते हो वही चीज तुम्हारे मन में समाने लगती है। गुणगान तुम्हारा ही तुम्हीं को प्रभावित कर जाता है। बुद्ध और महावीर दोनों ने कहा है, कामकथा मत सुनो। लेकिन कामकथा ही लोग देखते हैं, सुनते हैं। फिल्म हो, कि रेडियो हो, कि किताब हो, कि उपन्यास हो, कि कविता हो, लोग कामकथा ही सुनते और पढ़ते हैं। और फिर जब कामवासना जोर से पकड़ती है, घबड़ाते हैं। तब कहते हैं, यह तो बड़ा मुश्किल है, इससे छुटकारा कैसे हो? उसी को आरोपित करते हैं, उसी को सींचते हैं, उसी को सम्हालते हैं, और जब सम्हल जाती है और जब सारे जीवन को जकड़ लेती है, तो फिर चिल्लाते हैं, चीखते हैं कि इससे छुटकारा कैसे हो।
कामवासना वस्तुतः कुछ भी नहीं, सम्मोहन है। और जिस चीज के प्रति भी तुम सम्मोहित होते चले जाओ--सम्मोहित का अर्थ है जिसका भी तुम सुझाव अपने को देते चले जाओ--वही चीज रसपूर्ण हो जाती है। रस आदमी स्वयं डालता है। रस वस्तुओं में नहीं है, तुम डालते हो। इसलिए प्रत्येक संस्कृति, प्रत्येक सभ्यता अलग-अलग तरह की चीजों में उत्सुक हो जाती है। पर जिसमें उत्सुक हो जाती है, उसी में सौंदर्य और कामवासना का जन्म हो जाता है। हजारों

संस्कृतियां जमीन पर रही हैं, उन्होंने अलग-अलग चीजों में सौंदर्य देख लिया है। जिसमें सौंदर्य देखना चाहा है वहीं दिखायी पड़ गया है।
बुद्ध कहते हैं, "कामरति का मत गुणगान करो।"
रुको। सोचो। क्योंकि जिस चीज का भी तुम गुणगान करोगे, तुम उस तरफ अनजाने आकर्षित होते चले जाओगे। आदमी अपनी ही बातों से प्रभावित हो जाता है। तुमने कभी देखा, रास्ते में, अंधेरे में, किसी गली-कूचे से गुजरते हो, अकेले हो, डरते हो, गीत गुनगुनाने लगते हो, या सीटी बजाने लगते हो। क्या फायदा सीटी बजाने से? तुम्हारी ही सीटी है, कोई इससे कुछ सार तो न हो जाएगा। लेकिन अपनी ही सीटी की आवाज सुनकर हिम्मत बढ़ जाती है। जैसे कि अकेले नहीं हो। गाना गुनगुनाने लगते हो, अपने ही गाने की गर्मी शरीर में आ जाती है, लगता है जैसे अकेले नहीं हो।
तुमने अपने जीवन को अपने ही सुझावों से भर लिया है। तुम उन्हीं में गिरे हो, उन्हीं में दबे हो।
तुम्हारा सुझाव ही तुम्हारा संसार है। तुम्हारा आत्मसम्मोहन, ऑटोहिप्नोसिस ही तुम्हारा संसार है। और जब बुद्ध या शंकर कहते हैं, संसार माया है, तो तुम यह मत समझना कि इन वृक्षों, चांद-तारों के संबंध में कह रहे हैं। वे उस संसार के संबंध में कह रहे हैं जो तुमने अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया है, जिसको तुमने ही अपने सपनों में रंग लिया है, जिसके रंग तुम्हारे मन के दिए हुए हैं। यह संसार तो बड़ा सत्य है। लेकिन इस संसार का तो तुम्हें पता ही नहीं है। तुम्हें तो वही दिखायी पड़ता है, जो तुम देखना चाहते हो। तुम्हें तो वही दिखायी पड़ता है, जिसकी तुम कामना करते हो।
पूरी मनुष्य-जाति कामरति के गुणगान में पागल हुई जा रही है। तुम्हारे कवि, सौ में से निन्यानबे प्रतिशत कामवासना का गुणगान करते हैं। तुम्हारे उपन्यासकार कामवासना के शास्त्र लिखते हैं। तुम्हारे फिल्म-निर्माता कामवासना की फिल्में बनाते हैं। हर चीज कामवासना के आसपास घूम रही है। अगर कार भी बेचनी हो तो एक नग्न स्त्री को या सुंदर स्त्री को उसके पास खड़ा करना पड़ता है। कार नहीं बिकती, सुंदर स्त्री बिकती है। कुछ भी बेचना हो, दंतमंजन बेचना हो, कि टूथपेस्ट बेचना हो, तो एक स्त्री के हंसते हुए दांत दिखायी पड़ने चाहिए। वे दांत बिकते हैं। कुछ भी, छोटी सी चीज से लेकर बड़ी चीज तक, सारे बाजार में कामवासना बिकती है।
और फिर तुम राम को पाना चाहते हो, मुश्किल में पड़ जाते हो। अपना ही दलदल खड़ा कर लेते हो, उसमें खुद ही उलझ गए हो।
बुद्ध कहते हैं, "कामरति का मत गुणगान करो।"
क्योंकि वह गुणगान तुम्हें सुलाएगा, वह लोरी बन जाएगा और तुम प्रमाद में डूब जाओगे। अगर गुणगान ही करना हो तो निर्वाण का करो, मोक्ष की चर्चा करो। अगर गुणगान ही करना है तो सत्य का करो, सपनों का नहीं।
लेकिन सत्य को सुनने को कौन आता है? सत्य का गुणगान सुनने की किसको इच्छा है? सत्य की बात ही सुनकर कड़वी लगती है। क्योंकि सत्य तुम्हारे सपनों को तोड़ता है। सत्य दुश्मन जैसा मालूम पड़ता है।
इसलिए तो बुद्धों को हम पत्थर मारते हैं, जीसस को सूली पर लटका देते हैं, सुकरात को जहर पिला देते हैं। हम बर्दाश्त नहीं करते इन लोगों को। ये खतरनाक हैं। हम मजे से सो रहे हैं, और गहरी नींद ले रहे हैं, और बड़े मधुर सपनों में डूबे हैं, और ये नासमझ आ-आकर जगाने लगते हैं--कि जागो, सुबह हो गयी।
जैसे सर्दी की रात अगर तुमने किसी को कहा है सुबह उठा देना, हालांकि तुमने ही कहा है, लेकिन सुबह जब वह तुम्हें उठाता है तो मन में नाराजगी आती है कि यह दुष्ट आ गया। कहा तुम्हीं ने था। तो जब साधारण सर्दी की रात में सुबह उठने में ऐसी कठिनाई हो जाती है--लोग अलार्म घड़ी को उठाकर पटक देते हैं। अलार्म घड़ी का क्या कसूर है? तुम्हीं ने भरा था अलार्म, तुम्हीं ने बिस्तर के पास रखी थी! तो तुम सोचो, जो जन्मों-जन्मों की, जीवन-जीवन की तंद्रा के बाद कोई बुद्धपुरुष से तुम्हारा सौभाग्य से मिलना हो जाता है, तो तुम्हें दुर्भाग्य ही मालूम पड़ता है, कि यह और कहां की मुसीबत हो गयी! चुपचाप मजे से सपना लिए जा रहे थे, एक करवट और लेते, थोड़ा और सो लेते!

ध्यान रखो, अगर तुम बुद्धपुरुषों की वाणी भी सुनते रहो, तो भी धीरे- धीरे तुम पाओगे तुम्हारे आसपास जो झूठ का एक जाल था वह खिसकना शुरू हो गया। सत्य की एक किरण भी गहन से गहन अंधेरे को तोड़ने में समर्थ है। छोटी सी किरण, जन्मों का अंधेरा भी टूट जाता है।
"प्रमाद में मत लगे रहो। कामरति का मत गुणगान करो। प्रमादरहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है।"
एक ही सुख है। और वह सुख है स्वयं में रमण। एक ही सुख है, वह सुख दूसरे में रमण का नहीं है।
कामवासना का सार है, दूसरे में सुख की आशा। ध्यान का सार है, स्वयं में सुख की खोज। बस ये दो ही यात्राएं हैं। या तो दूसरे को खोजो, या अपने को। जिसने दूसरे को खोजा, वह अपने को न खोज पाया। जिसने अपने को खोजा, उसे दूसरे की खोज की जरूरत ही न रही। जिसने अपने को पा लिया, उसने सब पा लिया। एक सूफी फकीर हुआ बहाउद्दीन। उसकी बड़ी ख्याति थी। उसके शब्द बड़े गहरे थे। उसका व्यक्तित्व बड़ा अनूठा था। दूर-दूर से लोग यात्रा करके उसके पास आते। लेकिन सभी ठीक कारणों से आते थे, ऐसा नहीं। क्योंकि कारण तो तुम्हारे भीतर होता है।
एक आदमी उसके पास इसीलिए आ गया था और शिष्य हो गया था, कि कैसे मैं भी इतना प्रभावशाली हो जाऊं, जैसा बहाउद्दीन है। बहाउद्दीन ने उसे देखते ही से कहा कि तुम गलत कारण से सही जगह आ गए हो। उस आदमी न कहा, क्या मतलब? बहाउद्दीन ने कहा कि तुम अपने को बदलने नहीं आए हो, अपने को सजाने आ गए हो। और तुम मेरे पास ध्यान करने नहीं आए हो, तुम्हारी उत्सुकता अभी भी पर में है। तुम दूसरों को प्रभावित करना चाहते हो। और यही तो ध्यान के विरोध में है। तुम सोच-समझकर आओ। उस आदमी को बात तो सही लगी कि वह आया तो इसीलिए है कि दूसरे उससे कैसे प्रभावित हों, कैसे वह भी एक गुरु हो जाए।
गुरु होने की आकांक्षा कामवासना है, बहाउद्दीन ने कहा। क्योंकि तुम्हारी नजर इस पर है कि दूसरे मुझे कैसे मानें, कैसे पूजें? ध्यानी इस बात की चिंता करता है कि कैसे मैं स्वयं हो जाऊं। कोई पूजेगा, नहीं पूजेगा, यह उसके विचार में भी नहीं आता। कोई पूजेगा या पत्थर मारेगा, ये दूसरे समझें। ध्यानी अपने में डूबता है।
उसको बात तो लगी। अब उसको बहाउद्दीन के सामने आना भी मुश्किल हो गया।
तो वह छिपकर आने लगा यह देखने कि जरूर कोई तरकीब होगी इस आदमी की जिसकी वजह से इतने लोग प्रभावित हैं।
एक दिन बहाउद्दीन ने अपने खीसे से एक हीरा निकाला और कहा कि यह हीरा ऐसा ही मूल्यवान है जैसा सत्य मूल्यवान होता है, और यह हीरा बड़ा चमत्कारी है। उस आदमी ने सोचा कि मिल गयी बात, यह इसी हीरे की वजह से यह आदमी इतना प्रभावी है। रात छिप गया वह। जब सब सो गए, वह अंदर गया। खीसे में से बहाउद्दीन के हीरा निकालकर भाग खड़ा हुआ।
लेकिन हीरा लेकर उसने बड़ी कोशिश की, कोई प्रभावित न हो। हाथ में रखकर बैठा रहे, कोई पूजा न करे। वह बड़ा परेशान हुआ कि मामला क्या है? हीरा तो वही है।
ऐसे वर्ष बीत गए। एक दिन बहाउद्दीन उसके द्वार पर आया और उसने कहा कि
अब बहुत हो गया, अब वह हीरा वापस लौटा। उस आदमी ने कहा, लेकिन मैं इसी हीरे के बल पर बड़ा प्रभाव पैदा करने की कोशिश कर रहा हूं, कोई प्रभावित ही नहीं होता। मामला क्या है?
बहाउद्दीन ने कहा, जब तक तू हीरा न हो जाए, तब तक तेरे हाथ में आया हीरा
भी पत्थर हो जाएगा। और तू अगर हीरा हो गया, तो तेरे हाथ में आया हुआ पत्थर भी हीरा हो जाता है। तू कब तक बाहर की चीजों में परेशान रहेगा? इस हीरे में कुछ भी नहीं रखा है। तू इसे अब वापस लौटा दे। उस दिन जानता था कि तू छिपा है, इसलिए हीरा निकाला था, ताकि तुझसे छुटकारा हो। जब तू रात निकालकर ले गया जेब से, तब भी मैं जागा था। क्योंकि योगी कहीं सोता है? इसीलिए तो मुझे पता है कि हीरा कहां है। और तूने अब काफी दिन प्रयोग कर लिया, अब लौटा दे। और अब तो समझ, बाहर से नजर को भीतर हटा। हीरा मांगने नहीं आया हूं, तुझे बुलाने आया हूं कि अब तुझमें अकल आ जानी चाहिए।

जीवन के दो ही ढंग हैंः या तो बाहर का हीरा या भीतर का हीरा। जीवन के
दो ही मार्ग हैंः या तो तुम भिखारी की तरह खोजते रहो हाथ फैलाकर, भिक्षापात्र लिए, या तुम सम्राट हो जाओ--अपने भीतर झांको।
"प्रमाद में मत लगे रहो। कामरति का मत गुणगान करो। प्रमादरहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है।"
यह ध्यान की खोज क्या है?
ध्यान की खोज उस मूल स्रोत की खोज है जो नितांत तुम्हारा स्वभाव है; जिसे तुमसे अलग नहीं किया जा सकता। मेरा हाथ तुम काट सकते हो, वह मेरा स्वभाव नहीं है। क्योंकि बिना हाथ के भी मैं रहूंगा। मेरी आंख तुम फोड़ सकते हो, वह मेरा स्वभाव नहीं है। क्योंकि बिना आंख के भी मैं रहूंगा। योगियों ने ऐसे प्रदर्शन किए हैं, जिनमें उन्होंने श्वास भी छोड़ दी, और फिर भी रहे। तो श्वास भी स्वभाव नहीं है। जो भी अलग किया जा सके, वह स्वभाव नहीं है। जो तुमसे अलग न किया जा सके, वही तुम हो। इस मूल की खोज करनी ही ध्यान है, कि मैं उसी को पकड़ लूं जिसको कोई मुझसे छीन न सके। जो चुराया न जा सके, जो काटा न जा सके, जलाया न जा सके, मिटाया न जा सके।
मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंजिल मगर
लोग साथ आते गए और कारवां बनता गया
प्रत्येक व्यक्ति जब चला था तो अकेला ही चला था। प्रत्येक व्यक्ति जब चला था तो ऐसी ही क्षीण धारा थी जैसी गंगोत्री की--शुद्ध स्वभाव की। प्रत्येक व्यक्ति जब चला था तो सिर्फ ध्यान की तरह चला था। फिर, लोग साथ आते गए और कारवां बनता गया। फिर इंद्रियां जुड़ीं, और शरीर जुड़ा, और वासनाएं जुड़ीं, और काम जुड़ा, और संसार जुड़ा।
फिर से उसकी खोज कर लेनी है जो तुम चले थे, मूल जो तुम्हारा था। झेन फकीर अपने शिष्यों को कहते हैं, अपने मूल चेहरे को खोजो--ओरिजिनल फेस। झेन फकीर कहते हैं, उस चेहरे को खोजो जो तुम्हारा था जब तुम्हारे मां-बाप भी पैदा न हुए थे। उस मौलिक को खोजो जो सदा-सदा तुम्हारा था। कभी रास्ते पर नहीं मिला था। और शेष सब वस्त्र हैं, जो तुम अपने चारों तरफ इकट्ठा करते चले गए। पर्त-पर्त वस्त्रों की उतार डालनी है, और उसको खोज लेना है जो तुम हो मूलतः, जो तुम्हारा स्वभाव है।
ध्यान ऐसे ही है जैसे कोई प्याज के छिलकों को छीलता चला जाए। छिलके के बाद छिलके हैं, और छिलके के बाद छिलके हैं। और फिर एक घड़ी आती है जब सब छिलके खो जाते हैं और शून्य हाथ में रह जाता है। वही शून्य तुम्हारा स्वभाव है।
इसलिए बुद्ध को लोगों ने शून्यवादी कहा। क्योंकि उन्होंने कहा कि वही शून्य तुम्हारा स्वभाव है, वही शून्य ध्यान है। तो ध्यान में परमात्मा की भी याद न रह जाए, क्योंकि वह भी एक पर्त होगी, वह भी एक अशुद्धि होगी, क्योंकि वह भी छोड़ी जा सकती है। जो भी छोड़ा जा सकता है वह छोड़ देना ध्यान की खोज है। उसी को बचा लेना है जो बच ही जाएगा, जिसको तुम छोड़ना भी चाहो तो न छोड़ सकोगे।
और जैसे ही कोई व्यक्ति उस मूल स्वभाव को पहुंच जाता है, आनंद की अपरिसीम वर्षा हो जाती है। कबीर ने कहा है कि मैं नाच रहा हूं और अमृत बरस रहा है। उस शून्य की घड़ी में सब मिल जाता है, सब--जो तुमने चाहा था और जो तुमने चाहा नहीं भी था, जो तुमने सोचा था और जिसे तुम सोच भी न सकते थे--सब। कोई कमी नहीं रह जाती। संतोष तभी उपलब्ध होता है। उसके पहले संतोष सब मन को समझाना है।
अपने मन को समझा लेना एक बात है, कि ठीक है, संतोष करो, क्योंकि लोग कहते हैं संतोष में सुख है। मैं तुमसे कहता हूं, सुख में संतोष है। संतोष में क्या खाक सुख होगा! क्योंकि जो संतोष करके सोच रहा है सुख मिल जाए, वह दुखी तो है ही। लोग कहते हैं कि हम तो अपनी गरीबी में ही संतोष कर रहे हैं। लेकिन गरीबी का पता है, तो पीड़ा है। अमीर होने की दौड़ में उतरने का साहस भी नहीं है, तो संतोष कर लिया है। यह संतोष मजबूरी है। यह संतोष सुख नहीं है। इस संतोष से इतना हो सकता है कि तुम्हें बहुत दुख न मिलें, लेकिन सुख न

मिलेगा। यह संतोष तुम्हें यात्रा की तकलीफ से बचा देगा, लेकिन मंजिल के आनंद को इससे तुम न पा सकोगे।
मैं तुमसे कहता हूं, सुख संतोष है। और सुख केवल उसी को मिलता है जिसने स्वयं को जाना। स्वयं को जानना सुख है। स्वयं में रत हो जाना महासुख है। स्वयं में ठहर जाना स्वर्ग है। उसके अतिरिक्त सब दुख है। उसके अतिरिक्त तुम कुछ भी पा लो, तृप्ति न होगी। उसे पाते ही तृप्ति हो जाती है।
"जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर स्वयं अशोक और धीर बना संसार की शोकाकुल प्रजा को उसी प्रकार देखता है जिस प्रकार कोई पर्वत पर चढ़कर नीचे भूमि पर खड़े लोगों को देखे।"
एक-एक शब्द बहुमूल्य है।
"जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है।"
अंधेरे को हटाने का और कोई उपाय भी नहीं है। कैसे हटाओगे अंधेरे को? दीया जला लो। तलवारें लाने की जरूरत नहीं है कि अंधेरे से लड़ो, न बम-बंदूक काम आएगी, न पहलवानी की कोई जरूरत है। मोहम्मद अली को भी लड़ाओगे अंधेरे से तो मोहम्मद अली ही हारेगा, अंधेरा हारने वाला नहीं है। क्योंकि अंधेरा है ही नहीं, उससे लड़ोगे कैसे? लड़ने के लिए भी तो कोई चाहिए। अंधेरा तो अभाव है। तो अंधेरे को धक्के मत देने लग जाना। बहुत लोग यही कर रहे हैं। कोई क्रोध से लड़ रहा है, कोई काम से लड़ रहा है, कोई लोभ से लड़ रहा है, कोई मोह से लड़ रहा है। ये सब अंधेरे से लड़ने वाले लोग हैं। बुद्धपुरुषों ने यह नहीं कहा है।
बुद्ध कहते हैं, "जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है।"
अंधेरे को हटाने का एक ही उपाय हैः दीए को जला लेना। जब पंडित, ज्ञानवान व्यक्ति प्रमाद के अंधकार को अप्रमाद के दीए से हटा देता है, बेहोशी को होश से तोड़ डालता है। और कोई उपाय नहीं है।
इसलिए तुम क्रोध से मत लड़ना। उतनी ही शक्ति ध्यान को पाने में लगाओगे
तो ध्यान भी मिल जाएगा, और क्रोध तो अपने से चला जाता है। जितनी शक्ति लोगों ने अंधकार से लड़ने में लगायी, वह व्यर्थ ही गयी। और अंधकार हंसता है, तुम्हारा मजाक उड़ाता है, क्योंकि वह मूढ़तापूर्ण है। कभी नकार से मत लड़ना। संसार से मत लड़ना, सत्य को पाने की चेष्टा करना। नींद से मत लड़ना, जागने की फिकर करना। नींद तो अपने से चली जाती है।
ख्याल रखना, जिससे हम लड़ते हैं वह है या नहीं। अगर है, तो लड़ाई हो सकती है। अगर नहीं है तो कैसे लड़ाई होगी? और जो नहीं है, वह शक्तिशाली मालूम होगा। अंधेरे से लड़ो, अंधेरा बड़ा शक्तिशाली मालूम होगा। कितने ही हाथ-पैर चलाओ, उस पर कोई असर नहीं होता। कितना ही उछलो-कूदो, तुम ही थक जाते हो, अंधेरा नहीं थकता। पोटली में बांधो, पोटली बाहर चली जाती है, अंधेरा वहीं का वहीं रह जाता है। तो तुम्हें लगेगा, तर्क कहेगा, अंधेरा बड़ा शक्तिशाली है। अंधेरा शक्तिशाली नहीं है, अंधेरा है ही नहीं। तुम्हारी भूल है। छोटे से दीए को जलाओ। अंधेरे से लड़ने में जितनी शक्ति लगती थी, उसको रोशनी बनाने में लगाओ।
इसलिए मैं कहता हूं, संसार से मत लड़ो, सत्य को खोजो। गृहस्थी को छोड़कर
मत भागो, संन्यास को जगाओ। विधायक की चिंता करो, नकार की चिंता मत करो। "जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है।"
वही एकमात्र रास्ता है। इसलिए बुद्ध उसे पंडित कह रहे हैं। वही ज्ञानवान है, जो दीए को जलाता है। जो अंधेरे से लड़ता है, वह महामूढ़ है।
"तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर... ।"
यह एक समझने की बात है। बौद्ध चिंतन, मनन और ध्यान की प्रक्रिया का एक गहनतम सूत्र है। बुद्ध कहते हैं, पहले व्यक्ति को प्रमाद तोड़ना है, अंधेरा तोड़ना है। यह तोड़ना प्रकाश के लाने से होगा। तो प्रमाद मिटाना है, अप्रमाद जगाना है। लेकिन जब पहली दफा अप्रमाद आता है, तो वह इतनी बड़ी घटना है, वह इतनी विराट घटना है कि व्यक्ति उसमें डूब जाता है। जब पहली दफा ध्यान घटता है, तो ध्यान में ही व्यक्ति खो जाता है।

जो यहां ध्यान कर रहे हैं, उनको इसके अनुभव होते हैं। जब पहली दफा ध्यान घटता है तो लोग मेरे पास आकर कहते हैं, क्या हुआ कुछ समझ में नहीं आता! विचार तो चले गए लेकिन अपना होश भी न रहा--नींद थी कि ध्यान था? बीच में एक अंतराल आ गया, कुछ क्षणों के लिए कुछ भी न रहा, तो हम सो गए थे, खो गए थे, या जाग गए थे? कुछ पता नहीं चलता, कोई स्मृति भी नहीं बनती उस घड़ी की। इतनी बड़ी घटना है ध्यान, कि स्मृति का यंत्र अवाक होकर ठहर जाता है; काम नहीं करता।
बड़ी मीठी घटना है सूफी फकीर बायजीद के संबंध में। वह एक दिन बोल रहा था। पास में ही एक घड़ियाल टंगा था। जब वह बोल रहा था तो बीच में ही घड़ियाल के घंटे बजने लगे। उसने कहा, चुप। वह घड़ी चुप हो गयी और वह बोलता रहा। लोग बड़े हैरान हुए। जब वह बोल चुका, तब घड़ी जहां रुक गयी थी, जितने घंटे बजाने बाकी रह गए थे, वह उसने बजाए। लोगों ने कहा कि राज समझे नहीं, यह मामला क्या है? बायजीद ने कहा कि जब भीतर का समय रुक गया, तो घड़ी न मानेगी?
ऐसा हुआ हो, जरूरी नहीं। पर बात महत्वपूर्ण है। भीतर की घड़ी जब रुक जाती है तो बाहर की घड़ी का क्या कहना? जब ध्यान उतरता है तो समय की धारा ठहर जाती है। जब ध्यान उतरता है तो स्थान का भाव खो जाता है। तुम कहां हो, कब हो, कौन हो, सब ठहर जाता है। स्मृति का यंत्र अवाक हो जाता है, चौंककर रुक जाता है।
ध्यान का समय आता है, चला जाता है। जब तुम वापस लौटते हो अपनी तंद्रा
के जगत में, विचार में, और घड़ी फिर घंटे बजाती है, तब तुम सोचते हो हुआ क्या? क्या मैं सो गया था? लेकिन सोने की भी याद होती है। रात तुम आज सोए थे, सुबह तुम कहते हो, बड़ी गहरी नींद आयी। या एक दिन तुम कहते हो, नींद ठीक से न आयी, उथली-उथली रही, ऊबड़-खाबड़ रही; सपने बहुत रहे, राहत न मिली, विश्राम न मिला; रातभर पड़े रहे, करवटें बदलीं; नींद आयी टूट-टूटकर आयी, टुकड़ों- टुकड़ों में आयी, सातत्य न रहा। या कभी तुम कहते हो, बड़ी गहरी नींद आयी, बड़ा आनंद मालूम हो रहा है, सुबह बड़ी ताजगी है। तो नींद की तो स्मृति बनती है। ध्यान की स्मृति नहीं बनती।
पर पहली दफा जब ध्यान घटता है तो ऐसा ही लगता है जैसे कि सब खो गया। हुआ क्या? हम कहां थे? हम कहां खो गए थे? कारण है। जब पहली दफा अंधेरा जाता है और रोशनी आती है, तो आंखें चकाचौंध से बंद हो जाती हैं। तो पहला तो प्रकाश का अनुभव भी करीब-करीब अंधेरे जैसा ही होता है। जैसे तुम अंधेरे कमरे से अचानक बाहर रोशनी में आ गए और तुमने सूरज देखा, तुम्हारी आंखें बंद हो जाएंगी। और जो जन्मों-जन्मों से अंधेरी गुहा में रहा है, वह जब पहली दफा ध्यान के सूरज को देखेगा, स्वाभाविक है आंख बंद हो जाए, सब ठहर जाए। तो बुद्ध ने कहा है, प्रमाद मिटता है अप्रमाद से। और जब व्यक्ति अप्रमाद के भी ऊपर उठता है, तब प्रज्ञा। जब ध्यान के भी ऊपर उठता है, समाधि के भी ऊपर उठता है। यह बुद्ध की बड़ी गहन खोज है। समाधि के ऊपर उठने की बात पतंजलि ने भी नहीं कही। और बुद्ध ठीक कहते हैं। मैं भी उसका गवाह हूं। पतंजलि ने समाधि तक बात कही। ऐसा नहीं कि समाधि के आगे पतंजलि को पता नहीं। लेकिन कहने की कोई जरूरत न समझी होगी। जो समाधि तक पहुंच गया, वह अगला कदम अपने आप उठ जाता है। उसकी चर्चा व्यर्थ है। लेकिन बुद्ध पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने समाधि के पार की बात का ठीक-ठीक उल्लेख किया। वह इतना अज्ञात लोक है, उसका न तो कोई भूगोल बना है, न कोई एटलस है। बुद्ध-पुरुषों ने धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी बातें उसके संबंध में कही हैं। थोड़े इशारे।
बुद्ध का यह इशारा गहरे से गहरे इशारों में एक है। बुद्ध कहते हैं, समाधि के भी पार उठने की एक दशा है। समाधि का उपयोग इतना ही है कि उससे चित्त मिट जाए। रोशनी को इसीलिए चाहा था कि अंधेरा मिट जाए। कोई रोशनी को पकड़कर थोड़े ही बैठ जाना है। रोशनी के भी पार जाना है। अंधेरे के पार तो जाना ही है, रोशनी के भी पार जाना है। संसार के तो पार जाना ही है, संसार के विपरीत में जो तुमने संन्यास स्वीकार किया, उसके भी पार जाना है। परम संन्यासी वही है जिसका संन्यास भी विसर्जित हो गया। परम ध्यानी वही है जिसका ध्यान भी पीछे छूट गया, जो ध्यान से भी आगे निकल आया। संसार तो छोड़ा

ही, स्वप्न तो छोड़े ही, जागरण को पकड़ा नहीं, वह भी छोड़ दिया। पूरा द्वंद्व चला गया। निर्द्वंद्व हुए। अद्वैत हुआ।
"जब पंडित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है, तब वह प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर... ।"
तब पहली दफा प्रज्ञा के शिखर पर चढ़ाई शुरू होती है।
"स्वयं अशोक और धीर बना... ।"
अब न तो उसे कोई दुख होता, न कोई सुख। ध्यान में सुख है, गैर-ध्यान में दुख है। इसलिए बुद्ध ने कहा, प्रमादरहित व ध्यान में लगा पुरुष विपुल सुख को प्राप्त होता है। लेकिन सुख भी बहुत सुख नहीं है, महासुख नहीं है। जो मिला है वह कितना ही बड़ा हो, अनंत नहीं हो सकता। अनंत तो वही हो सकता है जो मिला ही नहीं कभी। अनंत तो वही हो सकता है जिसकी शुरुआत भी कभी नहीं हुई। उसी का अंत भी न होगा।
तो बुद्ध कहते हैं, "प्रज्ञारूपी प्रासाद पर चढ़कर स्वयं अशोक और धीर बना, संसार की शोकाकुल प्रजा को उसी प्रकार देखता है जिस प्रकार कोई पर्वत पर चढ़कर नीचे भूमि पर खड़े लोगों को देखे।"
"प्रमादी लोगों में अप्रमादी और सोए लोगों में बहुत जाग्रत पुरुष वैसे ही आगे निकल जाता है जैसे तेज घोड़ा मंद घोड़े से आगे निकल जाता है।" इन प्रतीकों में उलझ मत जाना। क्योंकि मजबूरी है बुद्धपुरुषों की भी, शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। शब्द तुम्हारे हैं, और तुम्हारे रंग में रंगे हैं। बुद्ध भी उनका उपयोग करें तो भी तुम्हारे अर्थ की धूल उन शब्दों पर जम जाती है।
जैसे बुद्ध कहते हैं, "प्रमादी लोगों में अप्रमादी और सोए लोगों में बहुत जाग्रत पुरुष... ।"

अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।

जो बहुत जागा हुआ है सोए हुए लोगों में, प्रमादियों में जो अप्रमादी है, वह वैसे ही आगे निकल जाता है जैसे तेज घोड़ा मंद घोड़े से आगे निकल जाता है।
लेकिन यह उदाहरण ठीक नहीं। क्योंकि तेज घोड़ा और मंद घोड़ा, उनके बीच जो भेद है वह मात्रा का है, गुण का नहीं। वह डिग्री का है, क्वांटिटी का है, क्वालिटी का नहीं। लेकिन सोए और जागे आदमी में जो भेद है वह गुणात्मक है, परिमाणात्मक नहीं। सोए और जागे हुए आदमी में जो भेद है वह आगे और पीछे का नहीं है, ऊपर और नीचे का है। जागा हुआ आदमी तुमसे जरा आगे है, ऐसा नहीं। तब तो तुम दोनों एक ही तल पर हो; कोई तुमसे दस कदम आगे है, तुम दस कदम पीछे हो; रास्ता वही है, भेद ज्यादा नहीं है। तुम थोड़ा तेज चलो--थोड़ा मंद घोड़ा भी दौड़ ले--तो पहुंच जाएगा। भेद मात्रा का है।
लेकिन जागे और सोए व्यक्ति में मात्रा का भेद नहीं है, गुण का भेद है।
वे दोनों अलग तल पर हैं। इसलिए बुद्ध का पहला प्रतीक ठीक है कि जैसे पहाड़ पर कोई खड़ा है, और नीचे जनता मैदान में खड़ी है। ऐसा भेद है। दो तलों का भेद है। एक अलग ही आयाम है। और निश्चित ही जो तुमसे ऊपर है, वह तुमसे आगे तो होगा ही। लेकिन जो तुमसे आगे है, वह जरूरी नहीं कि तुमसे ऊपर हो।
इसे ऐसा समझो कि तुम थोड़ा जानते हो, कोई विद्वान तुमसे ज्यादा जानता है, वह तुमसे आगे है। तुम सौ बातें जानते हो, वह हजार बातें जानता है। फर्क मात्रा का है। नौ सौ बातें ज्यादा जानता है। तुमने एक शास्त्र पढ़ा, उसने हजार पढ़े। पर तुम दोनों में बुनियादी कोई भेद नहीं है। फिर एक प्रज्ञा को उपलब्ध व्यक्ति है। उसमें भेद ऐसा नहीं है कि तुमने एक शास्त्र पढ़ा, उसने हजार पढ़े। यह सवाल ही नहीं है। तुम सोए, वह जागा। तुम नींद में पड़े, वह होश में। तुम अंधेरे में खड़े, वह प्रकाश में। गुण का भेद है।
स्वभावतः, जो तुमसे ऊपर है वह तुमसे आगे तो होगा ही। इसलिए प्रज्ञावान पुरुष प्रतिभाशाली तो होगा ही, लेकिन प्रतिभाशाली पुरुष अनिवार्य रूप से प्रज्ञावान नहीं होता। तो जिन्होंने प्रज्ञा को खोजा

उन्होंने प्रतिभा को तो मुफ्त पा लिया। वह तो छाया है। लेकिन जो प्रतिभा को ही खोजते रहे, उन्होंने प्रज्ञा को नहीं पाया।
तो तुम्हारा प्रतिभाशाली से प्रतिभाशाली पुरुष भी--कितना ही बड़ा वैज्ञानिक हो, नोबल-पुरस्कार का विजेता हो--उसमें और तुममें गुण का कोई फर्क नहीं होता। उसी रास्ते पर, उसी लकीर में तुम भी खड़े हो, जहां वह खड़ा है। तुमसे आगे है, तेज घोड़ा हो सकता है, तुम मंद घोड़े हो, लेकिन दोनों घोड़े हो।
बुद्ध की मजबूरी है। वे कहना यह चाहते हैं कि जिस व्यक्ति के पास जागरण की कला है, उसके पास अनंत समय उपलब्ध हो जाता है उसे। तुम्हारे पास हमेशा समय कम है। तुम हमेशा समय को रोते मालूम पड़ते हो। तुमसे अगर कहो प्रार्थना करो, ध्यान करो, तुम कहते हो समय कहां?
मैं कल दो पंक्तियां पढ़ रहा था--
वो कौन हैं जिन्हें तौबा की मिल गयी फुर्सत
हमें गुनाह भी करने को जिंदगी कम है
वे कौन हैं जिन्हें प्रायश्चित्त करने का भी समय मिल गया? हमको तो पाप करने के लिए भी जिंदगी कम मालूम पड़ रही है। प्रायश्चित्त?
वो कौन हैं जिन्हें तौबा की मिल गयी फुर्सत
हमें गुनाह भी करने को जिंदगी कम है
इतने धीमे तुम चल रहे हो। चलना कहना ठीक नहीं, तुम घसिट रहे हो। इसलिए तुम्हें जिंदगी कम है। जो होश से चलता है, उसे जिंदगी अनंत है।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि समय उतना ही कम मालूम पड़ेगा तुम्हें, जितने तुम सोए हुए हो। जितने तुम जागे हुए हो, उतना ही समय अनंत हो जाता है। जागे हुए व्यक्ति को एक-एक क्षण अनंतता हो जाता है। क्योंकि जागे हुए व्यक्ति को समय का विस्तार ही नहीं दिखायी पड़ता, गहराई भी दिखायी पड़ती है। तुम ऐसे हो जैसे सागर के किनारे खड़े हो और सागर की सतह भर तुम्हें दिखायी पड़ती है। जागा हुआ आदमी ऐसा है जैसे सागर में डुबकी ली; उसे सतह तो दिखायी पड़ती है, सागर की गहराई भी दिखायी पड़ती है। अगर एक क्षण से तुम दूसरे क्षण पर गए, दूसरे से तीसरे क्षण पर गए--अ से ब पर, ब से स पर--तो तुम्हें अनंतता का कभी पता ही न चलेगा। अगर तुम प्रत्येक क्षण की गहराई में गए, तो वह गहराई अथाह है। तब तुम्हें अनंतता का पता चलेगा। और जब एक-एक क्षण अनंत हो जाए, तो सब क्षण मिलकर कितनी अनंतताएं न हो जाएंगी!
इसलिए महावीर ने एक शब्द प्रयोग किया है, जो कभी किसी ने प्रयोग नहीं किया, वह हैः अनंतानंत। इनफिनिट इनफिनीटीज। वेद और उपनिषद एक ही अनंत की बात करते हैं। वे कहते हैंः परमात्मा अनंत है। महावीर कहते हैंः मोक्ष अनंतानंत है। क्योंकि प्रत्येक चीज दो दिशाओं में अनंत है--फैलाव में और गहराई में। और इसलिए अंतिम हिसाब में अनंत गुणित अनंत।
बड़ा विस्तार है। लेकिन होश जितना बढ़ता जाए, उतना ही विस्तार बढ़ता चला जाता है।
"प्रमादी लोगों में अप्रमादी, और सोए लोगों में बहुत जाग्रत पुरुष वैसे ही आगे निकल जाता है जैसे तेज घोड़ा मंद घोड़े से आगे निकल जाता है।" "जो भिक्षु अप्रमाद में रत है, अथवा प्रमाद में भय देखता है, वह आग की भांति छोटे-मोटे बंधनों को जलाते हुए बढ़ता है।"
बंधन छोड़ने थोड़े ही हैं। इसे थोड़ा समझो। थोड़ा नहीं इसे बहुत समझो। बंधन छोड़ने थोड़े ही हैं, बंधन जलाने हैं। क्योंकि छोड़े बंधन फिर बंध सकते हैं। बंधन जलाकर राख कर देने हैं। और मजा यह है कि जो छोड़ता है, वह कभी नहीं छोड़ पाता; लेकिन जो जागता है, वह अचानक पाता है, वे जल गए। क्योंकि बंधन हैं तुम्हारी नींद के ही।
जैसे एक आदमी सोया है। सपने में खोया है कि कारागृह में बंद है, कि हाथ में जंजीरें पड़ी हैं। वह लाख उपाय करे सपने में जंजीरें रख देने का, क्या फायदा होगा? सपना नहीं टूट जाएगा। वह छूट भी जाए जंजीरों से, तो भी सपने में ही है। कारागृह से भी निकल जाए सपने में, तो भी सपने में ही है। सपना ही असली कारागृह है। लेकिन जाग जाए, तो फिर हंसने लगे। क्योंकि न कोई बंधन

है--जल गए, बचे ही नहीं, राख भी न बची। ऐसे जले कि पीछे कोई निशान भी नहीं छूट गया है। बंधन बेहोशी के हैं। होश है मुक्ति।
तो बुद्ध कह रहे हैं, "जो भिक्षु अप्रमाद में रत है... ।"
जो धीरे-धीरे जागने में लीन रहने लगा है, जो धीरे-धीरे जागने में डूबने लगा, जो जागने में रस लेने लगा है।
"वह आग की भांति है, वह छोटे-मोटे बंधनों को जलाते हुए बढ़ता है।"
छोड़ता नहीं, छोड़ने की क्या जरूरत है? जहां भी उसकी होश भरी आंख पड़ती है, वहीं बंधन जल जाते हैं। जहां भी उसकी एकाग्र दृष्टि पड़ जाती है, वहीं बंधन गिर जाते हैं। जहां भी वह होश से देखता है, वहीं संसार राख हो जाता है।
हिमालय में एक... हिमालय में बसे लोगों में एक कहावत है कि अगर कभी किसी का विवाह हो रहा हो तो संन्यासी को निमंत्रित मत करना। या अगर कभी कोई किसान खेत में बीज बोता हो, तो संन्यासी को आसपास देख ले, कि कोई संन्यासी आसपास तो नहीं।
कहावत बड़ी महत्वपूर्ण है। उसका मतलब केवल इतना ही है कि तुम बंधन बना रहे हो। और जाग्रत पुरुष वहां मौजूद हो, कहीं जला न दे। विवाह को हम कहते हैं बंधन। एक संसार बसाया जा रहा है। बैंड-बाजे बज रहे हैं, शहनाई बज रही है। एक सपने का जाल बुना जा रहा है। दो व्यक्ति संसार में उतरने को जा रहे हैं--बड़े सपने लिए। संन्यासी को वहां मत बुलाना। कहावत ठीक कहती है, क्योंकि जागा हुआ आदमी अपने साथ चारों तरफ जागरण की खबर लेकर चलता है। जागा हुआ आदमी, जहां उसकी नजर पड़ जाए वहां बंधन गिर जाते हैं। तो कहीं ऐसा न हो कि ये बिचारे अभी बंधन में बंध ही रहे हैं और कोई संन्यासी की नजर पड़ जाए।
यह बात बड़ी मीठी है। यह बात बड़ी मूल्यवान है। जाग्रत पुरुष के बोध में उसके खुद के बंधन तो गिरते ही हैं, जो उसके करीब आने का साहस जुटा लेते हैं उनके भी गिर जाते हैं।
सूफी फकीर हुआ हफीज। महाकवि भी हुआ। उसने एक गीत लिखा। गीत, ऐसा लगता
है अपनी प्रेयसी के लिए लिखा है। गीत में उसने कहा कि तेरी ठोड़ी पर जो तिल का निशान है, उसके लिए मन होता है बुखारा दे दूं, कि समरकंद! समरकंद और बुखारा का मालिक उस समय था तैमूरलंग। वह बहुत नाराज हो गया, जब उसके कान में यह गीत पड़ा कि यह कौन है? मालिक मैं हूं, यह देने वाला कौन है?
उसने हफीज को पकड़वा बुलाया। उसने कहा कि हद्द हो गयी। पहली तो बात यह
कि किसी स्त्री के ठोड़ी पर तिल है, यह इस योग्य नहीं कि तुम बुखारा और समरकंद दे दो। फिर दूसरी बात यह कि पहले यह भी तो पक्का कर लो कि बुखारा- समरकंद तुम्हारे बाप के हैं, जो तुम दे रहे हो? ये मेरे हैं। मैं अभी जिंदा हूं। तुमने मुझसे पूछे बिना यह कविता कैसे लिखी?
हफीज हंसने लगा इस मूढ़ता पर। उसने कहा, सुनो! पहले तो जिसके तिल की बात है, बुखारा-समरकंद उसी के हैं। तुम नाहक बीच में उपद्रव कर रहे हो। तुम आज हो, कल न रहोगे। जिसके तिल की बात है, बुखारा-समरकंद उसी के हैं--वह तो परमात्मा की बात कर रहा है, सूफी फकीर परमात्मा को प्रेयसी के रूप में बात करते हैं--और फिर दूसरी बात, उसी की चीज उसी को लौटा देने में क्या लगता है? न बुखारा-समरकंद तुम्हारे हैं, न मेरे, वह मुझे भी पता है। मगर जिसके हैं उसी को मैं लौटा रहा हूं, तुम बाधा डाल रहे हो; देखो, पीछे पछताओगे। और हफीज ने कहा, सुनो! मैं गरीब आदमी हूं, लेकिन मेरा दिल तो देखो! कुछ मेरे पास नहीं, बुखारा-समरकंद दे दिए। तुम्हारे पास सब है, अपनी कृपणता तो देखो! हफीज की ऐसी बात सुनकर कहते हैं तैमूरलंग भी हंसने लगा। अन्यथा वह हंसने वाला आदमी न था।
जो अपना नहीं है, उसको अपना मान लेने में बंधन है। और जो अपना नहीं है, उसको अपना मान लेने में न केवल बंधन है, बल्कि दूसरे से प्रतिस्पर्धा है, संघर्ष है। सारे जगत की कलह यही तो है कि यहां सभी ने चीजों को अपना मान रखा है, जो उनकी नहीं हैं। असली मालिक तो चुप है। बुखारा-समरकंद उसी के हैं। लेकिन तैमूरलंग, यह लंगड़ा बीच में खड़ा है। लंगड़ा था इसलिए लंग। लंगड़ा है, लेकिन सारी दुनिया पर कब्जे की आकांक्षा है। सभी लंगड़ों की यही

आकांक्षा है। यह परमात्मा की चीज भी परमात्मा को देने में इसको कष्ट हो रहा है। देना भी कहां है? उसकी ही है। यह तो एक बात थी, कहने का एक ढंग था, एक लहजा था।
जैसे-जैसे तुम्हारा होश बढ़ेगा, तुम्हें लगेगा अपना कुछ भी नहीं है। अपने सिवाय अपना कुछ भी नहीं है। और आखिर में तुम पाओगे कि वह जो अपना है, वह भी अपना नहीं है, वह भी परमात्मा का है--तब प्रज्ञा।
समाधि तक भी तुम्हें अपना थोड़ा बोध रहेगा। सारी चीजों से संबंध छूट जाएगा, लेकिन स्वयं से संबंध बना रहेगा। प्रज्ञा में वह संबंध भी छूट जाता है। इसलिए बुद्ध ने कहा, आत्मा समाधि तक, उसके बाद अनात्मा। अत्ता समाधि तक--कि तुम हो; फिर एक ऐसी भी घड़ी आती है जहां तुम भी नहीं हो--बूंद सागर में गिर गयी।
"जो भिक्षु अप्रमाद में रत है, वह आग की भांति छोटे-मोटे बंधनों को जलाता हुआ बढ़ता है।"
"जो भिक्षु अप्रमाद में रत है अथवा प्रमाद में भय देखता है, उसका पतन होना संभव नहीं है। वह तो निर्वाण के समीप पहुंचा हुआ है।"
लेकिन ध्यान रखनाः समीप। बुद्ध एक-एक शब्द के संबंध में बहुत-बहुत हिसाब से बोलते हैं। अप्रमाद सिर्फ समीप है। जब अप्रमाद भी छूट जाएगा, तब निर्वाण। बेहोशी तो जाएगी ही, होश भी चला जाएगा। क्योंकि बेहोशी और होश दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पराया तो छूटेगा ही, स्वयं का होना भी छूट जाएगा। क्योंकि पराया और स्वयं दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। तू तो मिटेगा ही, मैं भी मिट जाएगा। क्योंकि मैं और तू एक ही चर्चा के दो हिस्से हैं, एक ही संवाद के दो छोर हैं।
लेकिन जो अप्रमाद में रत है, उसका कोई पतन नहीं होता। ऐसे ही जैसे दीया हाथ में हो तो तुम टकराते नहीं। घर में अंधेरा हो और तुम अंधेरे में चलो तो कभी कुर्सी से, कभी मेज से, कभी दीवाल से टकराते हो। हाथ में दीया हो, फिर टकराना कैसा? फिर तुम्हें राह दिखायी पड़ती है। असली सवाल राह का खोज लेना नहीं है, असली सवाल हाथ में दीए का होना है।
इसलिए बुद्ध का आखिरी वचन, जो उन्होंने इस पृथ्वी पर अंतिम शब्द कहे-- आनंद ने पूछा, हम क्या करेंगे? तुम जाते हो, तुम्हारे रहते हम कुछ न कर पाए, दिन और रात हमने बेहोशी में गंवा दिए, तुम्हें सुना और समझ न पाए, तुमने जगाया और हम जागे नहीं, अब तुम जाते हो, अब हमारा क्या होगा--बुद्ध ने कहा, इस बात को सूत्र की तरह याद रखना, क्योंकि मैं तुम्हारे काम नहीं पड़ सकताः अप्प दीपो भव। तुम अपने दीए बनो, क्योंकि वही काम पड़ सकता है।
अप्रमाद यानी अप्प दीपो भव! अपने दीए बनो। जागो। होशपूर्वक जीयो।
संसार यही है। जो बेहोशी में जीता है, वह माया में; जो होश में जीता है,
वह ब्रह्म में। जीने की शैली बदल जाती है, जीने की जगह थोड़े ही बदलती है।
यही है सब--यही वृक्ष, यही पौधे, यही पक्षी, यही झरने--तुम बदल जाओगे। लेकिन जब दृष्टि बदल जाती है, तो सब सृष्टि बदल जाती है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 1
दसवां प्रवचन

देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है

पहला प्रश्नः ओश्ल्ला, एक ही आरजू है कि इस खोपड़ी से कैसे मुक्ति हो जाए? आपकी शरण आया हूं।

पूछा है चिन्मय ने।
खोपड़ी से मुक्त होने का ख्याल भी खोपड़ी का ही है। मुक्त होने की जब तक आकांक्षा है, तब तक मुक्ति संभव नहीं। क्योंकि आकांक्षा मात्र ही, आकांक्षा की अभीप्सा मन का ही जाल और खेल है। मन संसार ही नहीं बनाता, मन मोक्ष भी बनाता है। और जिसने यह जान लिया वही मुक्त हो गया।
साधारणतः ऐसा लगता है, मन ने बनाया है संसार, तो हम मन से मुक्त हो जाएं तो मुक्त हो जाएंगे। वहीं भूल हो गयी। वहीं मन ने फिर धोखा दिया। फिर मन ने चाल चली। फिर मन ने जाल फेंका। फिर तुम उलझे। फिर नया संसार बना। मोक्ष भी संसार बन जाता है।
संसार का अर्थ क्या है? जो उलझा ले। संसार का अर्थ क्या है? जो अपेक्षा बन जाए, वासना बन जाए। संसार का अर्थ क्या है? जो तुम्हारा भविष्य बन जाए। जिसके सहारे और जिसके आसरे और जिसकी आशा में तुम जीने लगो, वही संसार है। दुकान पर बैठे हो, इससे संसार में हो; मंदिर में बैठ जाओगे, संसार के बाहर हो जाओगे--इतनी सस्ती बातों में मत पड़ जाना। काश, इतना आसान होता! तब तो कुछ उलझन न थी। दुकान में संसार नहीं है, और न मंदिर में संसार से मुक्ति है। अपेक्षा में, आकांक्षा में, आशा में संसार है; सपने में संसार है। तो तुम मोक्ष का सपना देखो, तो भी संसार में हो।
संसार के बाहर वही है जो अभी और यहीं है। लेकिन इसका तो अर्थ यह हुआ कि मोक्ष की आकांक्षा भी छोड़ देनी पड़ेगी। अन्यथा, मोक्ष के बहाने भी, मोक्ष की वासना से भी तुम नए-नए संसार बनाते चले जाओगे।
समझना काफी है, छूटना नहीं है। छूटना किससे है? किसी ने बांधा होता तो छूटते। किसी ने बांधा भी नहीं है। बंधन कहां है? बंधन से छूटने की जल्दी मत करो। क्योंकि यह भी हो सकता है, बंधन हो ही न! तब तुम छूटने की कोशिश से बंध जाओगे। और अगर बंधन नहीं है, तो छूटोगे कैसे?
बंधन से छूटने की कोशिश मत करो, बंधन को जानने की कोशिश करो कि बंधन कहां है! पूछो। जिज्ञासा करो। वासना मत करो।
विपरीत की वासना भी वासना है। तुम कुएं से बचते हो, खाई में गिर जाते हो। इससे क्या फर्क पड़ेगा कि तुमने गिरने का ढंग बदल लिया? तुम बाएं गिरे कि दाएं गिरे, इससे क्या भेद पड़ता है?
जिज्ञासा करो कि बंधन कहां है? बंधन क्या है? बंधन को भर आंख देखो। इसी को बुद्ध ध्यान कहते हैं, अप्रमाद कहते हैं, कि बंधन को भर आंख देखो। तुम्हारे देखने-देखने में तुम पाओगे, बंधन पिघला, बंधन गया। क्योंकि बंधन तुम्हारी मूर्च्छा है। अगर तुम जागकर देखोगे, कैसे टिकेगा? बंधन वस्तुतः होता तो मुक्ति का कोई उपाय न था। बंधन केवल ख्याल है। बात में से बात निकल आयी है। कहीं कुछ है नहीं।
एक युवक भिक्षु नागार्जुन के पास आया और उसने कहा कि मुझे मुक्त होना है। और उसने कहा कि जीवन लगा देने की मेरी तैयारी है। मैं मरने को तैयार हूं, लेकिन मुक्ति मुझे चाहिए। कोई भी कीमत हो, चुकाने को राजी हूं।
अपनी तरफ से तो वह बड़ी समझदारी की बातें कह रहा था।
चिन्मय ने भी यही पूछा है आगे प्रश्न मेंः
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है
उसने भी यही कहा होगा नागार्जुन को कि मरने की तैयारी है; अब तुम्हारे हाथ में सब बात है। मुझसे न कह सकोगे कि मैंने कुछ कमी की प्रयास में। मैं सब करने को तैयार हूं। अपनी तरफ से वह ईमानदार था। उसकी ईमानदारी पर शक भी

क्या करें! मरने को तैयार था--और क्या आदमी से मांग सकते हो? लेकिन ईमानदारी कितनी ही हो, भ्रांत थी।
नागार्जुन ने कहा, ठहर। एक छोटा सा प्रयोग कर। फिर, अभी इतनी जल्दी नहीं है मरने-मारने की। यह भाषा ही नासमझी की है। यहां मरना-मारना कैसा? तू एक तीन दिन छोटा सा प्रयोग कर, फिर देखेंगे। और उससे कहा कि तू चला जा सामने की गुफा में, अंदर बैठ जा, और एक ही बात पर चित्त को एकाग्र कर कि तू एक भैंस हो गया है। भैंस सामने खड़ी थी, इसलिए नागार्जुन को ख्याल आ गया कि "तू एक भैंस हो गया है।" यह सामने भैंस खड़ी है। उस युवक ने कहा जरा चिंतित होकर कि इससे मुक्ति का क्या संबंध? नागार्जुन ने कहा, वह हम तीन दिन बाद सोचेंगे। बस तू तीन दिन बिना खाए-पीए, बिना सोए, एक ही बात सोचता रह कि तू भैंस हो गया है। तीन दिन बाद मैं हाजिर हो जाऊंगा तेरे पास। अगर तू इसमें सफल हो गया, तो मुक्ति बिल्कुल आसान है। फिर मरने की कोई जरूरत नहीं।
उस युवक ने सब दांव पर लगा दिया। वह तीन दिन न भोजन किया, न सोया। तीन दिन अहर्निश उसने एक ही बात सोची कि मैं भैंस हूं। अब तीन दिन अगर कोई सोचता रहे भैंस है--वह भैंस हो गया! हो गया, नहीं कि हो गया; उसे प्रतीत होने लगा कि हो गया। एक प्रतीति पैदा हुई। एक भ्रमजाल खड़ा हुआ।
जब तीसरे दिन सुबह उसने आंख खोलकर देखा तो वह घबड़ाया--वह भैंस हो गया था! और भी घबड़ाया, क्योंकि अब बाहर कैसे निकलेगा! गुफा का द्वार छोटा था। आए तब तो आदमी थे; अब भैंस थे, उसके बड़े सींग थे। उसने कोशिश भी की तो सींग अटक गए। चिल्लाना चाहा तो आवाज तो न निकली, भैंस का स्वर निकला। जब स्वर निकला तो नागार्जुन भागा हुआ पहुंचा। देखा, युवक है। कहीं कोई सींग नहीं हैं। मगर सींग अटक रहे हैं। कहीं कोई सींग नहीं हैं। वह आदमी जैसा आदमी है। जैसा आया था वैसा ही है। लेकिन तीन दिन का आत्मसम्मोहन, तीन दिन का सतत सुझाव! तीन बार भी सुझाव दो तो परिणाम हो जाते हैं, तीन दिन में तो करोड़ों बार उसने सुझाव दिए होंगे। फिर बिना खाए, बिना सोए!
जब तुम तीन दिन तक नहीं सोते तो तुम्हारी सपना देखने की शक्ति इकट्ठी
हो जाती है। तीन दिन तक सपना ही नहीं देखा! जैसे भूख इकट्ठी होती है तीन दिन तक खाना न खाने से, ऐसा तीन दिन तक सपना न देखने से सपना देखने की शक्ति इकट्ठी हो जाती है। वह तीन दिन की सपना देखने की शक्ति, तीन दिन की भूख... ! भूख में भी जितना शरीर कमजोर हो जाता है, उतना मन मजबूत हो जाता है। भूख से शरीर तो कमजोर होता है, मन मजबूत होता है। इसलिए तो बहुत से धर्म उपवास करने लगे और बहुत से धर्मों ने रात्रि-जागरण किया। अगर रातभर जागते रहो तो परमात्मा जल्दी दिखायी पड़ता है। सपना इकट्ठा हो जाता है।
अभी इस पर तो वैज्ञानिक शोध भी हुई है। और वैज्ञानिक भी इस बात पर राजी हो गए हैं कि अगर तुम बहुत दिन तक सपना न देखो तो हैलूसिनेशन्स पैदा होने लगते हैं। फिर तुम जागते में सपना देखने लगोगे। आंख खुली रहेगी और सपना देखोगे। सपना एक जरूरत है। सपना तुम्हारे मन का निकास है, रेचन है। तीन दिन तक जागता रहा। सपने की शक्ति इकट्ठी हो गयी। तीन दिन भूखा रहा, शरीर कमजोर हो गया।
यह तुमने कभी ख्याल किया! बुखार में जब शरीर कमजोर हो जाए तो तुम ऐसी कल्पनाएं देखने लगते हो जो तुम स्वस्थ हालत में कभी न देखोगे। खाट उड़ी जा रही है! तुम जानते हो कि कहीं उड़ी नहीं जा रही। अपनी खाट पर लेटे हो, मगर शक होने लगता है। क्या, हो क्या गया है तुम्हें? शरीर कमजोर है।
जब शरीर स्वस्थ होता है तो मन पर नियंत्रण रखता है। जब शरीर कमजोर हो जाता है तो मन बिल्कुल मुक्त हो जाता है। और मन तो सपना देखने की शक्ति का ही नाम है। तो बीमारी में लोगों को भूत-प्रेत दिखायी पड़ने लगते हैं। स्त्रियों को ज्यादा दिखायी पड़ते हैं पुरुषों की बजाय। बच्चों को ज्यादा दिखायी पड़ते हैं प्रौढ़ों की बजाय। जहां-जहां मन कोमल है और शरीर से ज्यादा मजबूत है, वहीं-वहीं सपना आसान हो जाता है।
तीन दिन का उपवास, तीन दिन की अनिद्रा, और फिर तीन दिन सतत एक ही मंत्र--यही तो मंत्रयोग है। तुम बैठे अगर राम-राम, राम-राम कहते रहो कई दिनों तक, पागल हो ही जाओगे। एक सीमा है झेलने की। वह तीन दिन तक कहता रहाः मैं भैंस हूं, मैं भैंस हूं, मैं भैंस हूं। हो गया। मंत्रशक्ति काम कर गयी।

लोग मुझसे पूछते हैं मंत्रशक्ति? उनको मैं यह कहानी कह देता हूं। यह मंत्रशक्ति है।
नागार्जुन द्वार पर खड़ा हंसने लगा। वह युवक बहुत शर्मिंदा भी हुआ और उसने कहा, लेकिन आप हंसें, यह बात जंचती नहीं। तुम्हारे ही बताए उपाय को मानकर मैं फंस गया हूं। अब मुझे निकालो। सींग बड़े हैं, द्वार से निकलते नहीं बनता। और मैं भूखा भी हूं। नींद भी सता रही है।
नागार्जुन उसके पास गया, उसे जोर से हिलाया। हिलाया तो थोड़ा वह तंद्रा से जागा। जागा तो उसने देखा, सींग भी नदारद हैं, भैंस भी कहीं नहीं है। वह भी हंसने लगा। नागार्जुन ने कहाः बस यही मुक्ति का सूत्र है। संसार तेरा बनाया हुआ है, कल्पित है।
संसार को छोड़ना नहीं है, जागकर देखना है। इसलिए जिन्होंने तुमसे कहा
कि संसार छोड़ो, उन्होंने तुम्हें मोक्ष में उलझा दिया। मैं तुम्हें संसार छोड़ने को इसीलिए नहीं कह रहा हूं। छोड़ने की बात ही भ्रांत है। जो है ही नहीं उसे छोड़ोगे कैसे? छोड़ोगे तो भूल में पड़ोगे। जो नहीं है उसे देख लेना, जान लेना कि वह नहीं है, मुक्त हो जाना है।
इसलिए बुद्ध ने कहाः असत्य को असत्य की तरह देख लेना मोक्ष है। असार
को असार की तरह देख लेना मोक्ष है। सारा राज देख लेने में है।
यह तो पूछो ही मत कि खोपड़ी से कैसे मुक्ति हो जाए। यह कौन है जो पूछ रहा है? यह खोपड़ी ही है जो पूछ रही है। अगर इस खोपड़ी की बात मानकर चले, तो इससे तुम कभी मुक्त न हो पाओगे। जागकर देखो, कौन पूछता है? गौर से सुनो, कौन प्रश्न उठाता है? यह कौन है जो मुक्त होना चाहता है? क्यों मुक्त होना चाहता है? बंधन कहां है?
और जिसने भी जागकर देखा, वह हंसने लगा; क्योंकि बंधन उसने कभी पाए नहीं। जागने में कोई बंधन नहीं है। इसलिए बुद्ध चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं, प्रमाद में मत जीयो। अप्रमाद! जागो! होश में आ जाओ! और तुम कहीं भी गए नहीं हो। तुम वहीं हो जहां तुम्हें होना चाहिए। भैंस तुम कभी हुए नहीं हो। तुम वही हो जो तुम हो। तुम परमात्मा हो। इससे तुम रत्तीभर यहां-वहां न हो सकते हो, न होने का कोई उपाय है।
हां, तुम भ्रांति में रह सकते हो। तुम अपने को जो चाहे समझ लो। मन शक्तिशाली है। तुम जो चाहोगे वही बन जाओगे। और जिस दिन भी तुम देखना चाहोगे, उस दिन तुम दृष्टि बन जाओगे।
दृष्टि मुक्ति है।
समझे थे तुझसे दूर निकल जाएंगे कहीं
समझे थे तुझसे दूर निकल जाएंगे कहीं
देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है
कहां जाओगे दूर निकलकर परमात्मा से? कहीं भी जाओगे, पाओगे उसके ही रास्ते में तुम्हारा मुकाम है।
समझे थे तुझसे दूर निकल जाएंगे कहीं
देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है
हर मुकाम उसी का है। हर पल उसी का है। अस्तित्व से दूर जाने का उपाय कहां है? कैसे जाओगे दूर? हां, सोच सकते हो, विचार कर सकते हो कि दूर निकल गए। और जब दूर निकलने का ख्याल आ जाएगा तो तुम चिल्लाओगे, पूछोगे, पास कैसे आ जाएं? अब जो तुम्हें पास आने का रास्ता बता देगा, वह तुम्हें भटका देगा। क्योंकि दूर अगर निकले होते, तो पास भी आ सकते थे। दूर कभी निकले ही नहीं, इसको ही जानना है।
तो अगर सार मैं तुमसे कहूंः बंधन की तरफ आंख करो। जहां-जहां बंधन दिखता हो, वहीं-वहीं ध्यान को लगाओ। बंधन ध्यान का विषय बन जाए। और तुम पाओगे, तुम्हारे ध्यान की ज्योति जैसे-जैसे सघन होती है, वैसे-वैसे बंधन तरल होकर बिखर जाता है। जिस दिन ध्यान की ज्योति परिपूर्ण सघन हो जाती है, अचानक तुम पाते हो कि बंधन गया। सपना था, टूट गया। नींद का ख्याल था, मिट गया।
बिखरा ध्यान हो, तो खोपड़ी है। इकट्ठा ध्यान हो, खोपड़ी गयी। विचार ध्यान के टुकड़े हैं। छितर गया ध्यान, जैसे दर्पण को किसी ने पटक दिया, खंड-

140

खंड हो गया। इकट्ठा जमा लो; बस उतना ही राज है। इसलिए ध्यान को चिंतन, मनन, विमर्श बनाओ। खोपड़ी से मुक्त हो जाने की बात मत पूछो। खोपड़ी में कुछ भी बुरा नहीं है; वहां भी परमात्मा ही विराजमान है। वह भी उसी का मंदिर है। वह भी उसकी ही रहगुजर है। वहां से वही गुजरता है।
अगर तुम गलत न समझो तो मैं तुमसे कहूंगा, विचार भी उसी के हैं, निर्विचार भी उसी का है। तनाव भी उसी का है, और शांति भी उसी की है। संसार भी उसी का है और मोक्ष भी उसी का है।
इसलिए झेन फकीरों ने एक बड़ी अनूठी बात कही है, जिसको सदियों तक लोग सोचते रहे हैं और समझ नहीं पाते हैं। झेन फकीरों ने कहा हैः संसार और मोक्ष एक ही चीज के दो नाम हैं। ठीक से न देखा तो संसार, ठीक से देख लिया तो मोक्ष। लेकिन सत्य एक ही है।
गैर-ठीक से देखने का ढंग क्या है? आंख बचा-बचाकर चलते हो। भीतर कामवासना है, तुम उसे देखते नहीं। तुम्हारे न देखने में ही वह बड़ी होती चली जाती है--भैंस के सींग बड़े होते चले जाते हैं। भीतर क्रोध है, तुम उसकी तरफ पीठ कर लेते हो डर के मारे कि कहीं आ ही न जाए, ऊपर न आ जाए, किसी को पता न चल जाए! भीतर-भीतर क्रोध की जड़ें फैलती जाती हैं। तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व विषाद, दुख, उदासी, भय और क्रोध के जहर से भर जाता है। और जितना ही यह बढ़ने लगता है, उतने ही तुम डरने लगते हो। जितने तुम डरने लगते हो, उतना ही तुम देखते नहीं; तुम आंख बचाने लगते हो। तुम अपने से आंख बचा-बचाकर कब तक भागोगे, कहां भागकर जाओगे?
तुम अपने से आंख बचा रहे हो, यही उलझन है। बचाओ मत। जो है, जैसा है, उसे देख लो। और मैं तुमसे कहता हूं, उसके देखने में ही मोक्ष है। जिसने देख लिया ठीक से अपने को, उसने सिवाय परमात्मा के और कुछ भी न पाया।
समझे थे तुझसे दूर निकल जाएंगे कहीं
देखा तो हर मुकाम तेरी रहगुजर में है

दूसरा प्रश्नः कभी-कभी भगवान बुद्ध और लाओत्से का बोध एक सा लगता है; मगर हैं दोनों एक-दूसरे के उलटे छोर पर। मेरी अपनी समस्या यह है कि मेरा स्वभाव प्रेम से ज्यादा ध्यान पर लगता है, और मैं सबसे ज्यादा लाओत्से से प्रभावित हूं। इसे कैसे सुलझाऊं?

सुलझाना क्या है? अगर सुलझी-सुलझी बात को उलझाना हो, तो बात अलग। इसमें कहां समस्या है?
कभी-कभी मैं हैरान होता हूं कि तुम कितने कुशल हो गए हो समस्या बनाने में! जहां नहीं होती वहां बना लेते हो! अगर ध्यान में मन लगता है तो समस्या क्या है? कौन तुमसे कह रहा है प्रेम में मन लगाओ? ध्यान में मन लग गया है, बस हो गयी बात। जिनका ध्यान में न लगता हो, वे प्रेम में लगाएं।
लेकिन मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैंः प्रेम में मन लगता है, ध्यान में नहीं लगता। बड़ी समस्या है! क्या करें?
अगर तुमने जिद्द ही बना ली है कि समस्या तुम बनाए ही चले जाओगे, तुम्हारी मौज है।
फिर से इस प्रश्न को गौर से सुनो, यह सभी का प्रश्न हैः
"कभी-कभी भगवान बुद्ध और लाओत्से का बोध एक सा लगता है; मगर हैं दोनों एक-दूसरे के उलटे छोर पर। मेरी अपनी समस्या यह है कि मेरा स्वभाव प्रेम से ज्यादा ध्यान पर लगता है।"
इसमें समस्या कैसी है? यह तो समाधान है। छोड़ो प्रेम की बकवास। तुम्हारे लिए बकवास है, उसकी तुम चिंता में मत पड़ो। हां, अगर समस्या ही बनानी हो, बिना समस्या के रहना ही मुश्किल पड़ता हो, तो बात अलग! फिर तुम्हारी मर्जी!
"और मैं सबसे ज्यादा लाओत्से से प्रभावित हूं।"
इसमें भी क्या बुराई है? यह तो बहुत ही बढ़िया है। बुद्ध को भूल ही जाओ। लेना-देना क्या है? लाओत्से काफी है।

तुम्हारी हालत ऐसी है कि तुम बाएं रास्ते पर चलते हो तो दायां रास्ता समस्या बन जाता है, कि दाएं पर चलते! अगर दाएं पर चलते हो तो बायां समस्या बन जाता है। दोनों रास्तों पर एक साथ चलोगे भी कैसे? तुम अकेले हो, रास्ते बहुत हैं। अनेक रास्ते हैं, अगर सब पर चलना चाहा तो पागल हो जाओगे। इतना तो होश रखो कि जो जम जाए, उस पर चल जाना है।
मैं तुमसे बुद्ध, लाओत्से, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट की बात कर रहा हूं, ताकि कोई तुम्हें जम जाए। मगर मैं जानता हूं, तुम खतरनाक हो। तुम बजाय किसी को जमाने के, अगर तुम कहीं थोड़े-बहुत जमे भी होओगे, तो उसको भी उखाड़ डालोगे।
मैं तुम्हें सब रास्ते खोले दे रहा हूं, ताकि जिससे तुम्हारा तालमेल बैठ जाए, वहीं से तुम्हारी मंजिल आ जाए। कोई बुद्ध ने ठेका नहीं लिया है कि बुद्ध के साथ ही जाओगे तो ही पहुंचोगे। लाओत्से एकदम बढ़िया है। रास्ता ठीक है। तुम चल पड़ो। डगमगाते क्यों हो? जहां समस्या नहीं है वहां तुम समस्या कैसे देख लेते हो? ऐसा लगता है कि बिना समस्या देखे तुम जी नहीं सकते, क्योंकि फिर तुम करोगे क्या?
एक मेरे पुराने मित्र हैं। मेरे साथ पढ़े भी। फिर मेरे साथ विश्वविद्यालय में शिक्षक भी थे। कोई पंद्रह साल बाद मुझे मिलने आए। कहने लगे, आपकी सब समस्याएं मिट गयीं? कोई प्रश्न न रहा? तो फिर आप करते क्या होओगे? खाली आदमी जीएगा कैसे? कुछ तो करने को चाहिए!
उनकी तकलीफ मैं समझता हूं। वे सोच भी नहीं सकते कि खाली होने में भी कोई रस हो सकता है। खाली होना उन्हें घबड़ाहट देगा। कुछ भी करने को नहीं है। कोई समस्या नहीं है, कोई प्रश्न नहीं है। न हो, तो आदमी बना लेता है। मैं तुमसे कहता हूं, समस्याएं हैं नहीं, तुमने बनायी हैं। इस प्रश्न
की ही बात नहीं कर रहा हूं; तुम्हारे सब प्रश्नों की बात कर रहा हूं। यह प्रश्न तो बहुत सीधा-साफ है, इसलिए तुम पकड़ में आ गए। तुम बहुत चालबाजी भी करते हो। तुम ऐसे भी प्रश्न बनाते हो कि कोई पकड़ नहीं सकता।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, सब प्रश्न तुम्हारे बनाए हुए हैं। तुम चूंकि खाली होने से डरते हो, इसलिए कोई न कोई समस्या बनाए चले जाते हो। समस्या है, तो हल करने की सुविधा है। हल होगा तब होगा! विधि खोजेंगे, विधान खोजेंगे, शास्त्र खोजेंगे--कुछ व्यस्तता रहेगी!
इस संसार में बड़ी अजीब अवस्था है! आदमी दुख को भी इसीलिए नहीं छोड़ता
कि दुख में उलझा तो रहता है, लगा तो रहता है, कुछ काम तो करता रहता है। तुम कहते जरूर हो कि दुख मिट जाए; लेकिन तुमने सच में कभी चाहा नहीं कि दुख मिट जाए, क्योंकि फिर तुम करोगे क्या! तुम कहते हो अशांति मिट जाए, लेकिन तुमने कभी पूछा कि अशांति मिट जाएगी तो तुम करोगे क्या! नहीं, भीतर एक भरोसा है कि मिटने वाली नहीं है, इसलिए पूछते रहो, कोई हर्जा नहीं है। मिटेगी थोड़े ही!
तुम्हारे सामने अगर एकदम से शून्य का द्वार खुल जाए, तुम भाग खड़े होओगे। तुम फिर लौटकर न देखोगे।
रवींद्रनाथ का गीत है कि जन्मों-जन्मों तक खोजा परमात्मा को। जब तक न मिला, तब तक बड़ी बेचैनी थी, और दौड़ थी, और तड़फ थी। लोग तड़फ का भी बड़ा मजा लेते हैं, बड़ा प्रदर्शन करते हैं। परमात्मा को खोजने जा रहे हैं! अहंकार की बड़ी तृप्ति होती है! कहीं दूर उसकी झलक मिलती है तो जन्मों-जन्मों तक यात्रा करके वहां पहुंचते हैं, लेकिन तब तक वह कहीं और जा चुका होता है। पर एक दिन मुश्किल हो गयी, उसके द्वार पर ही पहुंच गए! तख्ती लगी थी। पुराना जोश जन्मों-जन्मों का पाने का--एकदम चढ़ गए सीढ़ी। सांकल हाथ में ले ली। तभी समझ आयी, कि अगर वह मिल ही गया तो फिर क्या करेंगे! कहीं यह घर सच में ही उसका हुआ! धोखा हुआ, तब तो कोई अड़चन नहीं है, फिर खोज पर निकल जाएंगे। खोज भरे रखती है। अगर सच में ही यह घर उसका हुआ--फिर?
रवींद्रनाथ की कविता बड़ी महत्वपूर्ण है। लिखा है कि आहिस्ता से सांकल छोड़ दी कि कहीं बज न जाए--भूल-चूक--कहीं वह द्वार खोल ही न दे! जूते उतारकर हाथ में ले लिए कि कहीं सीढ़ियों से उतरते वक्त आवाज न हो जाए! और फिर जो भागा हूं तो पीछे लौटकर नहीं देखा। अब फिर खोजता हूं, हालांकि मुझे उसका

घर पता है। उस जगह को छोड़कर सब जगह खोजता हूं। वहां भर नहीं जाता, क्योंकि मुझे मालूम है।
यह कहीं हालत तुम्हारी भी तो नहीं है? जब मैं गौर से तुम्हारे भीतर देखता हूं तो पाता हूं, यही हालत तुम्हारी है। तुम्हें भी उसका घर पता है। तुम भाग खड़े हुए हो। वह घर तुम्हारे भीतर है। वहां तुम जाते ही नहीं, सब जगह तुम खोजते हो। वहां भर जाकर तुम ठिठकते हो, डरते हो।
नहीं, कोई समस्या मत बनाओ। अगर ध्यान में रस आ गया, तो प्रेम अपने आप आ जाएगा। यही तो मैं तुमसे कह रहा हूं कि दो ढंग हैं। उनको दो ढंग भी कहना ठीक नहीं; वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ध्यान से चलो, तो प्रेम अपने आप आ जाता है। प्रेम से चलो, तो ध्यान अपने आप आ जाता है। और हर आदमी अलग-अलग ढंग से बना है।
मुहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता
यह गीत है मुहब्बत का, जो किन्हीं साजों पर गाया जाता है। सभी साजों
पर नहीं गाया जाता। लेकिन यही बात ध्यान के लिए भी सच है। उसके लिए भी कुछ खास दिल मखसूस होते हैं। वह भीः
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता
मीरा के साज पर प्रेम का गीत जमा। बुद्ध के साज पर ध्यान का गीत जमा। गाया--यह असली बात है। भरपूर गाया। समग्रता से गाया। ध्यान को गाया या प्रेम को गाया--ये पंडित सोचते रहें। गा लिया! गीत अनगाया न रहा! जो छिपा था वह प्रगट हो गया! जो बंद था कली में वह फूल बना! वह जो बीज में दबा था, चांद-तारों से उसने बात की! खुले आकाश में गंध फेंकी! दूर-दूर तक संदेश दिए! लुट गया! परिपूर्ण हुआ!
गीत तुम कौन सा गाओ, इसका बहुत सवाल नहीं है। और ध्यान रखना, गीत तुम अपना ही गा सकोगे; दूसरे का गीत तुम कैसे गाओगे? यही तो मैं सतत तुम्हारे सिर पर हथौड़ी की तरह चोट मारता रहता हूं कि गीत तुम अपना ही गा सकोगे, किसी और का नहीं। उधार भी गीत गाकर कहीं तुम गायक बन सकोगे? हां, मीरा की नकल करके अगर नाच लिए और भीतर कोई प्रेम का रस जगता ही न था, तो तुम्हारा नाच झूठा होगा। और झूठे नाच से तुम सच्चे परमात्मा तक न पहुंच पाओगे। नाच थोड़े ही पहुंचाता है, नाच की सच्चाई पहुंचाती है। प्रामाणिकता, उसकी गहराई! अगर बुद्ध की तरह वृक्ष के, बोधिवृक्ष के नीचे शांत बैठना ही तुम्हारा स्वभाव हो तो उससे भी पहुंच जाओगे। क्योंकि बैठना थोड़े ही पहुंचाता है, बैठने की सच्चाई!
झेन फकीर कहते हैं, सिर्फ बैठना काफी है। इससे ज्यादा करने की कोई जरूरत नहीं है। जो चुप होकर बैठ गया, वह पहुंच गया। क्योंकि जाना कहां है? अपने ही भीतर, अपने ही भीतर उतर जाना है। कुछ करने की जरूरत नहीं है।
तुम यह मत समझना कि मीरा नाचकर वहां पहुंचती है। नाचने से उसका क्या लेना-देना है? या बुद्ध बैठकर पहुंचते हैं। बैठने से भी क्या लेना-देना है? कोई भी कृत्य जो तुम्हारी परिपूर्णता से आता है, वही पहुंचा देता है। परिपूर्णता पहुंचाती है।
और ध्यान रखना उधारी से तुम न पहुंचोगे। कोई प्रॉक्सी वहां नहीं चलती। तुम ही जाओगे तो ही... । कोई दूसरा तुम्हारी जगह हाजिरी न भरवा सकेगा। तुम किसी दूसरे से न कह सकोगे। वह कोई भारतीय विश्वविद्यालय की कक्षा नहीं है कि एक मित्र को कह गए कि जब मेरा नाम आए तो कह देना। मैं खुद ही यही करता रहा सालों। लेकिन उस सत्य के जगत में कोई प्रॉक्सी, कोई दूसरा तुम्हारे लिए यस सर न कह सकेगा। तुम ही मौजूद होओगे तो ही... ।
एक ख्याल रखो बातः अपने साज को पहचानो। ध्यान से मन लग रहा है, तो तुम्हारा साज खुद ही तुमसे कह रहा है कि गाओ गीत ध्यान का।
मुहब्बत के लिए कुछ खास दिल मखसूस होते हैं
ये वो नग्मा है जो हर साज पर गाया नहीं जाता
पर ध्यान भी ऐसा ही है। हर कोई ध्यान न कर सकेगा। मीरा को लाख कहो कि बैठ जा तू, वह बैठ न सकेगी। वह बैठना दूभर हो जाएगा। बुद्ध को कहोः नाचो। थोड़ा सोचो, उन पर कैसी मुसीबत न आ जाएगी! तुम कितना ही बैंड-बाजा बजाओ, उनके

पैर में थिरकन भी न होगी। तुम्हारा बैंड-बाजा सुनकर वे और भी आंख बंद करके शांत हो जाएंगे।
अलग-अलग साज हैं। अलग-अलग नग्मे हैं। हर साज का अपना नग्मा है। अपने साज को पहचानो, नग्मे की नकल मत करना। तुम्हारा साज बजने लगे! गुलाब गुलाब बने, कमल कमल बने। जब वे खिल जाएंगे, तो दोनों ही परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाते हैं। एक ही बात ख्याल रहे, इस बात को ही मैं आस्तिकता कहता हूं--
जो कहोगे तुम कहेंगे हम भी हां यूं ही सही
आपकी गर यूं खुशी है मेहरबां यूं ही सही
परमात्मा की तरफ बस यह एक भाव रहे कि तुम जो कहोगे--ध्यान तो ध्यान। साज से पूछ लेना, वह परमात्मा का बनाया हुआ है।
जो कहोगे तुम कहेंगे हम भी हां यूं ही सही
आपकी गर यूं खुशी है मेहरबां यूं ही सही
तुम अपनी खुशी बीच में मत डालना। तुम यह मत कहना कि मैं तो प्रेम का गीत गाऊंगा। वही नास्तिकता है। तुम यह मत कहना कि मैं तो ध्यान का ही गीत गाऊंगा, चाहे साज पर बैठता हो या न बैठता हो। वही नास्तिकता है। जिसने अपनी जिद्द लानी चाही अस्तित्व के विपरीत, वही नास्तिक है। जिसने अस्तित्व को हां कहा--हां, मेहरबां यूं ही सही--बस, उसके लिए मंदिर के द्वार खुले हैं।

तीसरा प्रश्नः हम प्रमादी लोगों के जीवन में सपने ही सपने हैं, पर सपनों का सत्य क्या है? क्या प्रमाद रहते उसे हम जान सकते हैं?

सपने ही सपने हैं--यह तुमने मुझे सुनकर समझ लिया। इतने जल्दी मत मान लेना। जानना जरूरी है, मानना नहीं। मैंने कह दिया और तुमने मान लिया, तो काम न चलेगा; उधार हो गयी बात। तुम्हें ही खोजना पड़ेगा कि सपने हैं।
बहुत लोग भटक जाते हैं दूसरों की बात मानकर। क्योंकि मैं लाख कहूं कि सपना है, अगर तुम्हें भीतर सच ही लग रहा है, तो तुम मेरी मानते भी रहोगे और चलते भी उसी की दिशा में रहोगे जो तुम्हें सच लग रहा है। यही तो उलझन है आदमी की।
बुद्ध कहते हैंः क्रोध पागलपन है। तुमने सुन लिया, इनकार भी न कर सके।
और बुद्ध बलशाली हैं। जब वे कहते हैं, तो उनके कहने में वजन है। जब वे कहते हैं, तो उनका पूरा व्यक्तित्व उसका प्रमाण है। तुम इनकार भी नहीं कर सकते। बुद्ध से तर्क भी नहीं कर सकते। और बहुत गहरे में तुम्हारा सोया हुआ बुद्धत्व भी भीतर से हां भरता है कि ठीक है। कितना ही तुम झुठलाओ अपने भीतर को, वह भीतर भी कहता है कि ठीक है।
संगीतज्ञ कहते हैं कि अगर कोई बड़ा कुशल संगीतज्ञ वीणा बजाए, और दूसरी वीणा कमरे में सिर्फ रखी हो, तो उसके तार भी झनझनाने लगते हैं; वे भी जवाब देने लगते हैं; वे भी प्रतिध्वनित होने लगते हैं। पुराने दिनों में तो यही कसौटी थी संगीतज्ञ की कि कोई अगर सच में वीणा बजाने में कुशल हो गया है, तो वह तभी कुशल माना जाता था, जब दूसरे कोने में रखी वीणा जवाब देने लगे। तुम्हारी वीणा भर बजाने का सवाल नहीं है। अगर तुम्हारी वीणा सच में बज रही है, तो प्रतिध्वनि उठनी शुरू हो जाएगी, शांत कोने में बैठी वीणा से भी। क्योंकि वह वीणा भी ऐसी ही वीणा है--सोयी है। किसी ने छेड़ा नहीं है उसके तारों को। लेकिन यह आवाज छेड़ देगी।
जब बुद्ध की बजती वीणा के पास तुम आते हो, या मीरा, या चैतन्य की नाचती हुई अपूर्व घटना के पास तुम आते हो, तुम्हारे भीतर का बुद्ध भी संवेदित होता है, संचालित होता है; तुम्हारे भीतर का बुद्ध भी प्रतिध्वनित होता है। तो तुम ही भीतर से अनुभव करते हो कि ठीक है। और बुद्ध का बल है, वह भी कहता हैः ठीक है। लेकिन इन दोनों के बीच में तुम्हारा अपना अनुभव है, उसकी बड़ी पर्त है। वह तुमसे कहे चली जाती है कि बुद्ध ठीक कहते हैं, लेकिन अभी मेरे लिए नहीं। ठीक हैं अंत में, पर अभी मैं संसारी आदमी हूं। होगा ठीक आखिर में, फिर भी कौन जाने!

तुम बीच में संदेह भी उठाते जाते हो। तुम तर्क भी नहीं कर सकते, बुद्ध
से लड़ भी नहीं सकते और बुद्ध को तुम स्वीकार भी कैसे करो? इनकार भी नहीं कर सकते, स्वीकार करना भी मुश्किल है--इन दोनों के बीच दुविधा में तुम्हारा जीवन हो जाता है। तब तुम मानते बुद्ध की हो और करते अपनी। तब तुम मानते तो यही हो--दीवाल पर लिख लेते हो, क्रोध पाप है; लेकिन तुम्हारी जिंदगी में क्रोध ही क्रोध लिखा होता है। तुम कहते हो, यह तो दीवाल पर इसलिए लिखा है ताकि याद रहे। लेकिन जब तुम्हें भीतर ही याद नहीं रहता तो दीवाल पर लिखा हुआ क्या याद आएगा, क्या काम पड़ेगा? हां, जब तुम क्रोध न करोगे, तब तुम पढ़ लोगे और पछता लोगे। और जब क्रोध आएगा, तब तो तुम्हें भीतर की लिखावट भी दिखायी नहीं पड़ती, दीवाल को कौन देखेगा?
जीयोगे तुम अपने ही ढंग से, मान लोगे बुद्ध की। उससे एक अड़चन पैदा होगी, एक दुविधा, एक द्वंद्व; तुम दोहरे हो जाओगे, तुम पाखंडी हो जाओगे। कहोगे कुछ, करोगे कुछ। जो कहोगे उसके विपरीत करोगे। जो करोगे उसके विपरीत कहोगे।
इसीलिए तो अगर किसी से सलाह लेनी हो तो नासमझ से नासमझ आदमी भी बड़ी बुद्धिमानी की सलाह दे सकता है। अगर तुम किसी मुसीबत में हो, किसी से भी पूछ लो जो उस मुसीबत में नहीं है, वह तुम्हें ऐसी सलाह देगा कि बुद्ध भी सोचें कि शायद हमसे भी ऐसी सलाह देते न बनती। लेकिन जब तुम उस आदमी को मुसीबत में देखोगे तो तुम पाओगे, वह तुम्हारे जैसा ही व्यवहार कर रहा है। अपनी सलाह अपने ही काम नहीं आती। कहां भूल हो गयी है?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः हमें ज्ञान तो सब है, हमें मालूम
सब है कि क्या ठीक है और क्या गलत है, लेकिन ठीक फिर होता क्यों नहीं?
ठीक होने के लिए कोरा ज्ञान काफी नहीं है। ठीक होने के लिए ध्यान जरूरी है, ज्ञान जरूरी नहीं है। ज्ञान के बिना भी ठीक हो सकता है, ज्ञान के होते भी ठीक न हो। ध्यान चाहिए।
मैंने कहा कि सपना है तुम्हारी जिंदगी, मेरी बात मान मत लेना। अन्यथा मुझ से तुम्हें लाभ न हुआ, हानि हो गयी; मैंने तुम्हारी जिंदगी को बदला नहीं, पाखंडी कर दिया। तुम रहोगे तो अपने सपने में ही और कहते जाओगे, सपना है। तुम रहोगे तो माया में और माया को गाली देते चले जाओगे।
तुम देख सकते हो, तुम्हारे साधु-संन्यासियों को मिल सकते हो, वे वही
कर रहे हैं जिसको गाली दिए चले जाएंगे। स्वाभाविक है यह द्वंद्व, क्योंकि जो वे कह रहे हैं वह शास्त्रों से उधार है। वह उन्होंने स्वयं जाना नहीं। सुकरात का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः ज्ञान क्रांति है। जिसने जान लिया,
वह बदल गया। अगर जानने के बाद भी न बदलो, तो समझना कि जाना ही नहीं। यह तो प्रश्न बिल्कुल गलत है कि हम जानते हैं, फिर बदलाहट क्यों नहीं होती? यह तो असंभव है। जिसने जान लिया आग जलाती है, वह आग में हाथ न डालेगा। और अगर डालता हो, तो सिर्फ एक ही प्रमाण देता है कि उसने सुना होगा किसी से कि आग जलाती है, खुद जाना नहीं है। खुद तो वह यही जानता है कि आग बड़ी शीतल है।
और अगर एक आग जला देती है तो भी नहीं सीखता, क्योंकि वह सोचता है, जरूरी थोड़े ही है कि दूसरी आग भी जलाती हो। फिर तीसरी भी आग है। जिंदगी में हजार रंग हैं आग के। एक रंग जला देता है, तो दूसरा जलाएगा यह कोई जरूरी थोड़े ही है। वह प्रयोग करता चला जाता है। और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाता है आग से जलने का। फिर जलने की पीड़ा भी नहीं होती, फिर चमड़ी उसकी इतनी जल चुकी होती है कि जलने की संवेदना भी नहीं होती।
क्रोध का पता भी उन्हीं को चलता है जो अभी नए-नए अभ्यास कर रहे हैं। जो पुराने अभ्यासी हैं, उन्हें क्रोध का कोई पता ही नहीं चलता, वे मजे से क्रोध में जीते हैं। जैसे नाली का कीड़ा नाली में जीता है, कुछ पता नहीं चलता। तुम उनसे कहो भी कि यह क्रोध बुरा है, वे कहेंगे कि हम तो बड़े मजे में हैं। सच तो यह है, उन्हें अगर क्रोध करने का मौका न मिले तो बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है। तलफ लगती है। अगर उन्हें दो-चार दिन क्रोध करने का मौका न मिले तो वे पागल हो जाएंगे, वे कुछ न कुछ उपाय खोज लेंगे। वे कहीं न कहीं कोई झंझट खड़ी कर लेंगे। वे किसी न किसी से जाकर जूझ जाएंगे, तभी उनको थोड़ी राहत मिलेगी।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पूरी मनुष्य-जाति लड़ने को आतुर है। इसलिए तो
हर दस वर्ष में एक महायुद्ध की जरूरत पड़ जाती है। इतना क्रोध लोग इकट्ठा कर लेते हैं कि फिर छोटे-मोटे झगड़े से काम नहीं चलता, पति-पत्नी के झगड़े से हल नहीं होता--वह तो रोज चलता रहता है, वह तो अभ्यास है--फिर कोई महायुद्ध चाहिए, जहां सब लपटों में हो जाए, जहां विध्वंस करने की पूरी छूट मिल जाए, जहां लाखों लोग मारे जाएं। तब कहीं दस-पंद्रह साल के लिए आदमी का मन थोड़ा हलका होता है।
तुम सोचते हो, हिंदू-मुसलमान इसलिए लड़ते हैं कि उनके धर्म अलग-अलग हैं, तुम गलती में हो। तुम सोचते हो, हिंदुस्तान-पाकिस्तान इसलिए लड़ते हैं कि उनकी राजनीति अलग-अलग है, तुम गलती में हो। तुम सोचते हो, रूस-अमरीका इसलिए लड़ते हैं कि उनका सिद्धांत और शास्त्र अलग-अलग है, तुम गलती में हो। शास्त्र बदल दो, सिद्धांत बदल दो, धर्म बदल दो--लड़ाई जारी रही है। हिंदू- मुसलमान न लड़ेंगे, तो गुजराती-मराठी लड़ेंगे--वे दोनों ही हिंदू हैं। हिंदू-मुसलमान न लड़ेंगे, तो पूर्व पाकिस्तान पश्चिम पाकिस्तान से लड़ेगा-- वे दोनों ही मुसलमान हैं। जिन्ना के भूत को भी स्मरण नहीं आता होगा कि यह कैसे हो रहा है? समझ में नहीं आता होगा कि यह कैसे हो रहा है? मुसलमान मुसलमान से लड़ रहे हैं! छोड़ो, पाकिस्तान दोनों अलग हो गए अब तो, अब बंगला देश में बंगला मुसलमान ही बंगला मुसलमान की हत्या कर रहा है।
आदमी हत्या में उत्सुक है, बाकी सब बहाने हैं। आदमी मारने में उत्सुक है, क्योंकि आदमी जीना नहीं जानता। आदमी क्रोध के लिए आतुर है, क्योंकि आदमी प्रेम की कला भूल गया है। आदमी के साज पर प्रेम का, ध्यान का नग्मा बजता ही नहीं; साज ही टूट गया है। साज से बस ऐसी ही आवाजें उठती हैं--युद्ध की, विध्वंस की।
एक बात ख्याल रखना, पाखंडी मत बन जाना। मैं जो कहता हूं, उसे मान लेने
की जरूरत नहीं है, उसे जानने की जरूरत है। तुम मेरी मानकर आचरण में मत बदलने लगना उसे, अन्यथा तुम सदा के लिए भटक जाओगे।
तुम्हारे धर्मगुरु तुमसे यही कहते हैं कि सुन लिया, अब इसे आचरण में लाओ। मैं तुमसे कहता हूं, सुन लिया, अब इसे जानो, आचरण की बकवास मत उठाओ। क्योंकि जानने वाले के लिए आचरण अपने आप आ जाता है।
आचरण छाया है ज्ञान की। ज्ञान क्रांति है। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि आचरण में लाओ। यह तो बात ही व्यर्थ है। मैं तुमसे इतना ही कहता हूं, जो तुमने मुझसे सुना, समझ मत लेना कि तुमने जान लिया। मुझसे तुमने सिर्फ सुना, यह एक परिकल्पना है तुम्हारे लिए। मैंने तुम्हें एक कुंजी दी खोज के लिए, खोज तुम्हें करनी पड़ेगी। यह खजाना नहीं है, यह सिर्फ कुंजी है। इस कुंजी को तुम खीसे में रखे रहो, इससे खजाना न मिल जाएगा; खजाना तुम्हें खोजना पड़ेगा। जो मैंने कहा, इसको तुम दिशासूचक-संकेत समझो। यह मील का पत्थर है, जिस पर तीर लगा है कि आगे जाना है। इस मील के पत्थर को मंजिल मत समझ लेना; यात्रा करना। और मैं तुमसे कहता हूं, यात्रा आचरण की नहीं, ज्ञान की; क्योंकि जब ज्ञान आता है, तो आचरण अपने से आ जाता है। जिसने ठीक जान लिया, वह ठीक हो जाता है।
सम्यक-बोध सम्यक-जीवन की आधारशिला है। इसलिए महावीर ने कहाः सम्यक-ज्ञान। बुद्ध ने कहाः सम्यक-दृष्टि। ठीक-ठीक दृष्टि, बस, पर्याप्त है; बाकी तो सब विस्तार की बातें हैं।
लेकिन सस्ता मालूम पड़ता है यह। मैंने कहा, तुमने मान लिया--यह बिल्कुल सरल है। तुम्हें कुछ करना ही न पड़ा, तुमने सुन लिया। तुम तो शायद यह समझते हो कि सुनने में भी तुम कुछ मुझ पर एहसान कर रहे हो।
मेरे पास लोग पत्र लिखकर भेज देते हैं कि हम आपको इतने दिन से सुन रहे हैं, अभी तक कुछ क्यों नहीं हुआ? जैसे मेरा कोई कसूर है! जैसे उन्होंने इतने दिन से सुना है तो बड़ी कृपा की है। लिखकर भेज देते हैं कि हम हजारों मील से चलकर आए हैं और अभी तक कुछ नहीं हुआ! तुम हजारों मील से चलकर आए हो, इससे तुमने मुझ पर कोई एहसान नहीं किया। कुछ अभी तक क्यों नहीं हुआ? तुम क्या सोचते हो, मुझे सुनकर ही कुछ हो जाएगा? अगर ऐसा होता, तो सारी दुनिया कभी की बदल गयी होती।

तो दुनिया में दो तरह की मूढ़ताएं हैं। एक मूढ़ता कि लोग सोचते हैं कि सुन लिया, सब हो गया। पंडित हो जाते हैं। दूसरी मूढ़ता, सुन लिया, उसको आचरण में लाने लगे। पाखंडी हो जाते हैं।
सुनो और उसे जानो। वह ठीक सूत्र है। आचरण की चिंता मत करो। और सुनने को, जान लिया ऐसा मत मानो। तब तुम सम्यक-मार्ग पर हो।
तुम्हारे सपने सपने हैं--ऐसा मैं कहता हूं, बुद्ध कहते हैं। ठीक ही कहते होंगे, ऐसा तुम समझो। इतनी श्रद्धा रखो कि ठीक कहते होंगे। लेकिन खोजना है तुम्हें। उनके ठीक का तुम्हें गवाह होना है। जब तक तुम उनके गवाह न बन जाओ, जब तक तुम भी अपने जीवन के अनुभव से न कह सको कि हां, ठीक, तब तक जल्दी मत करना। और सपने को जानने का एक ही उपाय है कि तुम थोड़े जागो। सपने में सपना तो याद नहीं आता। सपने में सपना तो पहचान नहीं आता। सुबह जागकर पहचान आता है कि रात सपना देखा। जब तुम सपना देखते हो तब तो सपना ही सत्य होता है।
लोग कहते हैं, हम कान की सुनी नहीं मानते, आंख की देखी मानते हैं। मगर आंख की देखी का भी कितना भरोसा है? रोज सपना देखते हो, सुबह उठकर पाते हो सब झूठ था। न यहां कान का भरोसा है, न यहां आंख का भरोसा है। यहां भरोसा ही नहीं है। इसलिए बहुत कदम सम्हाल-सम्हालकर चलना है। सुबह उठकर पता चलता है कि सपना था, रात पता नहीं चलता। और हजार बार ऐसा हो चुका है। हर रात सपना देखा, हर सुबह पता चला--फिर भी जब तुम सांझ फिर सो जाते हो, फिर भूल जाते हो। सपने में ही जागना पड़ेगा। सपने को देखना पड़ेगा। और मजा यह है कि जो जागता है वही देख पाता है कि सपना सपना है; और साथ में यह भी कि जैसे ही तुम देख पाते हो सपना सपना है--सपना तिरोहित हो जाता है। तुम जाग गए, फिर सपना हो कैसे सकता है?
तो उन्होंने ही जाना, जो जागे। और जिन्होंने जाना और जागे, उनका सपना मिट गया। तो जागना ही सपने से मुक्त होने की भी कला है--सपने को जानने की भी और सपने से मुक्त होने की भी।

चौथा प्रश्नः ओशो-ए-इश्क ने हमें निकम्मा कर दिया
वरना आदमी थे हम भी कुछ काम के

काम के तो रहे हो, राम के नहीं थे। और काम की दुनिया में जब तक निकम्मे
न हो जाओ, तब तक राम की दुनिया में गति नहीं होती। काम की दुनिया ही तो संसार है। काम की दुनिया से जागो, तो ही राम की दुनिया की पात्रता उपलब्ध होती है। और काम की दुनिया में चल-चलकर किसको क्या मिला? रहे होओगे काम के, लेकिन पाया क्या? अगर पा लिया ही होता तो मेरे पास ही क्यों आते? तब तो मैं तुम्हारे पास आता।
नहीं, काम बहुत काम का सिद्ध नहीं हुआ।
एक सूफी कथा है। गजनी के महमूद के दरबार में एक आदमी आया। वह अपने बेटे को साथ लाया था। उसने बेटे को बड़े ढंग से बड़ा किया था, बड़े संस्कारों में ढाला था, बड़ा परिष्कृत किया था। सदा से उसकी यही आकांक्षा थी कि उसका एक बेटा कम से कम महमूद के दरबार में हिस्सा हो जाए। उसने उसके लिए ही उसे बड़ी मेहनत से तैयार किया था। उसे पक्का भरोसा था, क्योंकि उसने सभी परीक्षाएं भी उत्तीर्ण कर ली थीं और जहां-जहां, जहां-जहां उसे पढ़ने-लिखने भेजा था, गुरुओं ने बड़े प्रमाण-पत्र दिए थे और उसकी बड़ी प्रशंसा की थी। वह बड़ा बुद्धिमान युवक था। सुंदर था, दरबार के योग्य था। आशा थी बाप को कि कभी न कभी वह बड़ा वजीर भी हो जाएगा।
महमूद से आकर उसने कहा कि मेरे पांच बेटों में यह सबसे ज्यादा सुंदर, सबसे ज्यादा स्वस्थ, सबसे ज्यादा बुद्धिमान है। यह आपके दरबार में शोभा पा सकता है, आप इसे एक मौका दें। और जो भी जाना जा सकता है, इसने जान लिया। महमूद ने सिर भी ऊपर न उठाया। उसने कहा, एक साल बाद लाओ।
सोचा बाप ने, शायद अभी कुछ कमी है, क्योंकि सम्राट ने चेहरा भी उठाकर न देखा। उसे एक साल के लिए और अध्ययन के लिए भेज दिया। सालभर के बाद जब वह और अध्ययन करके लौट आया--अब अध्ययन को भी कुछ न बचा, वह आखिरी डिग्री ले आया--

फिर लेकर पहुंचा। महमूद ने उसकी तरफ देखा; लेकिन कहा, ठीक है, लेकिन इसकी क्या विशेषता है? किसलिए तुम चाहते हो कि यह दरबार में रहे? तो उसके बाप ने कहा, इसे मैंने सूफियों के सत्संग में बड़ा किया है। सूफी-मत के संबंध में जितना बड़ा अब यह जानकार है, दूसरा खोजना मुश्किल है। यह आपका सूफी सलाहकार होगा। रहस्य धर्म का कोई न कोई जानने वाला दरबार में होना चाहिए, नहीं तो दरबार की शोभा नहीं है। सब हैं आपके दरबार में--बड़े कवि हैं, बड़े पंडित हैं, बड़े भाषाविद हैं, कोई सूफी नहीं। महमूद ने कहा, ठीक है। एक साल बाद लाओ। एक साल बाद फिर लेकर उपस्थित हुआ। अब तो बाप भी थोड़ा डरने लगा कि यह तो
हर बार एक साल... !
महमूद ने कहा कि ऐसा करो, तुम्हारी निष्ठा है, तुम सतत पीछे लगे हो, इसलिए मुझे भी लगता है कुछ करना जरूरी है। तुम हार नहीं गए हो, हताश नहीं हो गए हो! अब ऐसा करो--इस युवक को उसने कहा--कि तुम जाओ और किसी सूफी को अपना गुरु मान लो, और किसी सूफी को खोज लो जो तुम्हें अपना शिष्य मानने को तैयार हो। तुम्हारा गुरु मान लेना काफी नहीं है। कोई गुरु तुम्हें शिष्य भी मानने को तैयार हो। फिर सालभर बाद आ जाना।
वह युवक गया। एक गुरु के चरणों में बैठा। सालभर बाद बाप उसको लेने आया। वह गुरु के चरणों में बैठा था, उसने बाप की तरफ देखा ही नहीं। बाप ने उसे हिलाया कि नासमझ, क्या कर रहा है? उठ, साल बीत गया, फिर दरबार चलना है। उसने बाप को कोई जवाब भी न दिया। वह अपने गुरु के पैर दबा रहा था, वह पैर ही दबाता रहा। बाप ने कहा कि व्यर्थ गया; काम से गया, निकम्मा सिद्ध हो गया। इसीलिए हमने तुझे पहले किसी सूफी फकीर के पास नहीं भेजा था। हम सूफी पंडितों के पास भेजते रहे; यह महमूद ने कहां की झंझट बता दी कि कोई गुरु खोज, और फिर कोई गुरु जो तुझे शिष्य की तरह स्वीकार करे! तू सुनता क्यों नहीं? क्या तू पागल हो गया है, कि बहरा हो गया है? मगर वह युवक चुप ही रहा। साल बीत गया, बाप दुखी होकर घर लौट गया। महमूद ने पुछवाया कि लड़का आया क्यों नहीं? बाप ने कहा कि व्यर्थ हो गया, निकम्मा साबित हो गया। क्षमा करें, मेरी भूल थी, मैंने पत्थर को हीरा समझा।
लेकिन महमूद ने अपने वजीरों से कहा कि तैयारी की जाए, उस आश्रम में जाना पड़ेगा। महमूद खुद आया। द्वार पर खड़ा हुआ। गुरु लड़के को हाथ से पकड़कर दरवाजे पर लाया और महमूद से उसने कहा कि अब तुम्हारे यह योग्य है; क्योंकि पहले तो यह तुम्हारे पास जाता था, अब तुम इसके पास आए। बाप की दृष्टि में यह निकम्मा हो गया, किसी काम न रहा! अब यह परमात्मा की दुनिया में काम का हो गया है। अगर यह राजी हो, और तुम ले जा सको, तो तुम्हारा दरबार शोभायमान होगा। यह तुम्हारे दरबार की ज्योति हो जाएगा। कहते हैं, महमूद ने बहुत हाथ-पैर जोड़े, पर उस युवक ने कहा कि अब इन चरणों को छोड़कर कहीं जाना नहीं है। दरबार मिल गया!
ठीक पूछते हो तुम कि "वरना आदमी थे हम भी कुछ काम के।"
जरूर किसी न किसी काम के रहे ही होओगे। संसार में सभी काम के आदमी हैं!
और मेरे पास आकर तुम मेरे प्रेम में निकम्मे भी हो गए हो, वह भी सच है। लेकिन, एक ऐसा निकम्मापन भी है जहां राम में प्रवेश शुरू होता है। और ध्यान रखना, काम के आदमी तो भिखारी हैं; भिक्षापात्र ही हाथ में रहता है, कभी भरता नहीं। राम के आदमी ही भर जाते हैं। एक तो ऐसी घड़ी है जब तुम संसार के पीछे भागते रहते हो, दरबारों की तलाश करते हो, और हर जगह ठुकराए जाते हो। फिर एक ऐसी भी घड़ी है कि दरबार तुम्हारी खोज करना शुरू करते हैं, संसार तुम्हारे पीछे आता है और तुम उन्हें ठुकरा देते हो।
इसको ही मैं संन्यास कहता हूं। ऐसी घड़ी को उपलब्ध हो जाना, जब साधारण आदमी जिन चीजों को मांगता है, चाहता है, वे तुम्हारे पीछे आने लगें और तुम्हें उनमें कोई रस न रह जाए। संसार पीछे आए और तुम लौटकर भी न देखो! मेरी दृष्टि में तभी तुम असली काम के हुए, जब तुम राम के हुए। लेकिन अगर मन में थोड़ी सी भी दुविधा हो और लगता हो कि यह तो सिर्फ निकम्मे हो गए, राम के तो न हुए, तो लौट जाओ। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। थोड़े-बहुत दिन में वापस संसार के काम के हो जाओगे। अभी बात बिल्कुल नहीं बिगड़ गयी है। बिल्कुल बिगड़ गयी होती तो यह सवाल ही तुमने न पूछा होता। अभी कुछ न कुछ

संसार में पैर है। भूल गए हो, थोड़े दिन में वापस सीख लोगे, पुरानी आदत फिर से सजीव हो जाएगी। या तो लौट जाओ, या पूरे डूब जाओ; बीच में मत खड़े रहो। इश्क करता है तो फिर इश्क की तौहीन न कर
या तो बेहोश न हो हो तो न फिर होश में आ
या तो डूबना है तो पूरे ही डूब जाओ, यह निकम्मा होने का जो पाठ मैं पढ़ा रहा हूं, इसमें फिर पूरी तरह हो जाओ। यही तो अकर्म है, निष्काम है। अगर थोड़ी भी शक-शुबहा मन में हो, थोड़ा भी संदेह हो, तो जितने जल्दी भाग सको भाग जाओ, दूर निकल सको निकल जाओ। क्योंकि ज्यादा देर रुक गए बुरी संगत में, तो फिर बिल्कुल सदा के लिए निकम्मे हो जाओगे। अगर संसार में थोड़ा भी रस है, तो यह बुरी संगत है। अगर संसार में कोई रस न रहा, तो यह सत्संग है।
निकम्मे होकर काम के हो जाओगे। बेहोश होकर एक ऐसे होश को उपलब्ध होओगे जिसको फिर कोई बेहोशी छू नहीं सकती।

दीवानगी-ए-इश्क के बाद आ ही गया होश
और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे
और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे
पांचवां प्रश्नः बुद्ध के शून्य में आप प्रेम क्यों कर जोड़ रहे हैं?

अकारण नहीं। यूं ही नहीं। जान बूझकर। क्योंकि प्रेम शून्य का फूल है। बुद्ध के कहने का ढंग नकारात्मक है। जरूरत थी। क्योंकि उपनिषदों ने विधायक की बड़ी बात की, वेद विधायक के गीत गाते रहे। विधायक की चर्चा इतनी हुई कि विधायक शब्द अर्थहीन हो गए।
जब किन्हीं शब्दों का बहुत उपयोग किया जाए तो वे व्यर्थ हो जाते हैं। उनकी गहनता, उनकी गहराई नष्ट हो जाती है। उथले ओठों पर शब्द भी उथले हो जाते हैं। उपनिषद की विधायकता, ब्रह्म के गीत, पंडितों के द्वारा सब खराब हो गए। फिर ईश्वर की बात करनी दो कौड़ी की बात मालूम होने लगी। पंडित गांव-गांव गली-गली कूचे-कूचे वही बात कर रहा था। किराए के आदमी ब्रह्मज्ञान फैला रहे थे। उपनिषद जूठे हो गए थे।
बुद्ध ने स्वाद बदला इस देश का। उन्होंने नकार की भाषा दी। और बड़ा मजा
यह है कि उस नकार की भाषा से उन्होंने बड़ी भारी क्रांति खड़ी कर दी। उस क्रांति में जो गुजर सके वही साबित उन्होंने किया कि उन्होंने उपनिषद समझा था; जो न गुजर सके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वे केवल तोते थे। क्योंकि जिसने उपनिषद को अनुभव से जाना था, वह तो तत्क्षण बुद्ध को समझ गया कि ठीक कह रहे हैं। क्योंकि जिसने उपनिषद के ब्रह्म को जाना--वह जानना तभी हो सकता है जब कोई भीतर के शून्य से गुजरा हो। शून्य के द्वार से जो न गुजरा वह ब्रह्म के मंदिर में कभी पहुंचा नहीं।
इसलिए जो पहुंच गया था ब्रह्म के मंदिर में, जो सच में ब्राह्मण हो गया था, वह तो बुद्ध को तत्काल पहचान लिया। बुद्ध के शिष्यों में अधिकतम ब्राह्मण हैं। महाकाश्यप है जिससे झेन का जन्म हुआ। सारिपुत्र है। मोद्गलायन है। सभी ब्राह्मण हैं, महाब्राह्मण हैं।
जिन्होंने थोड़ा भी जाना था, वे तो बुद्ध के चरणों में झुक गए। क्योंकि उपनिषद से तो थोड़ा सा स्वाद मिला था। जीवित उपनिषद मौजूद हुआ था, तो उन्होंने उपनिषद की फिकर छोड़ दी। जब जिंदा उपनिषद मौजूद हो, जब ऋषि खुद लौट आए हों बुद्ध में, तो अब कौन किताबों की फिकर करे!
लेकिन जो पंडित थे, कोरे पंडित थे, पोथी-पंडित थे, कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किए थे, उपनिषद कंठस्थ था लेकिन उपनिषद का कोई स्वाद न लगा था, जिनको उपनिषद की शराब का कोई अनुभव न था--उन्होंने कहा, यह बुद्ध तो दुश्मन है! हम तो पूर्ण को मानते हैं, यह शून्य की बात कर रहा है! यह तो नष्ट कर देगा! बुद्ध ने शून्य की बात करके बड़ी गजब की कसौटी पैदा कर दी; चुन लिए लोग।
उस कसौटी पर जो कस गया, वह सही था; जो नहीं कसा, वह गलत था। हिंदू-धर्म में जो भी श्रेष्ठ था उन दिनों, वह बुद्ध के पास आ गया; कूड़ा-कर्कट रह गया बाहर। लेकिन जो बात उपनिषद के लिए हो गयी थी, वही बुद्ध के लिए हो गयी एक दिन। बुद्ध का शून्य भी धीरे-धीरे चर्चित होते-होते व्यर्थ हो गया। उसमें

से पूर्ण का भाव ही खो गया। वह निपट शून्य रह गया। वह केवल दरवाजा रह गया, भीतर कोई मंदिर नहीं। दरवाजे में से आर-पार हो जाओ, लेकिन कहीं कुछ नहीं। शून्य केवल नकार रह गया। बुद्ध के लिए विधेय का द्वार था, लेकिन बौद्धों के लिए केवल नकार रह गया। बौद्ध पंडित पैदा हुए, उन्होंने कहा, हम उपनिषद से अलग हैं। वेद के हम विरोधी हैं।
बुद्ध पंडित के विरोधी थे, वेद के नहीं। बुद्ध जन्मजात ब्राह्मण के विरोधी थे, अर्जित ब्राह्मणत्व के नहीं। बुद्ध ने ब्राह्मण की नयी परिभाषा की थी, ब्राह्मण का विरोध नहीं। बुद्ध ने वेद को नए अर्थ दिए थे, वेद का विरोध नहीं। बुद्ध स्वयं प्रमाण थे वेद और उपनिषद के। उन्होंने पुनरुज्जीवित किया था सब, जो-जो खो गया था उसको फिर नया रंग, नयी रौनक दी थी। संगीत वही था, गीत नया था। लयबद्धता वही थी, लेकिन शब्द बदल दिए थे। फिर वही हुआ, जो होना था। जैसे उपनिषद पंडित के हाथ में पड़ गया था, ऐसे
ही बुद्ध का शून्य भी पंडित के हाथ में पड़ गया। वह शून्य कोरा शाब्दिक था। उस शून्य में कुछ भी न था, कोई गहराई न थी। वह सिर्फ बकवास था। वह तर्कजाल था। बड़े तर्कजाल पैदा हुए बुद्ध के पीछे।
इसलिए मैं दोनों का प्रयोग एक साथ कर रहा हूं। पूर्ण को भी पंडित नष्ट
कर चुका, शून्य को भी पंडित नष्ट कर चुका। अब तो एक ही उपाय है कि हम दोनों का एक साथ उपयोग करें। शायद पंडित दोनों को एक साथ न पकड़ पाए। क्योंकि पंडित को लगेगा, यह तो विरोधाभासी है, संगति नहीं है। मेरी बात, पंडित को लगेगी विरोधाभासी है, कंट्राडिक्ट्री है, इनकंसिस्टेंट है। क्योंकि पंडित का अर्थ है, तर्क। वह कहेगाः या तो कहो पूर्ण, तो पक्का कि तुम उपनिषदवादी हो; या कहो शून्य, तो पक्का कि तुम बुद्धवादी हो।
मैं कोई वादी नहीं हूं। मैंने तो देखा कि शून्य का द्वार पूर्ण के मंदिर में पहुंचा देता है। और मैंने देखा कि पूर्ण के मंदिर में जिसे भी जाना हो, वह शून्य के द्वार के अतिरिक्त और कहीं से जा नहीं सकता। तो मेरे लिए शून्य और पूर्ण में विरोध नहीं है। शून्य साधना है, पूर्ण साध्य है। दोनों को मैं एक साथ उपयोग कर रहा हूं, ताकि पंडित की पकड़ मुझ पर न बैठ सके। जहां-जहां संगति है वहां-वहां पंडित पकड़ बिठा लेता है। सिर्फ असंगत को पंडित नहीं पकड़ पाता।
इसलिए कुछ चीजें हैं दुनिया में जो पंडित की पकड़ से बाहर रह गयी हैं-- जैसे झेन पंडित की पकड़ के बाहर रह गया, क्योंकि असंगत है। पंडित लाख उपाय करे तो भी उसे झंझट होती है कि इसको बिठाए कैसे, तर्क में कैसे बिठाए!
तो मैं जो तुमसे कह रहा हूं वह झेन है। वह विरोधाभास है, पैराडॉक्स है, ताकि पंडित से बच सके। सिर्फ पैराडॉक्स पंडित से बच सकता है, और कोई नहीं बच सकता। बुद्ध नहीं बच सके, उपनिषद नहीं बच सके।
इसलिए मैं बुद्ध के शून्य की चर्चा कर रहा हूं और प्रेम की भी साथ ही साथ। तुम्हें अड़चन होती होगी कि बुद्ध में कैसे प्रेम आ रहा है; मीरा में आना चाहिए था! घबड़ाओ मत, जब मीरा की चर्चा करूंगा, शून्य को ले ही आऊंगा। क्योंकि मैं जानता हूं, विरोधाभास ही केवल पंडित के जाल और पंडित की पकड़ से बच सकता है, और कोई उपाय नहीं है।

इसी भांति का एक और प्रश्न हैः

बुद्ध ने चार आर्य-सत्य कहे हैं--दुख है; दुख के कारण हैं; दुख-निरोध है; दुख-निरोध की अवस्था है। आपको सुनकर लगता है कि आप भी चार आर्य-सत्य कहते हैं--आनंद है जीवन, आनंद का उत्सव है जीवन; उत्सव को साधने के उपाय हैं; उत्सव की संभावना है; उत्सव की परम दशा है। दो बुद्धपुरुषों के आर्य-सत्यों में इतना विरोधाभास क्यों?

एक ही बात है। बुद्ध का ढंग नकार है। वे कहते हैंः दुख है, दुख को मिटा दो। जो बचेगा, उसकी वे बात नहीं करते। मैं तुमसे उसकी बात कर रहा हूं जो बचेगा। उसकी भी बात कर रहा हूं जो बचेगा।

दुख है--बिल्कुल ठीक है। दुख को मिटा दो तो जो बचेगा वह आनंद है। दुख
के कारण हैं--उनको हटा दो, उन कारणों को गिरा दो, तो सुख की बुनियाद पड़ जाएगी, आनंद की बुनियाद पड़ जाएगी।
दुख को मिटाने के साधन हैं, आनंद को पाने के साधन हैं--वे एक ही हैं। जो दुख को मिटाने के साधन हैं, वही आनंद को पाने के साधन हैं। जो बीमारी को मिटाने की औषधि है, वही स्वास्थ्य को पाने का उपाय है। जो अंधेरे को हटाने का ढंग है, वही प्रकाश को पाने की व्यवस्था है।
बुद्ध कहते हैंः दुख-निरोध की अवस्था है, निर्वाण है। पर दुख-निरोध का उपयोग करते हैं। ब्रह्म-उपलब्धि, पूर्ण का आगमन--उसका वे उपयोग नहीं करते। उनकी मजबूरी थी। पंडितों ने खराब कर दिया था। उन्हें बहुत सावधान होकर चलना पड़ा। एक-एक शब्द सोचकर उपयोग करना पड़ा। मैं जानता हूं उनकी अड़चन कितनी रही होगी। क्योंकि आनंद से भरे हुए व्यक्ति को, दुख है, दुख के कारण हैं, दुख दूर करने के उपाय हैं, दुख-निरोध की अवस्था है--कैसा मुश्किल पड़ा होगा! आनंद से लबालब, आनंद की बाढ़ आयी हो--उसको दुख ही दुख की चर्चा करनी पड़ी!
उपनिषद दुख की चर्चा ही नहीं करते। वे कहते हैंः ब्रह्म है। दुख की कोई बात ही नहीं करते। बुद्ध को दुख ही दुख की बात करनी पड़ी। सुनकर कई को तो लगा कि बुद्ध दुखवादी हैं। पश्चिम में यही भ्रांति फैल गयी कि बुद्ध निराशावादी हैं, दुख ही दुख की बात करते हैं। रुग्ण हैं थोड़े। बुद्ध से ज्यादा स्वस्थ आदमी कहां हुआ! लेकिन बुद्ध की मजबूरी थी। उनको निषेध का उपयोग करना पड़ा। क्योंकि जैसे ही वे विधेय का उपयोग करते, पंडित सिर हिलाने लगते, वे कहते, बिल्कुल ठीक! जैसे कि वे जानते हैं।
बुद्ध ने जब दुख की बात की और दुख ही दुख की बात की, तो पंडित चौंका। उसने कहा, यह आदमी जान नहीं सकता। यह पंडित से बचने की व्यवस्था थी। यह-- पंडित को पास नहीं आने दिया बुद्ध ने।
पंडित बीमारी है। वह मंदिर में आ जाए, मंदिर नष्ट हो जाता है। और वह पूरी कोशिश करता है आने की, जब तक कि द्वार पर ही विरोधाभास न मिल जाए। मैं दोनों की बात कर रहा हूं, क्योंकि मुझे लगता है कि यह एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। ये दो बातें हैं ही नहीं। तुम्हें दो बातें दिखायी पड़ती हैं, क्योंकि तुम दुख में खड़े हो। तुम्हें यह दिखायी ही नहीं पड़ता कि दुख से आनंद कैसे जुड़ सकता है। तुम अंधेरे में खड़े हो। तुम्हें यह दिखायी ही नहीं पड़ सकता कि अंधेरा केवल प्रकाश का अभाव है। अंधेरे से तुम प्रकाश को जोड़ ही नहीं पाते। कैसे जोड़ोगे? प्रकाश कभी तुमने देखा नहीं। लेकिन मैंने प्रकाश देखा है; और मैं तुमसे कहता हूं कि अंधेरे का न हो जाना प्रकाश है; या प्रकाश का हो जाना अंधेरे का न हो जाना है। ये दो चीजें नहीं हैं, विरोधाभास नहीं है।
अगर साध्य की पूछते हो तो आनंद, अगर साधन की पूछते हो तो दुख। अगर मंजिल की पूछते हो तो और बात होगी। अगर मार्ग की पूछते हो तो और बात होगी। और दोनों जरूरी हैं। मंजिल से भी ज्यादा जरूरी मार्ग की बात है। अगर कोई मुझसे कहे कि उपनिषद और बुद्ध में चुनना है तो मैं किसको चुनूंगा-- तुम्हारे लिए अगर चुनना हो तो बुद्ध को चुनूंगा, मेरे लिए अगर चुनना हो तो उपनिषद को चुनूंगा। क्योंकि मैं जो कहना चाहता हूं वह उपनिषद ने कहा है। तुम्हें जहां पहुंचना है वह बुद्ध के मार्ग से ही चलकर वहां पहुंच सकोगे। अगर मंजिल पर पहुंचने वाले लोगों को चुनाव करना हो तो वह उपनिषद को चुनेंगे, क्योंकि उपनिषद में जो अभिव्यक्ति है वह मंजिल की है। मार्ग पर चलने वालों को अगर चुनना हो तो बुद्ध ही सहारा हैं; क्योंकि अभी मार्ग की कठिनाइयां हैं। अभी स्वास्थ्य की चर्चा और स्वास्थ्य के गीत तुमसे गाए भी क्या जाएंगे! तुम बीमार हो! अभी प्रकाश के लिए तुम कैसे नाचोगे? अभी अंधेरे के सिवाय तुमने कुछ भी नहीं जाना। इसलिए बुद्ध का इतना प्रभाव पड़ा।
किसी ने पूछा है कि बुद्ध के समय में और भी बड़े चिंतक थे, खुद जैन तीर्थंकर महावीर थे, प्रबुद्ध कात्यायन था, संजय वेलट्ठीपुत्त था, मक्खली

गोशाल था, अजित केशकंबल था--बड़े विचारक थे, बड़े उपलब्ध लोग थे--इनका प्रभाव क्यों नहीं पड़ा?
बुद्ध का जैसा प्रभाव पड़ा किसी का भी न पड़ा। क्या मामला था? उन सबने उपनिषद की भाषा बोली। महावीर पूर्ण की बात करते रहे। पूर्ण की बात पिटी- पिटायी हो चुकी थी। पंडित उसे इतना दोहरा चुका था कि उसमें कुछ भी नया न था। उसका कोई प्रभाव न पड़ा।
बुद्ध ने नकार की बात की। पूरा पूरब बुद्ध से छा गया। बुद्ध पूरब के सूर्य हो गए। कुल कारण इतना था कि बुद्ध ने कहने का एक नया ढंग खोजा। और बुद्ध ने जो कहा वह मार्ग पर चलने वाले के लिए उपयुक्त था। मंजिल पर पहुंचकर तो तुम भी नाच लोगे, उपनिषद के रहस्य अपने आप खुल जाएंगे; लेकिन मंजिल पर पहुंचोगे कैसे?
बुद्ध ने केवल मार्ग की बात की। इसलिए वे कहते हैं, दुख है--इसे अनुभव करो। दुख के कारण हैं--इसे खोजो। दुख के कारण को मिटाने के उपाय हैं--मैं तुम्हें बताता हूं। और भरोसा रखो कि दुख के पार एक अवस्था है, क्योंकि मैं वहां पहुंच गया हूं--दुख-निरोध है।
पूरा नकार है। बुद्ध ने अपने को चिकित्सक कहा है कि मैं एक चिकित्सक हूं, एक वैद्य हूं। मैं कोई विचारक नहीं हूं। मैं केवल बीमारी का निदान करता हूं, औषधि बताता हूं। स्वास्थ्य के क्या गीत गाएं तुमसे! तुम जब स्वस्थ हो जाओगे, खुद ही गा लेना।
लेकिन मैं दोनों बातें कर रहा हूं; क्योंकि बुद्ध का नकार भी अब उतना
ही धूल से भर गया जितना कभी उपनिषद का विधेय था। बौद्ध पंडितों ने उसे भी खराब कर दिया। अब फिर से जरूरत है कि हम उस धूल को झाड़ें। अगर मैं सिर्फ विधेय की बात करूं तो लोग समझेंगे, मैं हिंदू हूं। मैं हिंदू नहीं हूं। अगर मैं सिर्फ नकार की बात करूं तो लोग समझेंगे, मैं बौद्ध हूं। मैं बौद्ध नहीं हूं। मैं सिर्फ मैं ही हूं। इसलिए मैं दोनों की बात कर रहा हूं, ताकि तुम मुझे किसी कोटि में न रख पाओ।
और पंडित की सबसे बड़ी तकलीफ यही है, तर्क की सबसे बड़ी अड़चन यही है कि
जब तक कोटि न बने, तब तक उसकी पकड़ में कोई बात नहीं आती। जैसे ही कोटि बनी कि तर्क हिसाब-किताब जमा लेता है; फिर वह समझ लेता है कि बात क्या है। फिर कोई अड़चन नहीं रह जाती। उसके पास सब जमे हुए लेबिल लगे हैं, वह लेबिल लगा देता है। बस लेबिल लगाने की सुविधा मिली बुद्धि को कि बात गयी, खतम हुई, समाप्त हुई, उसके प्राण निकल गए, वह नपुंसक हो गयी। जितनी देर तक हम बचा सकें लेबिल लगने से अपने को उतनी देर तक ही हम जीवित होते हैं, उतनी देर तक ही विचार में आग होती है, फिर राख हो जाती है।

आखिरी प्रश्नः आपका बोलना खुद किसी शेर-ओ-शायरी से कम नहीं, फिर उसमें
ये और शेर-ओ-शायरी! यह मीठा मोड़ क्यों कर आया?

कोई रहस्य नहीं है। बड़ी गैर-रहस्य की बात है। लेकिन पूछ लिया है इसलिए
कह देना चाहिए।
मुल्ला नसरुद्दीन बाहर जा रहा था। मैंने उससे कहा, बड़े मियां! तुम बाहर चले, मेरा क्या होगा? तुम रहते हो, तुम रोज-रोज समझदारियां करते हो, नासमझों को समझाने में मैं उनका उपयोग कर लेता हूं। तुम छुट्टी पर जा रहे हो! महावीर न हों, मूसा न हों, मोहम्मद न हों, मनु न हों--मेरा काम चल जाएगा।
मुल्ला के बिना मेरा काम नहीं चलता।
मुल्ला ने कहा, घबड़ाएं मत। ये मैंने बहुत सी कविताएं लिख रखी हैं--एक पोथी; ये छोड़े जाता हूं, जब तक न आऊं इनसे काम चला लेना।
तो जब तक मुल्ला नहीं आया तब तक... ।
आज इतना ही।